

॥ श्रीः ॥

✽ हरिदास-संस्कृत-ग्रन्थमाला ✽

१३८



व्याकरण-मध्यमायाः

सोत्तरा-प्रश्नावली

पण्डित-श्रीरामचन्द्रश्चाव्याकरणाचार्येण

अतिसंस्कृत्य सम्पादिता ।

[चतुर्थखण्डे प्रथमो भागः]



प्रकाशकः

जयकृष्णदास—हरिदास गुप्तः,
चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस,
विद्याविलास प्रेस, बनारस ।

तृतीयं संस्करणम्]

मूल्य ४]

[सं० २००१]

[सर्वेऽधिकाराः प्रकाशकाधीनाः]

वक्तव्य

बहुतसे विद्यार्थी ग्रन्थका परिशीलन करने पर भी प्रश्नोत्तरलेखनशीली न जाननेके कारण परीक्षामें अनुत्तीर्ण होजाया करते हैं। अतः हमारे चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, बनारससे प्रथमा तथा मध्यमा (१-४ खण्ड) की प्रश्नोत्तरी एवं शब्दरत्न-प्रश्नोत्तरी परिभाषेन्दुशेखर-प्रश्नोत्तरी, शेखर-प्रश्नोत्तरी और परमलज्जुसङ्घा-प्रश्नोत्तरी भी प्रकाशित की गयी है तथा परीक्षोपयोगी होनेसे उनके कई संस्करण भी निकल चुके हैं ।

प्रस्तुत संस्करणकी विशेषता

सन् १९४८ के नवीन पाठ्यक्रमके अनुसार सिद्धान्तकौमुदीका खिजन्तादि लिङ्गानुशासनान्त भाग व्याकरण मध्यमा चतुर्थ खण्डमें निर्धारित किया गया है। अतः प्रस्तुत संस्करणमें सन् ४७ तकके खिजन्तादिट्टिर्हरदन्तान्त एवं सन् ४८ के लिङ्गानुशासनान्त प्रश्नोत्तरीका ही समावेश किया गया है। तथा सन् ४७ से पूर्वके चतुर्थखण्डमें आये हुए जुहोत्यादिसे चुराद्यन्त प्रश्नोंका समावेश उपर्युक्त पुस्तकालयसे प्रकाशित मध्यमा तृतीय खण्ड प्रश्नोत्तरीमें कर दिया गया है।

खिजन्तादि लिङ्गानुशासनान्त भागके मध्यमें स्वरवैदिक प्रकरण भी आता है किन्तु बिहारके पाठ्यक्रमके अनुसार 'स्वरवैदिकप्रश्नोत्तरी' का पृथक् संस्करण ही प्रकाशित किया गया है। अतः विद्यार्थियोंको प्रस्तुत प्रथमभाग प्रश्नोत्तरीके साथ २ इसका द्वितीयभाग स्वरवैदिकप्रश्नोत्तरीको भी उपर्युक्त पुस्तकालयसे मंगाना चाहिये।

चेतावनी

आज-कलके लेखक हमारे 'चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय' से प्रकाशित प्रश्नोत्तरीका जान-बुझकर अनुकरण कर रहे हैं। अतः उनलेखक तथा प्रकाशकको हम स्मरण दिला रहे हैं कि वे उपर्युक्त पुस्तकालयसे प्रकाशित किसी भी पुस्तकका अनुकरण करने-करानेका दुःसाहस न करें अन्यथा लाभके बदले उन्हें महती हानि उठानी पड़ेगी।

शन्दुमतीभवन

काशी १९४९

भवताम्—

श्रीरामचन्द्र झा

प्रश्नानुक्रमणिका

| | | | | | |
|-------------------|-------|----------------------|--------|----------------|-------|
| प्र० | पृ० | प्र० | पृ० | प्र० | पृ० |
| अकन् | १२८ | अनाश्वान् | १२ | अरिद्युतः | ४ |
| अगारिष्वम् | ५६ | अनुक्रीडते | १७ | अरिरिषति | ५०-६७ |
| अग्रै भूः | ८६ | अनुपराभ्यां कृजः | ५६-२०४ | अर्जयन् वसति | ६१ |
| अवानिपाताम् | १०४ | अनुवदति कीणा | ५५ | अत्रिष्व | १२८ |
| अवाभिष्यत | ७२ | अनुवम् | १२० | अक्षितुमिच्छति | १०२ |
| अचङ्कानीत् | ४ | अनूचानः | ८७ | अहन् | ३० |
| अचिकीर्षीष्ट | ११२ | अन्नादः | ८६ | अलं कृष्णः | ११२ |
| अवी वकास्त | ६६ | अन्योन्यं स्पृशनः | २८-११९ | अलाटीत् | ४२ |
| अजङ्गमीत् | २०९ | अन्वतप्त पापेन | ५६ | अवगल्भाम्बुके | २६-६९ |
| अजर्वाः | ५१-६८ | अपघनः | ८८ | अवद्यन् | ७३ |
| अजर्वट् | ३ | अपमाय | ६२ | अवहारः | ११९ |
| अजकनक्षम् | १२० | अपप्रथत् | ९१ | अवधीत् | ६८ |
| अजर्यम् | ५९ | अपस्विक्वने० | १२३ | अवर्वाः | १०० |
| अजस्रम् | ४६ | अपि भात्यति द्वारम् | ४३ | अवारोषि | ११२ |
| अजदलत् | ४०-५२ | अपाकारीत् | ३४ | अवाकीर्ष्ट | ९५ |
| अजा आर्मा नयति | ४४ | अपिगिरिम्० | १०-१०५ | अवीवर्षिषीत् | २७ |
| अजिरन् | १२५ | अपीपवत् | ७७ | अव्यथ्यः | ४८ |
| अजीवनिः | ३१ | अप्राप्य नदीं पर्वतः | ६३ | अश्नायति | ७९ |
| अजूहवत् | ६७ | अप्सरायते | ७९ | अशमि | ८४ |
| अटाव्यते | ६८ | अबोमुदुः | १२३ | असपारीत् | ४२ |
| अटाव्या | ६२ | अभाजि | १८ | अतिस्वा | १०६ |
| अतातः | ४० | अभञ्जि | १०४ | अस्ति भोक्तुम् | ४६ |
| अतितिरायत् | ९२ | अभावयिषाताम् | ११८ | असीषमत् | ९१ |
| अनिष्ठिपत् | ७८ | अभिधिपति | १७ | अस्तोषाताम् | १०३ |
| अथ कथं भार्यावधू० | ८९ | अभिनिष्ठानः | ९७ | अस्यते | ११ |
| अतुत्तुरयिषीत् | २७ | अभिशीनः | ३६ | आढ्येन सुभूयते | ९७ |
| अङ्गः | ११३ | अभिदयानः | ७५ | आखनिकवकः | ११४ |
| अधीष्वाधीष्वा० | ५८ | अमुमाचष्टे० | १०२ | आक्रमते | ३४ |
| अध्यजीगपत् | १२२ | अरराज्जकः | ३३ | आखूत्यः | ८५ |
| अध्यापयति | ४२ | अरविन्दम् | २९ | आचर्य्यो देशः | १२४ |
| अध्यापिपत् | ६७ | अरारिता | ३ | आज्यम् | ४५ |

| | | | | | |
|---------------------|---------|---------------------|--------|------------------------|--------|
| आढ्यङ्करणम् | ६० | उदक्तमुदकम् | ८६ | कण्ड्वादिभ्यो० | ५४ |
| आढ्यम्भातुकाः | २९ | उदगुपुच्छत | ९५ | कण्ड्वादीनां भा० प्रा० | १७ |
| आत्मम्भरिः | १२० | उदित्वा | १२० | कतमं भोजयसि | ७२ |
| आयासयते | १०३ | उदेजयः | १०५ | कथं तर्हि विस्मापयन् | २६ |
| आरति | २४ | उद्ग्राहः | २२ | कथं कारम् | ११४ |
| आरिता | ४३-१२३ | उम्मादः | ११३ | कनयति | २५ |
| आरिवान् | ३० | उपक्रमते | ३४ | कम्बलादयो व्रजति | १३ |
| आरोहयते हस्ती | ७ | उपजापः | १०६ | कर्मणेति किम् | १० |
| आवधिष्ट | ४२ | उपधाकार्यं दिक्वा० | ३२ | कर्मकर्त्तरि कृत्यक० | १९ |
| आशंसे० | २८, १०५ | उपरमति | ५५ | कलयति | १५ |
| आशीः | ७५ | उपसर्गसमा० | ९३-११७ | कवचहरः | ८६ |
| आसितः | १२० | उपसर्ग | २९ | करभः | १२५ |
| आहत | ५३ | उपह्वः | २२ | काण्डलावः | ११३ |
| आहृष्वं मा रघूत्त० | ६ | उपाध्यायः | ४३-१२६ | कायः | ४७ |
| इदामति | ५ | उपायंस्त | ४२ | कारिष्यते घटः | ५९ |
| इरम्मदः | ७४ | उपेयुषी | ४६ | कालि मन्या | ३६ |
| इषेरिति | १४ | उपेयिवान् | ११३ | काशी निकायः | १२६ |
| इह रिस् शब्दस्य० | ११० | उपनिमम् | ६३ | कीर्तिः | १२७ |
| इह मुञ्जीतभवान् | ३५ | उत्तरयति | ९५ | कुक्षिम्भरिः | ५९ |
| 'इच खन' इति० | २० | उद्वर्षं मुहूर्तात् | ४४ | कुप्यम् | ४८ |
| इवेति ह्रस्वः सुपठः | १०४ | उध्वंशोषम् | ८८ | कुमारवाती | २० |
| ईप्सति | ८० | ऊर्णुं नुविषति | ११५ | कुशा | १२८ |
| ईर्यते | ७१ | अचिक्रमते | ७१ | कुप्यते पादः | ५८ |
| ईष्येतेस्तृतीयस्य | १११ | एषोकदस्योपस्फुरते | ८३ | कृष्णं द्रष्टं याति | ६२ |
| ईर्षति | ५० | एवंच अवगल्भत० | ११० | कृष्णश्चेदमुहृक्ते | १२४ |
| ईषदाढ्यङ्करः | ४७ | पषिषिषति | १०९ | कोषिषीष्ट | १०४ |
| उः | २५ | ओकः | ११९ | क्रमन्तेऽस्मिन्० | ८३ |
| उखात्तर् | १२० | ओजायते | ४० | नवाणमुलाविति | १३ |
| उचिच्छिषति | १००-११६ | ओदनः पच्यते | ४४ | क्रियासमभिवारे० | १० |
| उत्फुरते | ५३ | औजढत् | ५२ | क्षितः कामः | ८६ |
| उत्फुरायः | २२ | औजिढत् | २५-७० | क्षीरपायिण उशी० | ४५ |
| उत्तपते | १७ | औजिढत् | ११० | क्षुब्धः | ७५-१२५ |
| उदक्रीयति | ९४ | औजिज्जत् | ९९ | गङ्गाधरः | ११९ |
| उदक्षिप्रियत् | ४३ | कक्षिज्जीवति | ४४ | गच्छति ग्रामः | ७३ |

| | | | | | |
|----------------------|--------|-------------------|------|------------------------|-----|
| गजोऽपकिरति | ६ | जगाम किम् | ३५ | तोतोति | १२३ |
| गङ्गं विनयति | ५३ | जंघदि | ४० | त्यागी | ४६ |
| गत्यर्थकर्मकेति | ३० | जलप्यते | ८१ | त्रापयति | ३५ |
| गर्भयते | ४२ | जज्ञिः | ८८ | त्रिष्ठः | ७४ |
| गन्धाश्चकार | ४ | जटाभिलापयते | ९२ | त्वापयति | ९४ |
| गायनः | ३५ | जन्यम् | ११ | त्वं स्म अघ्यापय | १९ |
| गात्रानीति | १७-७१ | जनयति सुखम् | १११ | दण्डोपघातम् | ३१ |
| गीर्णिः | २२ | जरीत्वा | ३७ | दादिवान् | १०६ |
| गेहमनुप्रवेशम् | १२७ | जलधिः | १६६ | दधिस्यति | ५ |
| गेहानुस्कन्दम् | १२१ | जागर्या | ११४ | दन्दशकः | ९७ |
| गेहानुप्रपादम् | १३ | जागृढः | ११६ | दमयन्ती कम० | ९ |
| गेहानुप्रवेशमास्ते | ४८ | जाग्रहिता | २४ | दरः | ६३ |
| गोघ्नः | ७६ | जापयति | ९२ | दरदमाचष्टे | ११८ |
| गोष्पदप्रम् | ६३-८८ | झिगमिषति | ९३ | दर्शयते भवः | ७ |
| गौः पयो दुग्धे | १०-१२४ | जिगीषति | ३ | दावापाटः | ११३ |
| ग्रामगः | २८ | जिघृक्षति | ५० | दायिता | २८ |
| ग्रहिता | १२४ | जित्वरः | ९६ | दायिषीष्ट | ३४ |
| ग्लानः | ३७ | जिह्वुः | १०६ | दासीष्ट | ९५ |
| घटमाख्यत् | ५ | जेगिरयते | ५१ | दितः | ४५ |
| घटिन्धमः | २० | जेष्नीयते | ३९ | दिवाकरः | १२५ |
| घानिषीष्ट | ८ | झीप्सति | १०९ | दिवाविभानिश्वा० | ३५ |
| चम्बूयते | ३९-११६ | रिच्यचदेशो नेति | १०१ | दुद्युषति | ८१ |
| चत्सम् | ८५ | योरणौ यत्कर्माणौ० | ६३ | दुर्गः | ८६ |
| चन्दिद्रीयिषति | ७० | यौ च संदचडोः | ११८ | दुष्प्रमयः | १०६ |
| चत्सम् | १०५ | तनुच्छत् | १२ | दूनः | ३६ |
| चिण्णमुलोदीर्घोऽन्य० | ७ | तपस्तप्यते० | ८४ | दूनवान् | २८ |
| नुष्ठावधिषति | ३९ | तपस्तपः कर्म० | ९ | दूषयति | २ |
| जुरणघातोः | ६ | तमोऽपहः | २९ | देवदत्तं प्रति शुभूषते | १११ |
| चूर्णपेषम् | २३ | वित्तंसति | ३-९१ | दृतिहरिः | २० |
| चेकीयते | ६ | विर्यवकास्म् | ९७ | द्यनः | १०५ |
| चेक्रियः | १२५ | तुन्दशोकयोः | ९८ | द्योस्वाचरतीति | १५ |
| चोपनः | १२ | दूर्णः | ६१ | द्रष्टुं याति | ८८ |
| चौरङ्कारम् | ६२ | टुष्णक् | ११३ | दुधनः | ९७ |
| क्षिदुरम् | ७५ | | | | |

| | | | | | |
|-------------------|--------|-------------------|--------|----------------------------|--------|
| द्विपत्नीतापः | ४५ | नेत्र | १२८ | पूतः | २१ |
| धनुषि शिक्षते | ९५ | नोदातोपदेशस्य० | ९७ | पुनिः | ३१ |
| धान्यप्रवाचस्य | ११९ | न्यवीपहृत् | ४१ | पुरोधाः | १२५ |
| उर्ध्वं जिज्ञासते | ७१ | पच्यते तण्डुलः | १८ | पूर्वकालिकेति | १३ |
| धातुसम्बन्धे | १२४ | पञ्चप्रयाजाः | ५९ | पूर्वसरः | १२ |
| धायः | ७४ | पटपटायते | २४ | प्रकृतोमिता ह्रस्व० ८१-१०७ | |
| धाव्या | ७३ | पण्या | ३५ | प्रकन्ता | ११ |
| धीतम् | ११३ | पतापतः | ७४ | प्रकुरुते | १११ |
| धीप्सति | ७८ | पदं सुष्ठु कारयति | ५१ | प्रख्यानीयम् | ११९ |
| धृत्वा | ११४ | पदं मिथ्या कारयते | १२३ | प्रखम्य | ४७ |
| धृष्टः | ६१ | परिहः | ४७ | प्रख्यद्यः | ११३ |
| न कादिरिति | १२ | परिहृष्यति | ३४ | प्रतिगृह्यम् | १९ |
| ननु करोमि भोः | १८ | परिवीथ | १४ | प्रतीविषति | १०० |
| नदीष्णः | १०६ | परिमोहयते | ५६ | गृह्णित् | ७५ |
| नाभिः | १२८ | परिषिपिन्नति | ४१ | प्रधिः | ३० |
| नाहं कलिङ्गा० | ४४-१०५ | परिक्लिश्यमाने च | ९८ | प्रपक्वणीयः | २८ |
| निकृणः | ९७ | परिव्याय | ६२ | प्रमुदितः | ४५ |
| निकाच्यः | ११ | परीपृच्छयते | ९१ | प्रयाणीयम् | ११२ |
| निगमः | १०६ | पवित्रम् | ४६ | प्रवपणीयम् | ३५ |
| निगारयति | २७ | पापचक्रः | २० | प्रवाय | ७४ |
| निगारः | ११३ | पाटपटः | ८५ | प्रस्तीमः | १२-१०५ |
| निपठितिः | ४७ | पाणिनोपकर्षम् | ९७ | प्रहृनिः | ८८ |
| निमूलकाषम् | ८८ | पाणिन्धमः | १२० | प्राणिणत् | ८० |
| निविशते | १११ | पाययते | १२३ | पाट् | ७५ |
| निर्विण्णः | ५८ | पादहारकः | ५९ | प्रापयिषति | १७ |
| निश्वानः | ६२ | पारदृश्वा | २१ | प्रापय्य | ६३ |
| निष्पावः | ६३ | पिपविषते | ६ | प्रालम्भि | ७० |
| निषथा | ७६ | पीत्वा खलु | २१ | प्रावयति | ९५ |
| निहवः | १३ | पुनः पुनरति० | ६७-१०२ | प्रियकारः | ७४ |
| नीकाशः | ९७ | पुरा यास्यति | ११९ | प्रेक्षणीयम् | ४४ |
| नीवाराः | १२० | पुरा मुक्ते | १९ | प्रेन्वनम् | ११२ |
| नुन्नः | ३० | पुरीमवस्कन्द० | ११९ | फणितम् | १०५ |
| नेत्रम् | १६ | पुष्पप्रचयः | ११३ | फलपु | १२५ |
| | | | | कुललः | ८६ |

| | | | | | |
|--------------------|-----|---------------------|--------|--------------------|--------|
| विभ्राणः | ३० | माणवकं वञ्चयते | ७१ | राजस्यः | ४८ |
| बुभाव | ६९ | मातुः संज्ञानाति | ५५ | रामः सीतामुपायत | ४२ |
| बुभूषिष्यते | ३४ | मामोति | २५ | रुद्रपेषम् | ७६ |
| बोभवीति | ७९ | मामूमः | ६८ | रुच्यः | ४८ |
| बोभूयते | ७८ | मासमास्यते देव० | १८ | रोचिष्णुः | २२ |
| बोभूयते | ४४ | माभवानिदिचष्ट | १२२ | लभ्यम् | ३५ |
| बोध्यते माणवकम् | ८४ | मासमृत | ५३ | लभ्यं लभ्यम् | ४७ |
| बोध्यति० | १२३ | मुखतो भूत्वा | ४८ | लवणङ्कारं मुङ्क्ते | ३१ |
| ब्रह्मन् | १२८ | मुण्डयति माणवकम् | ८१ | लाप्यम् | १९ |
| ब्रह्मवादी | २७ | मुहूर्तादुपरि० | ५८ | लोढघातोः | ६ |
| भवान् यजताम् | ९६ | मूलकेनोपदर्शं भु० | १४ | लोहितायति | ८० |
| भाविषीष्ट | ४२ | मूर्त्तः | २६ | दष्टिभोक्तुम् | ९७ |
| भविष्यति म० | २८ | मूषिकाबिलप्रम् | १२७ | वध्वः | ८६ |
| भव्यः | ८५ | मूषाया | १३ | वर्तिष्णुः | ९६ |
| भाण्डानि समाचिनोति | ९४ | मृषोद्यम् | ४८ | वर्धतीति | ७९ |
| भावः | ३२ | मेधायति | १७-१११ | वसन्तीह पुरा | ५८ |
| भावयामासे | ४३ | मेधायाम्बुः | ३३ | वसन् ददर्श | १९-११२ |
| भावे लकारे | ७३ | मामोति | ६९ | वह्यम् | १९ |
| मास्करः | २० | मिलष्टम् | ६० | वाप्यम् | ९६ |
| भिक्तुकः प्रमुमु० | ८ | यकारवका० ५२-१०२-११६ | | वापयति | ३ |
| मुञ्जोय० | ११२ | यच्च यच्च वा | ८५ | वारयिषिषति | ५४ |
| मुक्त्वा व्रजति | ३७ | यङ्लुगन्तादात्म० | १६ | वासरूपविधेः | १२१ |
| भूयते | ८४ | यजतां भवान् | ४३ | वासयते | ४२ |
| भूसुवो इति | ११० | यष्टिग्राहं० | १०६ | वाष्पमुञ्चरति | १११ |
| भृत्या | ४७ | यामः | ७६ | वास्तव्यः | १९ |
| बोभूषिषिषति | ७३ | यायजुः | ८७ | वाक्त्रम् | ५९ |
| अशयति | ५ | याहि यहीति | १२४ | विकल्पी | ६१ |
| अबुचिपं० | ७६ | योषयति | ७१ | विगण्यय | १२० |
| मंजूषा | १२५ | यंयम्यते | १०९ | वितत्य | ११४ |
| मधुसूदनः | २० | रङ्गः | २६ | वित्तः | ६० |
| मन्त्रकृत् | ६० | रज्यति वक्त्रम् | १० | विदुरः | १०६ |
| माणवकमुपनयते | ७१ | रज्जुः | १२८ | विधामादत्ते | ५२ |
| माणवकमनुकीडति | ६ | राजवः | २१ | विनयति विपादिकाम् | ८२ |

| | | | | | |
|------------------|-----|------------------------|-------|-------------------|-----|
| विपूयः | ७३ | शावयति | १५ | सुस्मृषते | ९५ |
| विमर्गः | २२ | शाश्वत्यते | ६८ | सुसृषति | ४१ |
| विरमति | ४२ | शिशस्सति | ९-१०३ | सूर्यः | ४८ |
| विरिभितम् | ११३ | शिक्ष्यः | २८ | सूतम् | ९६ |
| विविदन्ते | ३४ | शीतभोजी | ३६ | सुसोऽहं० | ११२ |
| विविदवान् | ८७ | शीघ्रं वाप्स्यामः | ११२ | सुख्यते खजं भक्तः | १८ |
| विशयः | ३० | शुनयति | १६ | सेवत्रम् | ८८ |
| विशिपति० | ३४ | शुनिन्धयः | ८३ | सोसृचिता | ९२ |
| विष्णुयति | ४ | शुश्रुवाम् | ९६ | सोमविक्रयी | १२५ |
| विसारः | ३३ | शैबिकान्मतुर्थी० | १०२ | सोमसुप् | ११३ |
| विस्मापयन्निति | ३६ | शोकापनोदः | ५९ | संविद्रते | १७ |
| विस्मापयते | ३८ | श्रद्धा | ९७ | संशितं व्रतम् | ७५ |
| विहङ्गः | ९६ | श्वः शीघ्रं वाप्स्यामः | ३४ | संक्षयः | २०६ |
| वृक्ष्यः | २१ | सङ्गिरते | ३४ | सं स्वरते | ७१ |
| वृत्तम् | ८७ | सन्नन्तादिति | ९८ | स्वं यज्ञं यजति | ८३ |
| वेवीयते | ३३ | सन्ति | ७६ | स्वमनायत | १६ |
| वेशः | २२ | सपत्न्यायते | १५-५१ | स्वपोषम् | ११४ |
| वैकुण्ठमभिहितः | ८७ | समक्नः | ४५ | स्वान्तम् | ३६ |
| वोताप्योः | २० | समजः | १३ | स्तनन्वयी | ७४ |
| व्यकारिष्ठ | ११२ | समगत | ११८ | स्तवः | ३० |
| व्यतिराते | ११८ | समवसर्ग्या | १९ | स्तोतिण्योरिति | ९३ |
| व्यतिष्ठे | ७० | समार्त | ९ | स्थापयति | १२३ |
| व्यतिष्ठुनीते | ५५ | समारत | ८२ | स्थालम् | १२५ |
| व्यतिस्त्वा | ४७ | समुच्चये सा० | २८ | स्फारः | १३ |
| शक्नोति भोक्तुम् | ३७ | सम्पदी | ७५ | स्फालः | ३७ |
| शतं प्रकुर्वते | ५५ | सम्भावयामि० | २८ | स्म पिता ब्रवीति | ११२ |
| शत्रुन्वपः | २१ | सर्वप्रातिपदिकेभ्यः | ९४ | स्मारिता | २७ |
| शप्यम् | १९ | सर्वी कारिका | ६३ | स्मारं स्मारम् | ८८ |
| शम्यते मोहः | ११८ | साधयति | ४० | स्त्रीम्मन्यः | ४५ |
| शयाना मुञ्जते | ७० | सानाय्यम् | ५९ | स्यदः | १३ |
| शम्यते | ७२ | मुखप्रतीक्षा | २९ | हसितम् | ३७ |
| शाखे नयते | ११३ | सुगः | २१ | हन्तीति पलायते | ११९ |
| शामिना | ५७ | सुवर्णमुत्तपत्ति | ७१ | होवातोर्ध्वि | ६ |
| शाचिका | २२ | सुप्रलम्भः | १२७ | | |

॥ श्रीः ॥

व्याकरण-मध्यमा-

सोत्तरा-प्रश्नावली

[चतुर्थखण्डम्]

ओङ्कारं मुरलीधरं प्रभुवरं वृन्दावनाधीश्वरं,
भक्ताऽभिष्टफलप्रदं सुरवरैरासेव्यपादाम्बुजम् ।
वन्दे रासविहारिणं निजजनानन्दप्रदं माधवं,
श्रीराधादिसंमस्त गोपवनितासंसेव्यमानं प्रभुम् ॥

णिजन्तादि-उत्तरकृदन्तान्तभागे*प्रश्नाः ।

१६३६

१—दूषयति । वापयति । जोगीषति । तितंलति । अरारिता । अचङ्कानीत् । भरियतः । एते कथं साधवः ।

२—गव्याञ्चकार । विष्णूयति । इदामति । भ्रशयति । एतेषां संस्कारं प्रदर्शयताम् ।

३—दधिरयति । अजर्घट् । चैकीयते । पिपविषते । एतेषां साधन-प्रक्रियां तत्सुत्रार्थप्रदर्शनपूर्वकं प्रदर्श्य ह्रीघातोर्णिचि रूपमेकं साध्यताम् ।

४—लोट-चुरण-घातोरर्थम्, माणवकमनुक्रीडति, गजोऽपकिरति, आहृध्वं मा रघूत्तमम्, एषु विशेषकार्यञ्च प्रदर्श्य, दर्शयते भवः, आरोहयते हस्ती, इत्यत्र तृतीयकक्षायामेव लङ्प्रकारो लेखनीयः ।

५—“अनुपराभ्यां वृजः” इत्यस्य कर्मकर्त्तरि प्रवृत्त्यभावप्रकारम्, “चिरण्मुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम्” इत्यत्र दीर्घग्रहणस्य फलञ्चाभिधाय, घानिषीष्ट, आदयत्यन्नं वटुना, इत्यनयोर्विशेषकार्यं ब्रूत ।

* नोटः—स्वरवैदिकप्रकरण की प्रश्नोत्तरी पृथक् छपी है ।

अथवा—

बोभूयिषयिषति' भिन्नुः प्रभुमुपतिष्ठते, समार्तः शिशत्सति, दमयन्तो कमनीयतामदम्, एतानि प्रधानकार्यमात्रेण संसाध्य "तपस्तपःकर्मकस्यैव" इति सूत्रं नियमार्थं विध्यर्थं वेति निर्णयत ।

६—कर्मणेति किम् ? करणाधिकरणाभ्यां तुल्यक्रिये माभूदिति, फक्किका व्याख्याय, गौः पयो दुग्धे, रज्यति रज्यते वा वस्त्रम्, अपि गिरिं शिरसा भिन्द्यात्, एषु कार्यविशेषमुक्त्वा, क्रियास-
मभिहारे द्विस्वयोः कथं परस्मैपदात्मनेपदसंज्ञे इति विशदरूपेण वर्णनीयम् ।

७—जन्यम्, निकायपः, प्रक्रन्ता, पूर्वस्यः, तनुच्छत्, प्रस्तीमः, अना-
श्वान्, चोपनः, एतेषु ससूत्रं विशेषकार्याणि निर्दिश्य "न क्वादेः"
इति सूत्रप्रत्याख्यानरीतिर्दर्शनीया ।

८—कम्बलदायो व्रजति, समजः, मृगया, निहवः, गेहानुप्रपादम्,
इमानि संसाध्य क्त्वाणमुलौ कस्मिन्नर्थे भवत इति, पूर्वकालि-
कक्रियार्थकधातुभिन्नात् क्त्वाप्रत्ययविधायकानि यानि शास्त्राणि
तानि च प्रदर्शयत ।

अथवा—

स्फुरस्यन्दधातोर्घञि, परिपूर्वकव्येञः क्त्वा, इषेः शे च प्रत्यये
रूपाणि ससूत्रं संलिख्य, मूलकेनोपदंशम्, इत्यत्र ग्रन्थोक्तशङ्का-
समाधाने स्वसंस्कृतेन सुरूपं लेखनीये ।

प्रश्नोत्तराणि ।

१—दूषयति—देवदत्तो दुष्यति तं कश्चिद् प्रेरयति, इत्याद्यर्थे 'हेतुमति च'
इति सूत्रेण 'दुष वैकृत्ये' अस्माद्धातोर्णिचि अनुबन्धलोपे 'दुष इ' इति स्थिते णिच
आर्धधातुक्त्वात्स्मिन् दकारादुकारस्य 'पुगन्तलघूपधस्य च' इति सूत्रेण प्राप्तलघू-
पधगुणं प्रबाध्य "दोषो गौ" इति सूत्रेण ऊत्वे "सनाद्यन्ता धातवः" इत्यनेन 'दूषि'
इति शिञन्तस्य धातुसंज्ञायां लटि, तिपि, णपि अनुबन्धलोपे दूषि अ ति इति
स्थिते "सार्वधातुकार्धधातुकयोः" इत्यनेन गुणे अयादेशे 'दूषयति' इति सिद्धम् ।

चित्तविरागे तु—चित्तं दुष्यति=स्नानघन्ध्यादौ विरक्तं भवति, तत्प्रयो-
जयति कामः, इत्यर्थे णिचि "वा विराविरागे" इति सूत्रेण लघूपधगुणं प्रबाध्य

विभाषया ऊत्वे णिजन्तस्य धातुसंज्ञायां लटि, तिपि, शपि, अनुबन्धलोपे गुणे अयादेशे 'दूषयति' इति । ऊत्वाभावे लघूपधगुणे 'दूषयति' इत्यपि भवति ।

वापयति—गावः वियन्ति (गर्भग्रहणं कुर्वन्ति) ताः पुरोवातः प्रेरयति इति—वापयति, वाययति वा गाः पुरोवातः । गर्भं ग्राहयतीत्यर्थः । पुरोवातकाले गावो गर्भं गृह्णन्तीति प्रसिद्धिः । अत्र हि—'वी गतिव्याप्तिप्रजनप्रकान्त्यसनखादनेषु' अस्माद्धातोः 'हेतुमति च' इति सूत्रेण णिचि अनुबन्धलोपे "अचोऽणिति" इत्यनेन वृद्धौ 'वै इ' इति स्थिते "प्रजने वीयतेः" इति सूत्रेण विभाषया आत्वे "अतिही-
व्लीरीकन्यूयीक्षमाध्यातां पुङ्क्तौ" इत्यनेन पुगागमे अनुबन्धलोपे 'वापि' इति णिजन्तस्य "सनाद्यन्ता धातवः" इत्यनेन धातुसंज्ञायां लटि, तिपि, शपि, अनु-
बन्धलोपे "सार्वधातुकार्धधातुकयोः" इति गुणे अयादेशे "वापयति" इति ।
आत्वाऽभावे तु—आयादेशे 'वाययति' इत्यपि भवति ।

जिगीषति—जेतुमिच्छतीति विग्रहे जिधातोः 'धातोः कर्मणः समानकर्तृ-
कादिच्छायां वा' इत्यनेन सनि अनुबन्धलोपे "सन्वङ्गोः" इत्यनेन द्वित्वे "अङ्गन-
गमां सनि" इत्यनेन दीर्घे "सन्लिटोर्जेः" इत्यनेन अभ्यासात्परस्य जकारस्य
कुत्वेन गकारे "सनाद्यन्ता धातवः" इत्यनेन सजन्तस्य धातुसंज्ञायां लटि, तिपि
शपि, अनुबन्धलोपे 'अतो गुणे' इत्यनेन पररूपे 'आदेशप्रत्यययोः' इत्यनेन षत्वे
'जिगीषति' इति सिद्धम् ।

तितंसति—उकारेत्संज्ञकतन्धातोः इच्छार्थे "धातोः कर्मणः" इत्यादिसूत्रेण
सनि 'सन्वङ्गोः' इत्यनेन द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे "संयतः" इत्यनेन
अभ्यासाकारस्य इत्वे "सनाद्यन्ताधातवः" इत्यनेन सजन्तस्य धातुसंज्ञायां लटि,
तिपि, शपि, अनुबन्धलोपे "तनपतिदरिद्रातिभ्यः सनो वा इङ्वाच्यः" इति वार्ति-
केन विभाषया ईटि इणः परस्य सस्य षत्वे "अतो गुणे" इत्यनेन पररूपे "तित-
निषति" इति । इडभावे—"तनोतेर्विभाषा" इत्यनेन विभाषया दीर्घे
नस्यानुस्वारे "तितांसति" इति । दीर्घाऽभावे—"तितंसति" इत्यपि भवति ।

अरारिता—पुनः पुनः अतिशयेन वा अर्तो इति विग्रहे 'सूचिसूत्रि-
मूत्र्यव्यत्यंश्रयोतिभ्यो यङ् वाच्यः' इति वार्तिकेन यङि अनुबन्धलोपे 'यङि च' इति
सूत्रेण गुणे 'अरार्यति' इति भाष्योदाहरणात् "नन्त्राः संयोगादयः" इति द्वित्व-
निषेधस्याऽप्रवृत्त्या 'सन्वङ्गोः' इत्यनेन द्वितीयैकाचस्य 'यं' इत्यस्य द्वित्वे अभ्यास-
संज्ञायां हलादिशेषे 'दीर्घोऽकितः' इत्यनेन अभ्यासस्य दीर्घे यङन्तस्य "सनाद्यन्ता

धातवः” इत्यनेन धातुत्वात् लुटि, तिपि, तासि तिपो ङादेशे ङित्वाङ्लोपे यङ् आर्धधातुकत्वादिति च कृते “यस्य हलः” इत्यनेन यकारस्य लोपे ‘अरारिता’ इति सिद्धम् ।

अचङ्क्षणीत्—‘खनु अवदारणे’ अस्मात् ‘धातोरेकाचो हलादेः क्रियासप्त-
भिदारे यङ्’ इत्यनेन यङि “यङोऽचि च” इत्यनेन तस्य लुकि ततः प्रत्ययलक्ष-
णेन यङन्तत्वात् “सन्त्यङोः” इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे “कुहोक्षुः”
इत्यनेन चुत्वे “सनाद्यन्ता धातवः” इत्यनेन धातुत्वात्लुङि तिपि अनुबन्धलोपे
“लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः” इत्यङागमे “नुगतोऽनुनासिकान्तस्य” इत्यनेन नुकि
अनुबन्धलोपे नस्यानुस्वारे परसवर्णे मध्ये च्छौ तस्य सिचि इङागमे “अस्तिसिचो-
ऽपृक्तोः” इत्यनेन तस्य ईङागमे “इट ईटि” इति सलोपे सवर्णदीर्घे “अतो हलादे-
र्लघोः” इति विकल्पेन वृद्धौ “अचङ्क्षणीत्” इति । वृद्धयभावे ‘अचङ्क्षणीत्’ इति ।

अरियतः—ऋधातोर्यङि ‘यङोऽचि च’ इति लुकि प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वाद्
द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां ‘उरत्’ इत्यत्वे रपरत्वे हलादिशेषे “सनाद्यन्ता” इति
धातुत्वात् लटि तसि ‘अ ऋ तस्’ इति स्थिते “रुप्रिकौ च लुकि” इति सूत्रेण
रिकि रीकिर्वा च कृते “अभ्यासस्याऽसवर्णे” इत्यनेन यङि सकारस्य रुत्वे विसर्गे
‘अरियतः’ इति सिद्धम् ।

२—गव्याञ्चकार—गामात्मनः इच्छाञ्चकारेति विप्रद्वे “सुप आत्मनः
क्यच्” इत्यनेन क्यचि अनुबन्धलोपे “सुपो धातुप्रातिपदिकयोः” इत्यनेन धात्व-
यवत्वात् सुल्लुकि “सनाद्यन्ता धातवः” इत्यनेन क्यजन्तस्य धातुत्वाल्लिटि आमि
‘आम’ इत्यनेन लिटो लुकि च कृते “कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि” इत्यनेन आमन्त-
लिट्परकृञोऽनुप्रयोगे लिटस्तिपि णलि द्वित्वे अभ्याससंज्ञायाम् उरदत्त्वे हला-
दिशेषे चुत्वे मकारस्यानुस्वारे परसवर्णे “वान्तो यि प्रत्यये” इत्यनेन ओकारस्य
वान्तादेशे ‘गव्याञ्चकार’ इति सिद्धम् । नन्वत्र वान्तादेशे कृते आमः आर्धधातु-
कत्वात् तस्मिन् परे वकारादल उत्तरस्य यकारस्य “यस्य हलः” इत्यनेन लोपः
कुतो नेति चेन्न, ‘सञ्जिपातपरिभाषया’ यकारनिमित्ताकावादेशसम्पन्नवकारस्य
यकारलोपं प्रति निमित्तत्वाऽसम्भवात् ।

विष्णूयति—विष्णुमिव आचरतीत्यर्थे ‘उपमानादाचारे’ इत्यनेन क्यचि
सुल्लुकि अनुबन्धलोपे क्यजन्तस्य धातुत्वात् लटि तिपि शपि “अकृतसार्वधातुक-
बोर्दीर्घः” इत्यनेन दीर्घे ‘विष्णूयति’ इति ।

इदामति—इदमिवाचरतीति विग्रहे इदमशब्दात् ‘सर्वप्रातिपदिकेभ्यः किव् वा वक्तव्यः’ इति वार्तिकेन क्विपि सर्वापहारे सुब्लुकि ‘अनुनासिकस्य किञ्चलोः ङिति’ इति सूत्रेण उपधादीर्घं क्विबन्तस्य धातुत्वाल्लटि तिपि शपि अनुबन्धलोपे ‘इदामति’ इति सिद्धम् ।

अशयति—भृशमिव आचरतीति विग्रहे ‘तत्करोति तदाचष्टे’ इति चुरादिगण-सूत्रेण सुब्लुकि ततः इष्टवद्भावाद् भसंज्ञायां दृढौ सत्यां पूर्वं वा नित्यत्वात् ‘यस्येति च’ इत्यलोपे क्यजन्तस्य धातुत्वाल्लटि तिपि शपि अनुबन्धलोपे ‘र क्ततः’ इत्यनेन रत्वे गुणे अयादेशे ‘अशयति’ इति सिद्धम् ।

घटमाक्यदिति—विग्रहे ‘तत्करोति तदाचष्टे’ इति णिचि इष्टवद्भावाद् भसंज्ञायां टिलोपे धातुत्वाल्लटि तिपि शपि अयादेशे ‘घटयति’ इति । लिटि-घट-याश्चकार । लुडादौ-घटयित् । घटयिष्यति । घटयतु । अघटयत् । घटयेत् । अज-घटत् । अघटयिष्यत् । इति । *

३—दध्यस्यति—दधि इच्छतीति विग्रहे—“लालसायाम् (उत्कटेच्छायाम्) सर्वेषां प्रातिपदिकानां क्यच् वक्तव्यः, तस्मिन् परे प्रकृतीनां सुगमुकौ च वक्तव्यौ” इत्यर्थक ‘सर्वप्रातिपदिकानां क्यचि लालसायां सुगमुकौ’ इति वार्तिकेन क्यचि सुकि च कृते सुब्लुकि क्यजन्तस्य धातुत्वाल्लटि तिपि शपि पररूपे ‘दध्यस्यति’ इति । असुगागमे तु—ययि ‘दध्यस्यति’ इति भवति ।

अजर्घट्—ऊकारेःसंज्ञक ‘गृह् प्रहणे’ इत्यस्माद्भातोर्षङि “यङोचि च” इत्यनेन यङ्लुकि प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणतया “अन्यङोः” इत्यनेन द्वित्वे अभ्यासः संज्ञायाम् “उरत्” इत्यनेन अत्वे रपरत्वे हलादिशेषे—“कुहोक्षुः” इत्यनेन चुत्वे यङन्तस्य धातुत्वाङ्ङितिपि अङागमे “यङो वा” इत्यनेन ईटि “नाभ्यस्तस्याऽचि पिनि सार्वधातुके” इत्यनेन गुणनिषेधे ‘भृदुपधस्य धातोर्भ्यासस्य रुक् रिक् रीक् एते आगमाः स्युर्यङ्लुकि’ इत्यर्थक “रुप्रिकौ च लुकि” इत्यनेन रुकि ‘अजर्घट्’ इति रिकि पक्षे—‘अजरिगृहीत्’ रीकिपक्षे—‘अजरीगृहीत्’ इति ।

“यङो वा” इतीडभावपक्षे तु—लघुपधगुणे ‘अजर्घट्’ इति स्थिते हलङ्या दिना तलोपे “हो ङः” इत्यनेन हस्य ङवे जश्वे चत्वे गस्य “एकाच्चो वङो भष् क्षण्तस्य स्त्वोः” इत्यनेन भष्भावेन घकारे ‘अजर्घट्’ रिकि पक्षे—‘अजरिघट्’, रीकि पक्षे—‘अजरीघट्’ इति च सिद्धम् । यद्यपीह “यत्रैकाजग्रहणं च” इति

निषेधाद् भषभावो दुर्लभस्तथापि “गुणो यङ्लुकोः” इत्यनेन शितपा शपेत्यादिनिषेधस्याऽनित्यत्वज्ञापनाद्भषभावोऽत्र प्रवर्तते इत्याहुः ।

चेकीयति—पुनः पुनः अतिशयेन ‘चायति’ इति विग्रहे ऋकारेत्संज्ञक ‘चाय्’ धातोर्यङि चायः की स्याद्यङीत्यर्थक “चायः की” इत्यनेन कीभावे “सन्त्यङोः” इत्यनेन द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां “कुहोक्षुः” इत्यनेन चुत्वे “गुणो यङ्लुकोः” इत्यनेन अभ्यासेकारस्य गुणे यङन्तस्य “यनायन्ताः” इति धातुत्वात्लटि चित्वादात्मनेपदे तप्रत्यये, एत्वे शपि पररूपे ‘चेकीयंते’ इति ।

पिपविषते—पवितुमिच्छतीति विग्रहे ङकारेत्संज्ञक ‘पू’ धातोः सनि “सन्त्यङोः” इत्यनेन द्वित्वे अभ्याससंज्ञायाम् “ओः पुयण्ज्यपरे” इत्यनेन अभ्यासोकारस्य इत्वे ‘स्मि पूङ् ऋ अञ्जू अश् एभ्यः सन इट् स्यादित्यर्थक “स्मिपूङ्ऋज्ज्वा सनि” इत्यनेन इटि गुणे अवादेशे “सनायन्ताः” इति धातुत्वात्लटि तत्स्थाने तप्रत्यये शपि एत्वे सकरस्य इणः परत्वात् षत्वे पररूपे ‘पिपविषते’ इति ।

ह्रीधातोर्णिचि—‘हेपयति’ इति लटि प्रथमं रूपं भवति । तथाहि—‘ह्री लज्जायामित्यस्माद्धातोर्णिचि सति वृद्धिं वाधित्वा “अर्तिह्रील्लीरीकनूयीक्षाम्यातां पुङ्शौ” इत्यनेन पुकि गुणे “सनायन्ताः” इति धातुत्वात्लटि तिपि शपि गुणे अयादेशे पररूपे ‘हेपयति’ इति ।

४—लोढधातोः—धौर्त्यम्, पूर्वभावः, स्वप्नस्वार्थः, दीप्तिरित्येके ।

चुरणधातोः—चौयमर्थः ।

माणवकमनुक्रीडति—माणवकेन सह अनुक्रीडतीत्यर्थः । अत्र “क्रीडोऽनुसम्परिभ्यश्च” इत्यनेन ‘अनुक्रीडति’ इत्यत्रात्मनेपदे प्राप्ते “अनोः कर्मप्रवचनीयाश्च” इति वार्तिकेन निषेधाच्च भवतीति विशेषः ।

गजरोपकिरति—अत्र स्वभावाख्यानम्, नतु हर्षो विषयः । तेनाऽत्र “किरते-हर्षजीविकाकुलायकरणेष्वाति वाच्यम्” इति वार्तिकेन आत्मनेपदं न । किञ्च हर्षे सत्यपि आलेखनाऽभावात् “अपाञ्चतुष्पाच्छकुनिष्वालेखने” इति सूत्रेण सुटोऽप्राप्तौ “किरतेहर्षजीविके”त्यात्मनेपदविधौ ससुट्कानामेव भाष्ये उदाहरणात् तच्च नेति तदवधिदः ।

आहृष्वं मा रघूत्तमम्—ननु ‘आहृष्वम्’ इत्यादिप्रयोगे रघूत्तमस्य कर्मत्वेन स्वीयाङ्गकर्मकाभावात्कर्मकत्वाभावाच्च “आङो यमहनः” इत्यनेन आत्म-

नेपदाभाव इति चेन्न, प्राप्येत्यध्याहारमाश्रित्य रघूत्तमं प्राप्य माहध्वमिति प्राप्ति-
क्रियां प्रत्येव रघूत्तमस्य कर्मतया हन्तेरकर्मकत्वादात्मनेपदस्य निर्वाधात् । न च
प्राप्येत्यध्याहारे श्वशुराजिह्वेतिवदत्रापि कर्मणि पञ्चम्या भाव्यमिति वान्यम्,
त्यबन्तं विनैव यत्र त्यबन्तार्थप्रतीतिस्तत्रैव 'त्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च' इति
वचनस्य प्रवृत्तिस्वात् । अत्र तु त्यबन्तं विना त्यबन्तार्थभानं न भवति, प्रत्युत
मारणमेव प्रतिभातीति तस्याविषयत्वम् । अथवा भेतुमित्यादि। तुमुजन्ताध्याहारो वा
कर्तव्यः । एवम्—'आजघ्ने' विषमविलोचनस्य वक्षः' इत्यत्र विषमविलोचनस्य वक्षः
प्राप्य आजघ्ने इति व्याख्यानेन हन्धातोरकर्मकत्वात् प्रयोगः साधुः । अथवा वक्षो
भेतुमिति तुमुजन्ताध्याहारः कर्तव्यः, यथा लोके—मल्लोऽतिहर्षोत्स्वस्यैव वक्षस्ता-
डयति, तथा विषमविलोचनस्य समीपमेत्य स्वकीयमेव वक्षः आजघ्ने ।

दर्शयते भवः, आरोहयते हस्तीति—'पश्यति भवः' इति द्वितीय-
कक्षायां या क्रियोच्यते, सैव क्रिया 'दर्शयते भवः' इति चतुर्थक्रियायामुच्यते ।
एवञ्च क्रियासाम्यात् प्रथमकक्षायां भवरूपकर्मणः कर्तृत्वाच्चात्मनेपदं सिद्धमभवति ।
एवं कर्तृस्थक्रियायाम् 'आरोहयते हस्ती' इत्यत्रापि, अथवा 'पश्यन्ति भवम्'
'आरोहन्ति हस्तिनम्' इति प्रथमकक्षायामेव कर्मणो हेतुत्वारोपात् णिचि 'दर्शयति
भवः' 'आरोहयति हस्ती' इति तृतीयकक्षायामेव तद्ध् भवति । न च भवरूपकर्मणः
कर्तृत्वाद् 'दर्शयति भवो भक्तान्' इति द्वितीयकक्षायां कथं तद्ध् न स्यादिति
वाच्यम्, अध्यारोपितकर्तृव्यापारेण साम्येऽपि णिजर्थव्यापारस्याधिक्येन समान-
क्रियत्वाभावात् । तृतीयकक्षायां तु-धातूपात्तव्यापारस्य णिजर्थव्यापारस्य च त्यागेन
समानक्रियत्वात् तद्ध् सिद्धः । न च तृतीयकक्षायामपि चाक्षुषज्ञानविषयिकरणरूप-
व्यापारगुक्तायाः 'पश्यन्ति भवं भक्ताः' इति प्रथमकक्षास्थक्रियाया अपेक्षया न्यूनता
स्यादिति वाच्यम्, एवकारेणाधिकांशस्यैव निस्सारितत्वात् ।

५—अनुपराभ्यां कृजः—अस्योत्तरं ४५ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम्—ननु "चिण्णमुलोः" इति सूत्रे दीर्घ-
ग्रहणं व्यर्थम् "चिण्णमुलोरन्यतरस्याम्" इत्येतावतैव 'मितां ह्रस्वः' इति पूर्व-
सूत्रादानुवृत्तस्य ह्रस्वस्यैव विकल्पे दीर्घविकल्पाऽसिद्धेरिति चेन्न, शाम्धातोर्ण्यन्ताणौ
पूर्वं णेलोपे लुटि तासि ण्यन्तस्याऽजादित्वाच्चिण्वदिटं तस्याभीयत्वेनाऽसिद्धतया
अनिटीति निषेधाभावाणिलोपे दीर्घविकल्पे सति 'शमिता', 'शामिता' इति रूप-
द्वयमिष्यते, ह्रस्वविकल्पविधाने तु-ह्रस्वविकल्पो न रयात्, प्रथमणिलोपस्य 'अचः

परस्मिन्' इति स्थानिवत्वेन व्यवहिततया चिण्परकणिपरकत्वाभावात् । दीर्घ-
विकल्पविधौ तु-प्रथमस्य णिचो लोपो न स्थानिवत्, दीर्घविधौ स्थानिवत्निषे-
धात् । भाष्यकारस्तु—“न पदान्त” इति सूत्रे “पूर्वत्राऽसिद्धे न स्थानिवत्”
इत्येव सिद्धत्वात् तत्र द्विवचनसवर्णानुस्वारदीर्घजश्चरविचीन प्रत्याख्यातवान् । न च
अन्यताण्यौ “चिण्णमुलोः” इति दीर्घे कर्तव्ये प्रथमणिलोपस्य स्थानिवत्त्वं दुर्वारम्,
“चिण्णमुलोः” इति दीर्घस्य पूर्वत्रासिद्धीयत्वाभावात्, ततश्च प्रथम णिचा व्यव-
हितत्वात् दीर्घानापत्तिः, एवञ्च तत्र दीर्घे कर्तव्ये स्थानिवत्त्वनिवारणाय दीर्घ-
ग्रहणस्यावश्यकत्वात् कथं दीर्घग्रहणस्य प्रत्याख्यानमिति चेन्न, “चिण्णमुलोः”
इति दीर्घविधौ णाविति णित्वजातिप्रधानो निर्देशः—चिण्णमुत्परकणित्वजातौ परत
इति यावत्, णित्वजातिश्च णिद्वये अस्तोति प्रथमणेः स्थानिवत्त्वेऽपि दीर्घस्य निर्वा-
धत्वात् । एवञ्च-ह्रस्वदीर्घयोर्विशेषाभावात् ह्रस्वविकल्प एव क्रियतां मास्तु
दीर्घग्रहणमिति भाष्याशयः ।

धानिषीष्ट—हनृधातोर्भावकर्मणि आशीर्लिङि तत्प्रत्यये णिङः सौयुटि तस्य
सुडागमे सुटः सकारस्य षत्वे षट्त्वे ‘हन् सीष्ट’ इहि स्थिते “हनो वध लिङी”ति
सूत्रस्य ‘वक्ष्यात्’ इत्यत्र कर्तरि लिङि चारितार्थ्येन अपवादत्वात् प्रबाध्य “स्यासिच्-
सौयुट्तासिष्ठु भावकर्मणोरुपदेशेऽञ्जनग्रहदशां वा चिष्वदिट् च” इति सूत्रेण
अर्धधातुके सौयुटि परे चिष्वत्वे सन्नियोगशिष्टत्वेन इटे च कृते चिष्वत्त्वात् “अचो-
ऽङ्गिति” इति वृद्धौ सस्य षत्वे “हो हन्तेः” इति कृत्वे “धानिषीष्ट” इति ।
चिष्वत्त्वाभावापत्ते—‘हन् सीष्ट’ इति स्थिते वधादेशे बलादिवादिडागमे “अतो
लोपः” इत्यलोपे सन्नियोगशिष्टत्वेन सस्य षत्वे ‘वधिषीष्ट’ इति ।

आद्यत्यन्नं वटुना—अत्र “शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्” इत्यनेन अकर्त्र-
मिप्राये परस्मैपदं भवति । ननु ‘आद्यते देवदत्तेन’ इत्यत्रेव “अदेः प्रतिषेधः”
इति वार्तिकेन अत्राऽपि परस्मैपदस्य प्रतिषेधः कुतो नेति चेन्न, ‘अनन्तस्ये’ति
न्यायेन “निगरणचलनार्थस्यः” इति सूत्रेण प्राप्तस्यैव परस्मैपदस्य तेन निषेधात् ।

अथवा प्रश्नोत्तराणि ।

बोभूयिषयिषति—अस्योत्तरं ४४ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

भिक्षुकः प्रभुमुपतिष्ठते—लिप्सया उपगच्छतीत्यर्थः । अत्र “वा लिप्सा-
यामिति वक्तव्यम्” इति वार्तिकेन विभाषया आत्मनेपदै भवति ।

समार्त—समुपसर्गात् भौवादिकस्य ऋवातोर्लुङि “अर्तिभुदशिभ्यश्चेति वक्तव्यम्” इति वार्तिकेन आत्मनेपदे तत्प्रत्यये च्छेः सिचि आडागमे ‘सम् आ ऋ स् त’ इति स्थिते “उश्च” इति क्तिवात् गुणाऽप्राप्तौ “आडश्च” इति वृद्धिं बाधित्वा परत्वात् “ह्रस्वादङ्गात्” इति सिञ्जलोपे ततो वृद्धौ रपरत्वे ‘समार्त’ इति । ‘सिञ्जलोऽप्येकादेशे’ इति सिद्धकाण्डे पाठाद् वृद्धिं प्रति सिञ्जलोपो नाऽसिद्धः । यत्तु “ह्रस्वादङ्गात्” इत्यत्राऽङ्गपदसत्त्वेन वार्णपरिभाषया वृद्धेः पूर्वं सिञ्जलोप इति तत्र, तस्य वार्णाऽऽङ्गयोरेकस्थानिकत्वं एव प्रवृत्तेः ।

शिशत्सति—यद्यितुमिच्छति ‘शिशत्सति’ । ननु “शदेः शितः” इत्यनेन शिदादिविषयशदेरात्मनेपदविधानाच्छिद्विषयसन्नन्तादि आत्मनेपदं कुतो नेति चेन्न, “शदेः शितः” इत्यत्र “पूर्ववत्सनः” “नानोर्शः” इति सूत्राभ्यां ‘सनो न’ इत्यनुवर्त्य वाक्यभेदेनाऽदोषात् । तथा हि—“शदेः शितः” इत्येकं वाक्यं, छिद्वा-विनः शदेरात्मनेपदं स्यादित्यर्थः । तेन ‘शीयते’ इत्यादौ नाव्याप्तिः । “सनो न” इत्यपरं वाक्यं, शदेः सम्मन्तेतादात्मनेपदं नेत्यर्थः । तेन ‘शिशत्सति’ इत्यादौ नातिव्याप्तिः ।

दमयन्ती कम्पनीयतामदम्—अत्र वाक्ये ‘दमयन्ती’ इत्यत्र ‘शेषात्-कर्तरि परस्मैपदम्’ इत्यनेन अकर्त्रभिप्राये परस्मैपदं भवति । “न पादम्याड्यमा-ड्यसपरिमुहुरचिवृत्तिवदवसः” इति सूत्रेण परस्मैपदनिषेधस्तु न शङ्क्यः, “अनन्तरस्ये”ति न्यायेन “निगरणचलनार्थेभ्यश्च” “अणवकर्मकाचित्तवत्कर्तृकात्” इति सूत्रद्वयप्राप्तस्यैव परस्मैपदस्य तेन निषेधात् ।

तपस्तपः कर्मकस्यैव—उपवासादिरूपतपस्तापसं तपति दुःखीकरोती-त्यर्थः । एवञ्च तापसस्य कर्मत्वे तत्प्राप्तोर्दुःखजननमर्थः । तापसः स्वयमेव तप्यते अर्थात्तपः अर्जयतीति तापसस्य कर्तृत्वे तपेरर्जनरूपार्थः । एवं हि—कर्मस्था क्रिया दुःखजननरूपा, कर्तृस्था क्रिया तु अर्जनरूपेति क्रियाभेदात् सकर्मकत्वाच्चाप्राप्ते कर्मवद्भावे “तपस्तपः कर्मकस्य” इति सूत्रं विध्यर्थम् । एवकारस्तु व्यर्थं एवेति वृत्तिकारादयः । वस्तुतस्तु कर्मत्वकर्तृत्वरूपावस्थायैऽपि तापस उपवासादिजन्य-कृशतादिरूपशरीरसन्तापमनुभूय पुण्यविशेषमर्जयतीति कर्मस्था क्रिया कर्तृस्था क्रिया च समानेति कर्मवद्भावे प्राप्ते—‘सकर्मकाणां कर्मवद्भावेति तपेरेव’ इति नियमार्थं सूत्रम् । तथा च “सकर्मकाणां प्रतिषेधो वक्तव्यः” इति वार्तिकमपि न कर्तव्यम् । नियमेनैव एवकारे लब्धे सूत्रे एवकारप्रदणं व्यर्थं सत्—‘तत्प्राप्तोरपि

यदि कर्मवद्भावाश्चेत्तर्हि तपःकर्मकस्यैवेति द्वितीयं निश्चयं करोति । तेन 'सुवर्णमुत्पति' इत्यादौ कर्मवद्भावो न भवतीति फलमिति दिक् ।

६—कर्मणेति किम्—“कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः” इति सूत्रे कर्मणेत्यस्याऽभावे—‘असिना छिनत्ति’ ‘स्थाल्यां पचति’ इत्यत्र करणाधिकरणयोर्यो व्यापारः, स एवेदानीम् ‘असिरिच्छिनत्ति’ ‘स्थाली पचति’ इत्यादौ कर्तृस्थ इति तत्रापि कर्मत्वं स्यात्, तन्माभूदित्येवमर्थं कर्मणेति पदमित्यर्थः । ननु तुल्यक्रियः कर्ता कर्मवद्भवतीत्युक्तेः केनेत्याकाङ्क्षायामनेकारकोपस्थितावपि कर्मवदिति प्रत्यासत्या कर्मणेति लभ्यत एवेति चेत्तर्हि—“गच्छति प्रामः” ‘आरोहति हस्तो’ इत्यादौ कर्तृस्थ-क्रियेभ्यो कर्मत्वं निवृत्त्यर्थं तदिति स्यात् । नचैवमपि पविमिदिप्रभृतीनामेव गमि-रुहिप्रभृतीनां सकर्मकत्वे फलस्य कर्मनिष्ठत्वे च तुल्ये कर्तृस्थभावका गम्यादयः इति कथं शातव्या इति वाच्यम्, यत्र कर्मण क्रियाकृतो विशेषो दृश्यते—यथा ‘पक्वेषु तण्डुलेषु’ यथा वा ‘छिन्नेषु काष्ठेषु’ तत्र कर्मस्था क्रिया, नेतरत्र । नहि पक्वापकतण्डुलेष्विव गतागतआमेषु आरूढानारूढहस्त्यादिषु वा क्रियाकृतं वलक्षणं प्रत्यक्षमुपलभ्यत इति ।

गाः पयो दुग्धे—अत्र दुग्धेः कर्मकर्तारि ‘न दुहस्नुनमां यक्विणौ’ इति सूत्रेण यकि निषेधे शपि तस्य “अदिप्रभृतिभ्यः शपः” इति लुकि हस्य धत्वे जश्त्वे तस्य धत्वे एवे ‘दुग्धे’ इति । अत्र प्रकृतसूत्रेण यको निषेधेऽपि “दुहश्च” इति सूत्रेण विकल्पेन ‘पक्षे’ चिण् स्यादेवेति न विस्मर्तव्यम् ।

रज्यति रज्यते वा वस्त्रम्—अत्र ‘रज्ज् रागे’ इत्यस्मादातोः “कुपि रज्जोः प्राचां श्यन् परस्मैपदं च” इति यग्विषये यकं प्रबाध्य प्राचां मते श्यनि ततः सन्धियोगशिष्टत्वात् परस्मैपदे च विहिते ‘रज्यति’ इति सिद्धं भवति । अन्यमते तु—यकि आत्मनेपदे ‘रज्यते’ इति च भवति ।

अपि गिरि शिरसा भिन्ध्यात्—प्रायेण शिरसा गिरि भेतुमयम् अलम् (समर्थः) इत्यर्थः । अत्र वाक्ये ‘भिन्ध्यात्’ इत्यत्र “सम्भावनेऽलमिति चेत् सिद्धाऽप्रयोगे” इति सूत्रेण लिङ् भवति ।

क्रियासमभिहारे द्विस्वयोः कथं परस्मैपदात्मनेपदसंज्ञेति—“क्रिया-समभिहारे लोट्, लोटो द्विस्वौ, वा च तद्ध्रमोः” इत्यत्र चत्वारि वाक्यानि । तत्र—“क्रियासमभिहारे लोट्” इति प्रथमं वाक्यम् । पौनःपुन्यं शृशार्थश्च क्रियासमभिहारः । ततश्च-पौनःपुन्ये शृशार्थे च द्योत्ये घातोर्लोट् स्यादिति

तदर्थः । “लोढो हिस्वौ” इति द्वितीयं वाक्यम्, पूर्ववाक्यविहितस्य लोढो हिस्वा-
वादेशौ स्तः तच्चात्मपादौ इति तदर्थः । ननु तर्हि हि-स्वयोः सम्योरपि लादेश-
त्वात् परस्मैपदत्वं स्यात्, अस्य स्वादेशस्य तद्ध्रस्वाहारप्रविष्टत्वाऽभावेन “तडा-
नावात्मनेपदम्” इत्यस्याऽप्रवृत्तेः, किञ्च अनयोर्हिस्वयोः “तिससूभी”ति सूत्रान-
न्तर्भूतत्वात् तिङन्तत्वं च दुर्लभं स्यादिति चेत् ? “लोढो हिस्वौ” इति द्वितीय-
वाक्ये तावत् “क्रियासमभिहारे लोट्” इति प्रथमवाक्यात् “लोट्” इत्यनुवृत्तं
स्थानषष्ठ्या विपरिणीतं तृतीयं वाक्यं सम्पद्यते । तत्र हि “लोढो हिस्वौ” इति
द्वितीयवाक्यात् “हि-स्वौ” इत्यनुवृत्तं धर्मपरमाश्रीयते । तथा च—लोढादेशौ
हि-स्ववद्भवतः इति लभ्यते, कौ भवतः इत्याकाङ्क्षायां पूर्ववाक्योपरिस्थितौ
‘हि-स्वौ’ इति गम्यते । ततश्च—‘याविमौ तिङन्तर्भूतौ हिस्वाबुक्कौ तौ प्रसिद्ध-
लोढादेशतिङन्तर्भूतहिस्ववद्भवतः’ इति तृतीयं वाक्यं पर्यवस्यति । तिङन्तर्भूत-
हिस्वयोस्तावत्क्रमात् परस्मैपदत्वमात्मनेपदत्वं तिङन्तत्वं च प्रसिद्धम् । अतः
प्रकृतौ ‘हि-स्वौ’ क्रमात्परस्मैपदात्मनेपदसंज्ञौ स्तः, तिङ्संज्ञौ चेत्यर्थः । तिङ्त्वात्-
पदत्वसिद्धिः ।

७—जन्यम्—‘जनी प्रादुर्भावे’ अस्मात् ‘तकिञ्चसिचतियतिजनिभ्यो यद्वा-
च्यः’ इति वार्तिकेन यत्प्रत्यये कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ तस्य अमादेशे पूर्वरूपे
‘जन्यम्’ इति सिद्धम् । न च यत्प्रत्ययेऽपि ‘जनिवध्योश्च’ इत्यनेन वृद्धिनिषेधात्
‘जन्यम्’ इति सिद्धौ यद्विधानं व्यर्थमिति वाच्यम्, “यतोऽनावः” इत्याद्युदात्त-
विधानार्थं स्वरे आवश्यकत्वात् ।

निकाय्यः—निचीयतेऽस्मिन् धान्यादिकमिति ‘निकाय्यो’ निवासः । अत्र
‘नि’ उपसर्गात् चिञ् घातोः “पाय्यस्राज्जाय्यनिकाय्यघाय्य मानहविर्निवाससा-
मिधेनीषु” इति सूत्रेण अधिकरणे ष्यत्, आय्, घात्वादेः कुत्वं च निपातनाद्
भवति । वृद्धिस्तु णित्वाद् ‘अचो ङ्णिति’ इत्यनेनैवेति न विस्मत्तव्यम् ।

प्रकन्ता—“क्रमेः कर्तर्यात्मनेपदविषयात् कृत इयिनपेधो वाच्यः” इति
वार्तिके ‘अनन्यभावे’ विषयशब्दः । तदन्याऽविषयत्वे सति तद्विषयत्वमनन्य-
भावः । तथा च ‘नित्यमात्मनेपदिनः’ इति फलितम् । एवं च ‘प्रकन्ता’ इत्यत्र
‘प्रोपाभ्यां समर्थाम्याम्’ इत्यनेन क्रमेरात्मनेपदविषयतासत्त्वात् ‘प्रकृतवार्तिकेन
इयिनपेधो भवति, ‘क्रमिता’ इत्यत्र तु ‘अनुपसर्गाद्वा’ इति आत्मनेपदविकल्पवि-
धानात् नित्यमात्मनेपदित्वाऽभावादियिनपेधो न भवतीति विशेषः । युवानस्तु—

तदर्हत्वमेव तद्विषयत्वम्, अर्थाद् आत्मनेपदार्हत्वमेवात्मनेपदविषयत्वमित्याहुः, तन्मते तु—प्रात्मनेपदपक्षे इग्निषेधे ‘क्रन्ता’ इति, आत्मनेपदाऽभावे इग्निषेधा-
प्राप्तौ ‘कमिता’ इति । एवं च नवीनमते विषयशब्दस्य वार्तिके प्रयोजनाऽभावः
इति ध्वन्यते ।

पूर्वसरः—पूर्वः सरतीति विग्रहे “पूर्वे कर्तरि” इति सूत्रेण पूर्वशब्दे उप-
पदे सतर्हप्रत्यये सुञ्जुकि गुणे कृदन्तत्वात् सौ रुत्वे विसर्गे ‘पूर्वसरः’ इति ।

तनुच्छत्—तनुं छादयतीति विग्रहे “किप् च” इति ययन्तात् छादि घातोः
किपि सुञ्जुकि “इहमन्त्रन् किषु च” इति छादेराकारस्य ह्रस्वे णिलोपे तुगादि-
कार्ये ‘तनुच्छत्’ इति ।

प्रस्तीमः—अस्योत्तरं ४५ वर्षे द्रष्टव्यम्

अनाश्वान्—‘अश भोजने’ श्नाविकरणः कथादिः । अस्माकिति तत्स्थाने
“उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च” इति सूत्रेण निरातनात् क्तुप्रत्यये इडभावे च
कृते द्विवादि कार्ये “अत आदेः” इति दीर्घे सति सवर्णदीर्घे च कृते श्नुविकरणाऽ-
भावात् “श्नोतेश्च” इति नुडभावे “अस्त्वसन्तस्य च” इति दीर्घे उगित्वान्नुमि
कृदन्तत्वात् सौ इल्ल्यदिना सुलोपे संयोगान्तलोपे नञ उपपदसमासे नञो नस्य
लोपे ‘तस्मान्मुडचि’ इति नुटि ‘अनाश्वान्’ इति । ‘धृतजयधृतेरनाशुषः’ इति
भारविः ।

चोपनः—‘चुप मन्दायां गतौ’ अस्मात् “चलनशब्दार्थादकर्मकाद्युच्”
इति सूत्रेण युचि “युवोरनाकौ” इत्यनादेशे गुणे विभक्तिकार्ये ‘चोपनः’ इति ।

न कादेरिति—“चजोः” इति सूत्रे ‘निष्ठायामनिट’ इति पठित्वा—निष्ठा-
यामनिट्घातोश्चजोः कुत्वमित्यर्थे गर्जघातोर्निष्ठायां सेट्त्वेन ‘गज्यम्’ इत्यादौ
“न कादेः” इति सूत्रोदाहणे कृत्वभावं सम्पाद्य वार्तिककारेण प्रत्याख्यातं तत्सू-
त्रम् । अर्जितजिप्रभृतीनां निष्ठायां सेट्त्वेन कृत्वाभावः । मुचुलुश्चुप्रभृतीनां
क्वादिगणपठितत्वेऽपि “उदितो वा” इति सूत्रेण कृत्वायां वेट्त्वात् “यस्य विभा-
षया” इति निष्ठाविषये अनिट्त्वात् “चजोः” इत्यनेन इष्टं कृत्वं भवत्येव ।
न च “न कादेः” इति सूत्रसत्तायां मुचुलुश्चुप्रभृतीनां कृत्वं न भवति, सूत्राभावे
तु प्राप्नोतीति मतद्वये प्रयोगवैलक्षण्यात् प्रत्याख्यानसङ्गतिरिति वाच्यम् ? परस्पर-
विरोधेऽपि यथोत्तरभुनिवाक्यस्य प्रामाण्यात् । एवञ्च वार्तिककारानुरोधेन मुचुलुं-
चुप्रभृतीनां कृत्वं स्वीकर्तव्यमिति दिक् ।

८—कम्बलदायो व्रजति—कम्बलं ददातितीति विग्रहे कर्मण्यणपवादं “तुमन्गुलौ” इति एगुलं बाधित्वा “आतोऽनुपसर्गे कः” इति कप्रत्ययः प्राप्तः, तमपि परत्वाद्वाधित्वा “अण् कर्मणि च” इत्याहृत्या अणि मुब्लुकि युगागमे विभक्त्यादिकार्ये ‘कम्बलदायो व्रजति’ इति सिद्धम् ।

समजः—समुपसर्गादज्धातोः “समुदोरजः पशुषु” इति सूत्रेण अ प्रत्यये विभक्तिकार्ये ‘समजः पशूनां संघः । इति । अघञपोरित्युक्त्युक्तैः “अजेव्येष-
जपोः” इति बीभावो न ।

मृगया—‘मृग अन्वेषणे’ चुरादावदन्तः, तस्माद्विण्वि ‘मृग इ’ इति स्थिते “परिचर्यापरिसर्गामृगयाऽटायानामुपसख्यानम्” इति वातिकेन निपातनात् णिनिमित्ताऽजन्तलक्षणवृद्धयभावे शे यकि च कृते “अतो लोपः” इत्यनेन आर्धघातुके यौ परे अतो लोपे “शोरनिटि” इति णिलोपे ‘मृग य’ इति स्थिते निपातनाद् अलोपाभावे “अकृत्सार्वधातुकयो” रिति दीर्घाऽभावे स्त्रीत्वाद्यापि कृदन्तत्वात् सौ तस्य हल्ङ्घादिना लोपे ‘मृगया’ इति ।

निहवः—अत्र “हः सम्प्रसारणं न न्यभ्युपविषु” इत्यनेन ‘नि’ उपसर्गात् ह्य-
तेरपप्रत्यये सम्प्रसारणे च कृते पूर्वरूपे गुणे अवादेशे स्वादिकार्ये ‘निहवः’ इति ।

गेहानुप्रपादम्—द्वितीयान्ते उपपदे अनु-प्र-उपपदात् पदेः “विशपति-
पदिस्कन्दां व्याध्यमानादेसेव्यमानयोः” इत्यनेन णमुलि अनुबन्धलोपे वृद्धौ स्वादिकार्ये ‘गेहानुप्रपादम्’ इति ।

क्त्वाणमुलौ कस्मिन्नर्थे भवत इति—अयथाभिप्रेताख्याने, समस्तौ गम्यमानायाम्, तत्प्रत्ययान्ते स्वाङ्गे उपपदे, नानार्थप्रत्ययान्ते च्च्यर्थविषये उपपदे’ तूष्णीं शब्दे उपपदे, अन्वक्शब्दे उपपदे च क्त्वाणमुलौ भवतः ।

पूर्वकालिकेति—“अलं खखोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा” “उदीचां माढी व्यतिहारे” “परावरयोगे च” इत्येतैः सूत्रैः पूर्वकालिकक्रियार्थकधातुभिन्नात् क्त्वाप्रत्ययो विधीयते ।

अथवा प्रश्नोत्तराणि ।

स्फारः—स्फुरधातोर्भावे घञि क्त्वादादिवृद्धौ “स्फुरतिस्फुलत्योर्घञि” इत्यनेन आत्वे स्वादिकार्ये ‘स्फारः’ इति ।

स्यन्दः—स्यन्दधातोः “स्यदो जवे” इत्यनेन घञि निपापादनेन नलोपे वृद्धयभावे स्वादिकार्ये ‘स्यद’ इति ।

परिवीय—परिपूर्वशतव्येज्जातोः क्त्वाप्रत्यये तस्य “समासे नञ्पूर्वे” इति व्यपि “विभाषा परेः” इत्यनेन विभाषया सम्प्रसारणे पूर्वरूपे ‘परि वि य’ इति स्थिते दुर्द्ध वाचिस्त्वा “हलः” इति दीर्घे कृदन्तत्वात्तौ तस्य लुकि परिवीय इति । सम्प्रसारणाभावे ‘परिव्याय’ इति ।

इषेरिति—इषवातोः ‘इष्वा’ इति सूत्रेण निपातनात् भावशेषगभावे च कृते क्त्वादिकार्ये ‘इष्वा’ इति ।

मूलकेनोपदंशमिति—ननु मूलकेनोपदंशं भुंक्ते इति विग्रहे ल्यबन्तसकर्मकदंशधातुयोगे मूलकस्य शब्दतः कर्मत्वाऽभावेन मूलकोपदंशयोः सम्बन्धाभावेन सामर्थ्याभावात् “उपदंशस्तृतीयायाम्” इत्यनेन यामुलप्रत्ययः, “तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्” इति समासश्चात्र दुर्लभ इति चेन्न, किमुद्दिश्य भुंक्ते इति कर्मयोऽपेक्षायां मूलकमुपदंश्य भुंक्ते इत्यर्थेन मूलकस्य कर्मत्वं समायाति, मूलकस्य दंशधातुना सहार्थसम्बन्धस्य सत्त्वात् । यदि तृतीयायाः शब्दत एवान्वये प्रत्यय इष्यते, तर्हि “करणे हनः” इतिवत् “उपदंशः करणे” इत्येव वदेत् । एवंश्च तृतीयाप्रहणासामर्थ्येन आर्थसम्बन्ध एवात्रेष्टः । शब्दतस्तु मूलकं भुजिक्रियां प्रति करणमेवेति दिक् ।

णिजन्तादि-उत्तरकृदन्तान्तभागे प्रश्नाः ।

१६३७

१—“णिच्यच्च आदेशो न स्यात्” इति फक्किा सिद्धान्तप्रदर्शनमुखेन स्वशब्दैर्व्याख्येया ।

२—सपत्नीव द्यौरिव आचरति, कलिं गृह्णाति, श्वानमावष्टे, अमुमुयञ्चमाख्यत्, इति विग्रहे त्रिपि रूपाणि प्रतिपाद्य—स्वमनायत, ओढादित्वा, इत्यनयोर्ग्रन्थोक्तपूर्वोत्तरपक्षौ सुस्पष्टं स्वगिरा प्रदर्शनीयौ ।

३—उचिच्छिषति, इत्यत्र मूकशब्दासमाधाने, यङ्लुगन्तादात्मनेपदाभावञ्च प्रतिपाद्यताम् ।

४—मेधायति, प्रापयिषति, अनुक्रोडते, उत्तपत्ते, संविद्रते, गां जानीते, अभिज्ञिपति, एतेषां विशेषकार्यप्रदर्शनपूर्वकं साधुत्वमभिधाय कण्डवावेर्धातुत्वप्रातिपदिकत्वयोः फलप्रमाणे निरूपणीये ।

५—अभाजि, मासमास्यते देवदत्तेन, पच्यते तण्डुलः, सृज्यते स्रजं भक्तः, ननु करोमि भोः, पुरा भुङ्क्ते, एतानि प्रधानकार्यप्रदर्शक-सार्थतत्तच्छास्त्रनिर्देशपुरस्सरं साधयित्वा, कर्मकर्तारि कृत्यक-खलार्थानामभावे प्रमाणं प्रदर्शयताम् ।

६—त्वं स्म अध्यापय, वसन् ददर्श, वास्तव्यः, शप्यम्, वह्यम्, प्रतिगृह्यम्, समवसर्ग्या, लाप्यम्, एतानि विशेषशास्त्रोल्लेखपु-रस्सरं संसाध्य 'वोताप्योः' इति सूत्रसत्त्वाऽसत्त्वयोः फलदोषौ साधु निरूपयत ।

अथवा—

पापचकः, मधुसूदनः, बहुक्षमा, गोसङ्ख्यः, भास्करः, दूतिहरिः, घटिन्धमः, कुमारघाती, एतानि सविग्रहं विशेषसूत्रोपन्यासमुखेन संस्कृत्य 'ई च खनः' इति सूत्रस्थदीर्घकारफलमस्ति न वेति सश-ङ्कासमाधिं प्रतिपादय ।

७—सुगः, शत्रुन्तपः, ब्रह्मवादी, राजघः, पारदृश्वा, वृक्कणः, पुत्तः, रोचिष्णुः, वेशः, भावः, एतेऽर्थप्रदर्शनपुरस्सरं साध्याः ।

८—उदुग्राहः, उच्छ्रायः, उपहवः, गोणिः, शायिका, विमार्गः, पोत्वा खलु, चूर्णपेषम् । एषु प्रधानकाय प्रदर्श्य तत्सूत्रार्थोल्लेखः ।

प्रश्नोत्तराणि ।

१—णिच्यच आदेशो नेति—अस्योत्तरं ४५ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

२—सपत्नीवाचरति—इति विग्रहे—'सपत्नीयते' 'सपत्नीयते' सपत्नीयते' इति त्रीणि रूपाणि भवन्ति ।

द्यौरिवाचरति—इति विग्रहे क्पि "नः क्ये" इति नषेधेन अगदान्तत्वाद् "दिव उत्" इत्युत्वाभावे तिपि शपि लघूपधगुणे 'देवति' इति माधवः । तत्त्व-विदस्तु-लघूपधगुणं बाधित्वा अन्तरङ्गत्वात् "छ्णो" रिति वकारस्य ऊठि यणि गुणे अवादेशे 'द्यवति' इत्याहुः ।

कलिं गृह्णाति—इति विग्रहे तिपि 'कलयति' इति रूपम् ।

श्वानमाचष्टे—इति विग्रहे णिचि इष्टवद्भावात् "नस्तद्धिते" इति टिलोपे भत्वात् सम्प्रसारणे तिपि शवादिका 'शावयति' इति । नच टिलोपं प्रबाध्य

“प्रकृत्यैकाच्” इति प्रकृतिभावः कुतो नेति वाच्यम्, येन नाप्राप्तिव्यायेन ‘टेरि-
त्यस्यैव वाचकत्वात् । परे तु—इष्टनि दृष्टस्यैव—इष्टवत्, इति टेरित्येव टिलोपो
इष्टनि दृष्टो न तु ‘नस्तद्धिते’ इति । तेन ‘नस्तद्धिते’ इत्यस्य ‘इष्टव’दित्यतिदेशाऽ-
भावेन प्रकृतिभावात् ‘टेः’ इति लोपस्याऽभावे सम्प्रसारणादिकार्ये ‘शुनयति’
इत्याहुः ।

अमुमुयञ्चमाचष्टे—अस्योत्तरं ४५ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

स्वमनायत—असुमनः सुमनो भवतीत्यर्थे—“भृशादिभ्यो मुच्यच्चेलोपश्च हलः”
इति क्यङि सकारलोपे च कृते “अकृतसार्वधातुकयोर्दीर्घः” इति दीर्घे क्यङन्तस्य
धातुत्वात्लङि तङि सार्वधातुकसंज्ञायां शपि पररूपे मनश्शब्दात् प्रागेवाटि यङि
रूपं सिद्धम् ।

ननु सुमनश्शब्दात् क्यङ्विधानेन सुमनश्शब्दस्याङ्गसंज्ञासत्वात् सुशब्दा-
त्प्रागेव अट् स्यादिति चेन्न, “सङ्ग्रामयुद्धे” इत्यत्र युद्धे सङ्ग्रामशब्दः, स च
समुपसर्गविशिष्ट एवास्ति, न केवलग्रामशब्दः, ततो ग्रामशब्दपाठेनैव संग्रामशब्द-
लाभे समुपसर्गविशिष्टपाठो व्यर्थोभूतो ज्ञापयति—धातुसंज्ञाप्रयोजकीभूतप्रत्ययस्य
चिकीर्षितत्वे उपसर्गसमानाकारकपूर्वपदस्य पृथक्करणं भवतीति तात्पर्यात् ।
तेन स्वमनायत इत्यादौ सूपसर्गस्य पृथक्करणं फलं भवति । अथ च ज्ञापकस्य
सजातीयापेक्षत्वेन यत्रोपसर्गस्य सम्पूर्णरूपेण स्थितिस्तत्रैव पृथक्करणं भवति, यत्र
तु गुणादेशेन उपसर्गस्यापहरणं भवति तत्र पृथक्करणं न भवति । ततश्च ओढ इव
आचर्येति ‘ओढायित्वा’ इत्यत्र आढः पृथक्करणाभावेन अव्ययपूर्वपदत्वाभावात्
“उन्मनाय्य” अवगल्य” इतिवत् त्यप् न भवतीति फलम् । ज्ञापकस्य विशेषापे-
क्षत्वे “उस्योमाङ्त्वाटः प्रतिषेधो वक्तव्यः” इति वार्तिकं तत्प्रत्याख्यानपरकम्
“आतञ्च” इति सूत्रे चकारग्रहणं च मानम् । अन्यथा ‘ओढीयत्’ इत्यादौ धातु-
संज्ञायां कर्तव्यायाम् आढः पृथक्करणेन ‘ओमाङ्गोश्च’ इति सूत्राऽप्रवृत्तौ वार्तिकं
व्यर्थमेव । एवञ्च पररूपादिकार्याऽप्रवृत्तौ पुनर्वृद्धिविधानार्थं चकारग्रहणमपि
व्यर्थम् । ‘आटञ्च’ इति सूत्रे चकारग्रहणं ‘आटञ्च’ इति वृद्धिविषये यद्यत् कार्यं
प्राप्नोति तत्सर्वं निवारयतीति चकारग्रहणेनैव पररूपं न स्यादिति वार्तिकं निष्प्र-
योजनमिति भगवता भाष्यकारेण प्रत्याख्यातम् ।

३—उचिच्छिषति—अस्योत्तरं ४५ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

यङ्लुगन्तादात्मनेपदाभावम्—ननु ‘बोभवीति’ इत्यत्र प्रत्ययलक्षणेन

द्वित्वधर्ममानीय 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' इत्यात्मनेपदं कथं न स्यादिति चेन्न, द्वित्वस्य प्रत्ययाप्रत्ययोभयवृत्तित्वेन प्रत्ययलक्षणसूत्राऽप्रवृत्तेः । यो हि धर्मः केवलप्रत्यये तिष्ठति, तस्यैव धर्मस्य प्रत्ययलक्षणेन आनयनं भवति, यश्च धर्मः प्रत्ययेषु वर्तते अथ च धातुष्वपि वर्तते, तस्य धर्मस्यानयनं न भवति । द्वित्वधर्मश्च यच्चादिप्रत्ययेषु वर्तते अथ च शौडादिधातुष्वपि वर्तते, इति तस्य धर्मस्यानयनं न भवति । अत एव शोभना उपदेशो यस्मिन् प्रासादे इति विग्रहे प्रत्ययलक्षणेन असन्तत्त्वमादाय "अत्वसन्तस्य" इति दीर्घोऽपि न भवति, असन्तत्त्वस्योभयेष्वपि विद्यमानत्वात् ।

४—मेधायति—'मेधा आशुप्रहणे' अस्मात् 'कण्ड्वादिभ्यो यक्' इति यकि धातुसंज्ञायां लटि तिपि शपि पररूपे 'मेधायति' इति ।

प्रापयिषति—प्रियमाशुयातुमिच्छति इति विग्रहे "तत्करोति तदाच्छे" इति ण्यन्तात् सनि इटि गाविष्ठत्वात् प्रियशब्दस्य "प्रियस्थिरे" ति प्रादेशे वृद्धौ पुकि णिचो गुणायादेशयोः वस्वे 'प्रापयिष' इति सन्नन्तात् लटि तिपि शपि "यथेष्टं नामधातुषु" इति वार्तिकेन 'यि' शब्दस्यैव द्वित्वपक्षे पररूपे 'प्रापयिषति' इति । एवं प्रियमाचक्षणं प्रेरयतीत्यर्थेऽपि प्रापि' इति ण्यन्ताडुकाद्धेतुमणौ तदन्तात् सनि इटि द्वितीयं णिचमाश्रित्य प्रथमणिचो लोपे द्वितीयणिचो गुणायादेशयोः 'प्रापयिष' इति सन्नन्ताल्लटि तिपि शपि उक्तवार्तिकेन यिशब्दस्य द्वित्वादिकार्ये 'प्रापयिषति' इति ।

अनुक्रीडते—अत्र "क्रीडोऽनुसम्परिभ्यश्च" इत्यनेन आत्मनेपदं भवतीति विशेषः ।

उत्तपते—अत्र "उद्विभ्यां तपः" इत्यनेन आत्मनेपदं भवतीति विशेषः ।

संविद्वते—लुगिकरणकसम्पूर्वकात् 'विद्' धातोर्लटि प्रथमपुरुषस्य बहुवचने रूपमिदम् । अत्र "विदि—प्रच्छि-स्वरतीनामुपसंख्यानम्" इति वार्तिकेन आत्मनेपदम्, 'वेत्तेर्विभाषा' इत्यनेन विभाषया प्रादेशस्याऽतो रुडागमश्चेति विशेषः । रुडागमाभावपक्षे तु 'संविदते' इति बोध्यम् ।

गां जानीते—"अनुपसर्गाज्ज्ञः" इति सूत्रेणात्र आत्मनेपदमिति विशेषः ।

अभिक्षिपति—अत्र "अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः" इत्यनेन परस्मैपदमिति विशेषः ।

कण्ड्वादोनां धातुत्वं प्रातिपदिकत्वं चेति—'कण्डूश् गात्रविधर्षणे' इति धातो 'कण्डु' इति ह्रस्वान्त एव पठितव्यः, "अकृतसार्वधातुकयोः" इति दीर्घे

‘कण्डूयते’ इति रूपं सेतस्यतीति दीर्घान्तपाठो ज्ञापयति—“कण्डूवादयः प्रातिपदिकाः” इति । यदि च कण्डूवादयः प्रातिपदिकाः तर्हि “कण्डूवादिभ्यो यक्” इति सूत्रे ककारोपादानं व्यर्थमेव स्यात्, तदेव व्यर्थं सन् ज्ञापयति ‘कण्डूवादयो घातवः’ इति । इत्थं च कण्डूवादीनां धातुत्वं प्रातिपदिकत्वं चेत्युभयं सिद्धम् । अत एवोक्तं भाष्ये—‘धातुप्रकरणाद्धातुः कस्य चासञ्जनादपि । आह चाऽयमिमं दीर्घं मन्ये धातुर्विभाषितः’ इति ।

एवञ्च धातुपक्षे—‘कण्डूयते’ इत्यादीनां सिद्धिः । प्रातिपदिकत्वपक्षे—यकि असति सति किपि च कृते ‘कण्डूः, धातुत्वाद्बुद्धि कण्वा, कण्डुहः इति । प्रातिपदिकत्वे—यणि कण्ड्वौ, कण्ड्वः, इत्यादि ।

५—मभाजि—‘भजि भाषार्थः’ इति धातुः । इदित्वान्तुमि ‘भञ्ज्’ इति । तस्मात् भावकर्मणि लुङि तङि अडागमे मध्ये च्लौ “चिण् भावकर्मणोः” इत्यनेन भावकर्मवाचितशब्दे परे च्लेश्विणि “भञ्जेश्च चिणि” इत्यनेन चिणि परे विभाषया नलोपे उपधावृद्धौ “चिणो लुक्” इत्यनेन तलोपे ‘अभाजि’ इति । नलोपाऽभावपक्षे वृद्धयभावात् ‘अभजि’ इति ।

मासमास्यते देवदत्तेन—ये अकर्मकाः “कर्तुरीप्सिततमं कर्म” “तथा-युक्तं चानीप्सित” इति सूत्रसिद्धकर्मरहिताः “आप्त उपवेशने-वृत्तवर्तने” इत्यादयः, तेषाम् “अकर्मकधातुभिर्योगे” इति वार्तिकसिद्धकर्मणां कर्मणि भावे च लकार इष्यते” इत्यर्थक—“अकर्मकाणां कान्तादिकर्मणां कर्मणि भावे च लकार इष्यते” इति वचनेन भावे लकारे ‘मासमास्यते’ इति । कर्मणि प्रत्यये तु—मासस्याऽभिहितत्वात् प्रथमायां ‘मासः आस्यते’ इति ।

पच्यते तण्डुलः—अत्र “कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः” इति सूत्रेण कर्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियस्य कर्तुः कर्मवद्भावे “सर्वधातुके यक्” इति अगादिकार्ये कृते ‘पच्यते’ इति । ‘तण्डुलः’ इत्यत्र तु कर्तुरभिहितत्वात् प्रथमा भवति ।

सृज्यते स्रज भक्तः—श्रद्धया निष्पादयतीत्यर्थः । अत्र ‘सृजेः श्रद्धोपपन्ने कर्तव्येवेति वाच्यम्’ इति वार्तिकेन श्रद्धोपपन्नेऽर्थे बहुलप्रकारेण कर्तुः कर्मवद्भावे इयनि ‘सृज्यते’ इति ।

ननु करोमि भोः—अकार्षीः किम् ? इति प्रश्ने प्रतिवचनमिदम् । अत्र वाक्ये ‘करोमि’ इत्यत्र “ननौ पृष्ठप्रतिवचने” इति सूत्रेण भूते लट् । (अकार्ष-मित्यर्थः) ।

पुरा भुङ्क्ते—निश्चितं भोज्यते इत्यर्थः । अत्र “यावत् पुरानिपातयोल्लेट्” इति सूत्रेण भविष्यतीत्यर्थे लट् ।

कर्मकर्तरि कृत्यक्तल्लार्थानामभावे इति—“व्यत्ययो बहुलं”—“लिङ्ग्याशिष्यङ्” इति संहितापाठे अनुस्वारस्य परस्वरणेन जाते लकारे द्विलकारश्चाल्ल इत्यनुवृत्त्या लकारश्चाद्यस्यैव कर्तुः कर्मवद्भाव इति “कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः” इत्यस्यार्थलाभेन यगादिकनेन ननु द्वितीये त भावः । अत एव कृत्यक्तल्लार्था न कर्मकर्तरि, किन्तु भाव एवेति भावः । लकारेणैव कर्मकर्तृरपस्थानेन कृदादिप्रसक्तिर्न, उक्तार्थानामप्रयोगात् । लविधेः पूर्वं तु सुतरां न तत्प्रसक्तिर्लकारोपस्थाप्यकर्तुरभावेन कर्मवत्त्वाऽभावात् ।

६—त्यं स्म अथ्याप्य—अत्र अग्नीष्टे विहितस्य लिङ्गमपवाद्य “अधीष्टे च” इति सूत्रेण लोट् ।

बलन् ददर्श—अतीतिवासकर्तृकर्तृकं दर्शनमर्थः । अत्र “धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः” इति सूत्रेण लडादेशः, लानुप्रत्ययो भूतकाले सिद्धं भवति ।

वास्तव्यः—वसतीति वास्तव्यः । “वसेस्तव्यस्कर्तरि णिच्” इत्यनेन तव्य प्रत्यये णित्वादुपधावृद्धौ कृदन्तत्वात्प्रतिपदिकसंज्ञायां सौ रूपे विभगे ‘वास्तव्यः’ इति ।

शप्यम्—“पोरदुपधात्” इत्यनेन यत्प्रत्यये कृदन्तत्वात्सौ तस्य अयादेशे पूर्वरूपे ‘शप्यम्’ इति । अत्र “नानुबन्धकृतमसारूप्यम्” इति परिभाषया ण्यदपवादो यदिति विशेषः ।

वह्यम्—वहन्यनेनेति वह्यं शकटम् । अत्र “वह्यं करणम्” इति सूत्रेण निपातनात् यत्प्रत्यये कृदन्तत्वात्सौ तस्य अयादेशे पूर्वरूपे ‘वह्यम्’ इति ।

प्रतिगृह्यम्—“प्रत्यपिभ्यां ग्रहेः” इति सूत्रे “छन्दसीति वक्तव्यम्” इति वार्तिकं पठितं तेन छन्दसि—प्रतिपूर्वकग्रह्धातोः वयप् प्रत्यये सम्प्रसारणे स्वादिकार्ये ‘प्रतिगृह्यम्’ इति । लोके तु—ण्यति उपधावृद्धौ “प्रतिग्राह्यम्” इति भवति ।

समवसर्ग्या—“कृदुपधाच्चाऽकृत्ति चृतेः” इति ण्यदपवादस्य कप प्रबाध्य “समवपूर्वाच्च” इति वार्तिकेन समवपूर्वात् सृङ्धातोः यत्प्रत्यये गुणे “वजोः” रिति कृत्वे विभक्त्यादिकार्ये ‘समवसर्ग्या’ इति ।

लाप्यम्—ण्यदपवादभूतं “पोरदुपधात्” इति यत्प्रत्ययं प्रबाध्य “ण्यत्प्रकरणे लपिदभिभ्याञ्चेति वक्तव्यम्” इति वार्तिकेन ण्यत्प्रत्यये उपधावृद्धौ विभक्त्यादिकार्ये ‘लाप्यम्’ इति ।

‘वोताप्योः’ इति—‘वोताप्योः’ इति भूते लिङ्निमित्ते लृङ् वेत्यधिकृतत्वा-
दुक्तविषये भूतकाले लृङ् वा भवति । तेन “कथं नाम तत्रभवान् धर्ममयस्तु
अत्याक्षीद्वा इति फलसिद्धिर्भवति ।

अथवा प्रश्नोत्तराणि ।

पापचक्रः—पचघातोर्यङन्तात् पापच्येत्यस्माण्वुक्ति तस्य अकादेशे
“यस्य हलः” इति यलोपे “पापच् अक” इति स्थिते अल्लोपस्य स्थानिवत्त्वाद्गुप-
घादृद्धसभावे विभक्तिकार्ये ‘पापचक्रः’ इति ।

मधुसूदनः—मधूं=दैत्यं, सूदयति=हन्ति, इति मधुसूदनः । ‘षूद क्षरणे’
अस्मात् ष्यन्तात् “नन्दि ग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यच्चः” इत्यनेन नन्दादित्वात्
ल्युप्रत्यये सुब्लुकि अनादेशे णिलोपे “सात्पदाद्योः” इति निषेधात् षत्वनिषेधे वि-
भक्तिकार्ये ‘मधुसूदनः’ इति ।

गोसङ्ख्यः—गाः संघट्टे इति विग्रहे सम्पूर्वात् ‘चक्षिङ्घातोः’ ‘समि ख्यः’
इत्यनेन कप्रत्यये सुब्लुकि “चक्षिङ् ख्याम्” इति ख्यावादेशे आतो लोपे विभक्ति-
कार्ये ‘गोसङ्ख्यः’ इति ।

भास्करः—भाः करोतीति विग्रहे “दिवाविभानिशाप्रभाभास्करान्तानन्तादि”
इत्यादि सूत्रेण टप्रत्यये अनुबन्धलोपे गुणे कस्कादित्वात् सत्वे विभक्तिकार्ये
‘भास्करः’ इति ।

दृतिहरिः—दृतिं हरतीति विग्रहे “हरतेर्दृतिनाथयोः पशौ” इत्यनेन इन्-
प्रत्यये सुब्लुकि गुणे विभक्तिकार्ये ‘दृतिहरिः’ इति ।

घटिन्धमः—घटीं धमतीति विग्रहे “घटीखारीखरीधूपसंख्यानम्” इति
वार्तिकेन खश् प्रत्यये ह्रस्वे सुब्लुकि “प्राग्राध्मे”ति धमादेशे “अरुद्धिषदजन्तस्थ
सुम्” इत्यनेन मुमागमे तस्यानुस्वारे परस्रवणे विभक्तिकार्ये ‘घटिन्धमः’ इति ।

कुमारघाती—कुमारं हन्तीति विग्रहे “कुमारशीर्षयोर्णिनिः” इति णिनि-
प्रत्यये सुब्लुकि “हनस्तोऽचिण्णलोः” इत्यनेन तकारस्य नकारे उपधावृद्धौ
इस्य कुत्वेन घत्वे कृदन्तत्वात् सौ नान्तत्वाद्दीर्घे सुलोपे नलोपे ‘कुमार-
घाती’ इति ।

‘ई च खनः’ इति सूत्रस्थदीर्घकारफलमिति—अत्र दीर्घं पठतः सूत्र-
कारस्याऽयमभिप्रायः—‘इ इ’ इति प्रश्लेषाद् द्वितीय इकारो ‘ये विभाषा’ इत्या-
द्वन्वाधनाय, अन्यथा ‘ये’ इति विषयसप्तमी तेन यकारादौ प्रत्यये एव बुद्धिस्थ

एव प्राप्तस्य अन्तरङ्गत्वेन क्यपा सङ् विधानात् 'खेयम्' इत्यत्र इकारस्य बहिरङ्गत्वेन आत्वं दुर्वा रं स्यादिति ।

'इचेति ह्रस्वः सुपठः' इति दीर्घस्य प्रत्याखानं कुर्वतो भाष्यकारस्यायमभिप्रायः—क्यप्सन्नियोगशिष्टत्वादित्वमन्तरङ्गम्, 'ये' इति परसत्तयाश्रयणाद् आत्वं बहिरङ्गम्, तथा च—युक्त एव आत्वस्य इत्वेन बाधः । नच 'इ चे'ति ह्रस्वादेशाभ्युपगमे 'खेयम्' इत्यत्र 'षत्वतुकोरि' इति गुणस्याऽसिद्धत्वे "ह्रस्वस्य पिति" इति तुगिति वाच्यम्, तुग्विधौ पदान्तपदाद्योरादेशोऽसिद्धो न त्वन्योऽपीति सिद्धान्तात् । अत एव 'वृक्षेच्छत्रम्' इत्यत्र विभाषया तुगसिद्धिः ।

७—सुगः—सुखेन गच्छतीति विग्रहे "सुदुरोरधिकरणे" इति वार्तिकेन उप्रत्यये ङित्वाङ्लोपे विभक्त्यादिकार्ये 'सुगः' इति ।

शञ्जुन्तपः—शञ्जून तपतीति विग्रहे "संज्ञायां भृतृवृजिभारिसद्धितपि दमः" इति सूत्रेण खच्प्रत्यये सुञ्जुकि "अबद्धिषदजन्तस्य मुम्" इति सुमागमे अनुस्वारे परसवर्णे विभक्त्यादिकार्ये 'शञ्जुन्तपः' इति ।

ब्रह्मवादी—ब्रह्म वेदः, तं वदतीति ब्रह्मवादी । "ब्रह्मणि वदः" इति वार्तिकेन णिनि प्रत्यये सुञ्जुकि शित्वादुपधावृद्धौ नान्तत्वाद् दीर्घे सुलोपे 'ब्रह्मवादी' इति ।

राजघः—राजानं हन्तीति विग्रहे "राजघ उपसंख्यानम्" इति वार्तिकेन निपातनात् हन्तेष्टकूप्रत्यये सुञ्जुकि पदत्वान्नलोपे ङलोपे हस्य घत्वे विभक्त्यादिकार्ये 'राजघः' इति ।

पारदृश्वः—पारं दृश्वानिति पारदृश्वः । "दृशेः क्वनिप्" इत्यनेन क्वनिप्प्रत्यये सुञ्जुकि अनुबन्धलोपे कृदन्तत्वात्सौ नान्तत्वाद् दीर्घे सुलोपे नलोपे 'पारदृश्वः' इति ।

वृक्कणः—'ओ व्रश्चू छेदने' अस्य श्चुत्वेन निर्देशः । अस्मात् कप्रत्यये 'अ-द्विष्ये'ति सम्प्रसारणे ऊदित्वेन वेदकत्वात् "यस्य विभाषा" इति निष्ठाया इडभावे चस्य कृत्वेन कत्वे "ओदितश्च" इति निष्ठातकारस्य नत्वे तस्याऽसिद्धत्वात् "स्कोरि"ति सलोपे नस्य णत्वे विभक्तिकार्ये 'वृक्कणः' इति । नन्वत्र नत्वस्याऽसिद्धत्वेन झत्परत्वात् "व्रश्चे"ति षत्वं कुतो नेति चेन्न, "निष्ठादेशः षत्वस्वरप्रत्ययेऽङ्विधिषु सिद्धो वाच्यः" इति वार्तिकेन नत्वस्याऽसिद्धत्वाऽभावकल्पनेनादोषात् ।

पूर्तः—पृधातोः कप्रत्यये "युक्तः किति" इतीप्तिषेधे "उदोष्ठ्यपूर्वस्य"

इत्युत्वे रपरत्वे ‘हलि चे’ति दीर्घे “रदाभ्यामि”ति निष्ठातकारस्य नत्वे प्राप्ते ‘न भ्याख्यापमूर्च्छिमदाम्’ इत्यनेन निषेधे विभक्त्यादिकार्ये ‘पूर्तः’ इति ।

रोचिष्णुः—रोचिर्लुं शीलमस्येति विग्रहे “अलच्छृञ्” इत्यादिसूत्रेण रुच्धातोः इष्णुच् प्रत्यये लघूपधगुणे विभक्त्यादिकार्ये ‘रोचिष्णुः’ इति ।

वैशः—विश्धातोः “पदरुजविशस्पृशो वञ्” इत्यनेन वञ्प्रत्यये लघूपधगुणे विभक्त्यादिकार्ये ‘वैशः’ इति ।

भावः—भूधातोः “भ्रिणोभुवोऽनुपसर्गे” इत्यनेन वञ् प्रत्यये ‘अचोऽङिति’ इति वृद्धौ आवादेशे विभक्त्यादिकार्ये ‘भावः’ इति ।

द—उद्ग्राहः—अत्र ‘उदि ग्रहः’ इत्यनेन उदित्युपपदाद् ग्रहधातोः वञ् प्रत्यये जित्वादुपधावृद्धौ विभक्त्यादिकार्ये ‘उद्ग्राहः’ इति ।

उच्छ्रायः—अत्र—उदित्युपपदे भ्रि, यु, प, हु, एभ्यो वञ् स्यादित्यर्थक ‘वदि भ्रयतिथौतिपूढः’ इत्यनेन उदित्युपपदात् ‘भ्रि’ धातोः वञ्प्रत्यये जित्वादुपधावृद्धौ आवादेशे इत्तुवे विभक्त्यादिकार्ये ‘उच्छ्रायः’ इति ।

उपहवः—‘उप्’ उपपदात् ह्वेन्धातोः—नि, अभि, उप, वि, एषु चतुर्वृषपदेषु ह्यतेरपस्यादित्यर्थक ‘हः सम्प्रसारणं च न्युभ्युपविषु’ इति सूत्रेण अप् प्रत्यये सम्प्रसारणे च कृते पूर्वकूपे उकारस्य गुणे अवादेशे ‘उपहवः’ इति ।

गोर्णिः—गृधातोः ‘त्रियां क्तिन्’ इत्यनेन क्तिन्प्रत्यये इत्वे रपरत्वे ‘हलि के’ति दीर्घे “ऋत्वादिभ्यः क्तिञिष्ठावद्वाच्यः” इत्यनेन ऋकारान्तात् गृधातोः परस्य क्तिन्प्रत्ययस्य निष्ठावद्भावात् “रदाभ्याम्” इति तस्य नत्वे णत्वे विभक्त्यादिकार्ये ‘गोर्णिः’ इति ।

शायिका—“पर्यायाऽर्हणोत्पत्तिषु ण्वुच्” इति सूत्रे पर्यायः=परिपाटी, अर्थात् ‘क्रमः’ अर्हणमर्हः=योग्यता । पर्यायादिषु द्योत्येषु ण्वुच् वा स्यादित्यर्थः । तत्र (क्रमे) द्वितीयमुदाहरणं ‘शायिका’ इति । अत्र ‘शीङ् स्वप्ने’ अस्माद्धातोः प्रकृतिसूत्रेण भावे ण्वुवि वोरकादेशे “अचोऽङिति” इत्यादिवृद्धौ आवादेशे क्तिविवक्षयां टापि “प्रत्यस्थदि”तीत्वे विभक्त्यादिकार्ये ‘शायिका’ इति ।

विमार्गः—विमृज्यतेऽनेनेति ‘विमार्गः’ । वि—उपसर्गात् हलन्तात् मृज् धातोः “हलश्च” इत्यनेन वञ्प्रत्यये उपधावृद्धौ “चजोःकुरि”ति कृत्वे विभक्त्यादिकार्ये ‘विमार्गः’ इति ।

पीत्वा खलु—प्रतिषेधार्थकः खलुशब्दोऽत्र । तत्तश्च पाधातोः प्रतिषेधार्थ-

योरलंखत्वोरुपपदयोः क्त्वा स्यादित्यर्थक “अलं प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा” इति सूत्रेण क्त्वाप्रत्यये “धुमास्थे” तीस्वे कृदन्तत्वात्सौ अव्ययत्वात् सुब्लुकि ‘पीत्वा खलु’ इति । पानेन साध्यं नास्तीत्यर्थः ।

चूर्णपेषम्—चूर्णमिति कर्मोपपदकपिष्ठातोः शुष्कचूर्णरूक्षेषु कर्मसुपपदेषु पिषेणमुल् स्यादित्यर्थक “शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः” इत्यनेन” णमुल् प्रत्यये सुब्लुकि लघुपधगुणे विभक्त्यादिकार्ये ‘शुष्कपेषम् इति ।

णिजन्तादि-उत्तरकृदन्तान्तभागे प्रश्नः

१६३८

१—उज्ज-स्वप्योर्णिचि, सो-दाप्योः सनि, शिव-फल्पोर्यङि लुङि तिपि रूपाणिगुल्लिख्य—‘जाग्रहिता’ इत्यत्र दीर्घतद्भासौ साधवादि-मतभेदेन वर्णनीया ।

२—आपयति मामेति । उः । पटपटायते । कनयति । प्रापयति । एषां साधुवं प्रदर्श्य, ‘त्रौजिदत्’ इत्यत्र ‘दूलोपे’ इति दीर्घः कस्मान्नेति लेख्यम् ।

३—कथं तर्हि ‘विस्मापयन् विस्मृतमात्मवृत्तौ’ इति अवगल्भा-ञ्चक्रे इत्यत्र ‘भूतपूर्वादप्यनेकाच आम्, इति च पंक्ति विशदं वर्णयत ।

४—तुरणवरणयोर्यकि सनि लुङलुटोः प्रथमपुरुषैकवचने रूपे संसाध्य णेरणाविति सूत्रं सोदाहरणं निर्दोषं व्याख्यायताम् ।

५—निगारयति । गाञ्जानीते । स्मारिता । दायिता । एषु विशेषकार्याणि प्रदर्श्य “तपस्तपः कर्मकस्यैव” इति सूत्रस्य विध्यर्थत्वनियमार्थत्वे निरूप्य सिद्धान्तपक्षः स्थाप्यताम् ।

६—अन्योन्यं स्पृशतः । वसन्तीह पुरा । आशंसौऽधोयीय । सम्भावयामि भुञ्जीत, एषु विशेषकार्याणि प्रतिपाद्य, भविष्यति मयादिति, ‘समु-च्चये सामान्यवचनस्ये’ति च सूत्रे सोदाहरणे व्याख्यायेताम् ।

७—प्रपवणीयः । उपसर्गा । शिष्यः । अरविन्दम् । सुखप्रतीक्षा । पतान् सूत्रार्थोपन्यासपूर्वकं संसाध्य ‘न क्रादेः’ इत्यस्य प्रत्याख्यानप्रकारः प्रदर्श्यताम् ।

- ८—ग्रामगः । तमोऽपहः । आढ्यम्भावुकः । दूनवान् । तुन्नः । मारिवान् ।
विभ्राणः । एतेषु विशेषकाढ्याणि विलिख्य गत्यर्थकर्मकैत्यस्य
कस्मिन् कस्मिन्नर्थे प्रवृत्तिरित्यभिधेयताम् ।
९—अर्हन् । स्तवः । विशयः । प्रधिः । पूनिः । मज्जीवनिः । लवणङ्कारं
भुङ्क्ते । दण्डोपघातम् । एते विशेषसूत्रैः साधनीया ।

प्रहनोत्तराणि ।

१—उब्ज्—धातोर्णिचि लुङि तिपि 'औब्जिजत्' इति ।

स्वप्—धातोर्णिचि लुङि तिपि 'असूषुपत्' इति ।

मी—धातोः सनि लुङि तिपि 'अमिमोःसत्' इति ।

एयन्ताद् 'दापि'—धातोः सनि लुङि तिपि 'अदीदपत्' इति ।

द्विच—धातोर्यङि लुङि तङि 'अशोश्विष्ट'—'अशेश्विष्ट' इति ।

फल्—धातोर्यङि लुङि तङि 'अपम्फुलिष्ट'—'अपफुलिष्ट' इति ।

जाग्रहिता—नन्वत्र "ग्रहोऽलिटि" इति सूत्रेण कुतो नेटो दीर्घः इति चेन्न,
तत्र सूत्रे एकाज्ग्रहणसत्त्वादेकाजिनवन्धनकार्यस्य यङ्लुगन्तेऽभावबोधनादिनि हर-
दत्तः । माधवस्तु—तत्रैकाज्ग्रहणं नानुवर्तते, एवञ्च तन्मते तत्र दीर्घो निर्वाध
एव । परन्वेतद् भयविबुद्धं, तथाहि—“एकावो द्वे प्रथमस्ये”ति सूत्रभाष्ये 'जरी
गृहिता' 'जरीगृहितम्' जरीगृहितव्यम् । इत्यत्र इटो दीर्घमाशङ्क्य 'ग्रहोऽज्ञात्परस्य
इटो दीर्घो विधीयते । 'जरीगृह्' इत्यङ्गं, तच्च न ग्रहघातुरिति निरूप्याङ्गविशेषण-
सामर्थ्यादेव "प्रकृतिग्रहणे यङ्लुगन्तस्यापि ग्रहणम्" इति नाऽत्र प्रवर्तत इति
समाहितम् । यङ्लुगन्ते उक्तो न्यायो यङ्लुगन्तेऽपि 'जाग्रहिता' इत्यादौ समान इत्य-
न्यत्र विस्तरम् । न च हरदत्तमते एकाज्ग्रहणानुक्त्यैवाऽत्र दीर्घनिवारणे सति
भाष्योक्तमिदं समाधानमसङ्गतमिति वाच्यम्, उपादस्योपायान्तराऽदूषकत्वात् ।

२—भारति—ऋषातोर्यङ्लुकि प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वात् "सन्त्यको" इति
द्वित्वे अभ्याससंज्ञायम् "उरत्" इत्यस्वे रपरत्वे हलादिदेशे घातुत्वाल्लटि ज्ञौ "अ-
दभ्यस्तात्" इत्यनेन क्षस्यादादेशे 'अ ऋ अति' इति स्थिते "रुमिकौ च लुकि"
इत्यनेन रुगागमे 'अर् ऋ अति' इति स्थिते यणि 'अर् र् अति' इति स्थिते "रो
रि" इत्यनेन रलोपे "ढलोपे" इति दीर्घे शपः पररूपे 'भारति' इति । नन्वत्र
रेफस्य लोपे कर्तव्ये यथादेशसम्पन्नस्य रेफस्य 'अचः परस्मिन्' इति स्थानिवत्त्वेन

रेफपरकत्वाऽभावात् 'रो रि' इत्यस्य कथं प्रवृत्तिरिति चेन्न, पूर्वत्रासिद्धीयकार्ये कर्तव्ये स्थानिवत्त्वनिषेधात् ।

मामोति—“यङो वा” इतीट्पक्षे ‘मामवीति’ तदभावे ‘मामोति’ इति । अत्र भव् धातोर्यङ्लुकि प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वाद् द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे “दीर्घोऽकितः” इत्यभ्यासस्य दीर्घे धातुत्वाल्लटि तिपि ‘माम् ३ ति’ इति स्थिते इङ्-भावपक्षे ‘ज्वरत्वरस्त्रिव्यमिववासुपधायाश्च’ इत्यनेन उपधाभूतस्य अकारस्य वकारस्य च ऊठि तिपः पित्वेन ङित्वाऽभावादूकारस्य गुणे ‘मामोति’ इति । उप-धायाः वकारस्य च प्रत्येकमूट्, इति पक्षे सवर्णदीर्घ इति विशेषः ।

उः—अः=विष्णुः स इवाचरतीति विग्रहे “सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्तिन्वा व-क्तव्यः” इति वार्तिकेन किपि धातुत्वाल्लिटि झौ तस्य जुषि द्वित्वे ‘अ अ उस्’ इति स्थिते अन्तरङ्गत्वात् पररूपे ततः “अत आदेः” इति दीर्घे “आतो लोप इटि च” इत्यालोपे सकारस्य रुत्वे ऋसर्गे ‘उः’ इति सिद्धम् ।

पटपटायते—पटक्चुच्चात् “अव्यक्तानुकरणाद् द्वयजवरार्द्धादनितौ डाच्” इति डाचि विवक्षिते “डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम्” इति द्वित्वे ततो डाचि कृते नित्यमात्रेडिते ‘डाचि’ इति पूर्वखण्डान्तस्य तकारस्य, उत्तरखण्डादेः पकारस्य च पररूपे एकस्मिन् पकारे, ङित्वाटिलोपे पटपटास्यदाङ्डाजन्तात् ‘लोहितादि-डाङ्भ्यः क्यष्’ इति सूत्रेण क्यषि, क्यषन्तस्य धातुत्वाल्लटि “वा क्यषः” इत्यनेन परस्मैपदविकल्पपक्षे आत्मनेपदे तत्प्रत्यये शपि पररूपे ‘पटपटा-यते’ इति ।

कनयति—युवानमाचष्टे इति विग्रहे णिचि अनुबन्धलोपे “युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम्” इत्यनेन विभाषया कनादेशे टिलोपे ण्यन्तस्य धातुत्वाल्लटि तिपि शपि गुणे अथादेशे ‘कनयति’ इति । कनादेशाऽभावपक्षे ‘यवयति’ इति भवति ।

त्रापयति—तृप्रमाचष्टे इति विग्रहे णिचि अनुबन्धलोपे “प्रियस्थिरस्फितोरुब-हुल्लगुबृद्धतृपदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्द्धिगर्वधित्रपद्राधिवृन्दाः” इति सूत्रेण त्रपादेशे उपधावृद्धौ ‘त्रापि’ इति ण्यन्ताद्धातुसंज्ञायां लटि तिपि शपि गुणे अथादेशे ‘त्रापयति’ इति ।

ओजिडत्—वह्धातोः क्तिनि ‘वह् ति’ इति स्थिते ङत्व-धत्व-भट्स्व-ढलो-पेषु कृतेषु सम्प्रसारणे पूर्वरूपे ‘ऊठिः’ इति तमाख्यदिति विग्रहे णिचि टिलोपे

‘ऊढि’ इति ण्यन्ताल्लुङि तिपि आटि वृद्धौ ‘औढि अत्’ इति स्थिते कार्यासिद्धत्वं पक्षे ढत्व-धत्व-घट्त्व-ढलोपादीनामसिद्धत्वात् ‘हृत्’ शब्दस्य द्विवे अभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे ‘कुहोश्चुः’ इति हस्य चुत्वे ‘औजि हृत्ति अत्’ इति स्थिते ‘णेरनिटि’ इत्यनेन णिलोपे ‘औजि हृत् अत्’ इति स्थिते ढत्व-धत्व-घट्त्व-ढलोपेषु कृतेषु ‘औजिढत्’ इति सिद्धम् । अत्र “ढलोप” इति दीर्घस्तु न “ह्रस्वः” इत्यनेन ह्रस्वत्वे फलाऽभावात् ।

३—कथन्तर्हि विस्मापयन्निति—‘विस्मापयन् विस्मृतमात्मवृत्तौ’ इत्यत्र मनुष्यवाचेति करणेनैव राज्ञो विस्मय इति सिंहरूपप्रयोजकाद्विस्मयाभावेन “नित्यं स्मयतेः” इति सूत्राप्रवृत्तौ आत्वाभावेन पुग्न न स्यात् । यदि प्रयोजकाद् विस्मयः स्वीक्रीयते, तदा “भीस्म्योद्धेतुभये” इत्यात्मनेपदमपि स्यात् । एवञ्च शतृप्रत्ययुक्तं रूपमनुपपन्नं भवतीति सन्देहावसरे ‘विस्मापयन्’ इत्येव पाठ इति साम्प्रदायिकाः ।

अथवा—राजा विस्मयते, मनुष्यवाक् प्रेरयतीति मनुष्यवाक् राजानं विस्मापयते इति, तां मनुष्यवाचं सिंहः प्रेरयतीति सिंहः तथा राजानं विस्मापयन्निति ण्यन्ताण्यौ मनुष्यवाक् रूपप्रयोजकाद् विस्मयो विद्यत इत्यात्वादिकार्यं सुज्ञमिति दिक् ।

अवगल्भाञ्चक्रे—अवगल्भाः पचाद्यजन्ताः । किप्सन्नियोगेनाऽनुदात्तत्वमनुनासिकत्वं चाऽचप्रत्ययस्य प्रतिज्ञायते । न चाऽत्र किप्प्रत्ययसन्नियोगेन अचप्रत्ययस्याऽनुनासिकत्वादिनिपातनाद् गल्भादिघटकाकारस्य लोपे अने काच्चाऽभावेन आम् न स्यादिति वाच्यम् । “साम्प्रतिकाभावे भूतपूर्वगतिराश्रीयते इति परिभाषया साम्प्रत्ययस्य सिद्धत्वात् । उक्तवचने प्रमाणञ्च—“आचारैऽवगल्भ” इत्यादि वार्तिकमेव । नचारेऽर्थे ‘अवगल्भते’ इत्यादावात्मनेपदार्थं वार्तिकं सार्थकमिति वाच्यम् ? “धातूनामनेकार्थाः” इति वचनेन प्रत्ययरहितगल्भादिधातोरप्याचारार्थे शक्तिप्रदर्शनादवगल्भते इत्यादौ तच्च सिद्धत्वात् । वार्तिके अवोपसर्गविशिष्टपाठसामर्थ्येन केवलगल्भादिधातोः उपसर्गान्तरविशिष्टाच्च गल्भादिधातोः क्यङेव भवतीति माधवादयः । परञ्च वयङ्-किपोर्नास्ति विवादो द्वाभ्यामपि माध्यम्, किन्तु अवोपसर्गरहितो गल्भादिभ्यः क्वपि सति परस्मैपदमेव स्यान्नन्वात्मनेपदमित्येव वक्तुं युक्तम् । वार्तिकस्य मुख्यप्रयोजनं श्रयोमे साम्प्रत्ययस्य सिद्धिः । आत्मनेपदं तु गौणफलमिति दिक् ।

४—‘तुरण त्वरायाम्’—अस्माद्धातोर्यकि सनि लुङि प्रथमपुरुषैकवचने ‘अतुतुरणिषीत्’ इति । तथाहि—‘कण् वादिभ्यो यक्’ इति यकि अतो लोपे ‘तुरण्य’ इति । तस्मात् सनि सनः आर्धधातुकत्वादिति ‘सन्त्यङोः’ इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे ‘यस्य हलः’ इत्यनेन यलोपे ‘अतो लोपः’ इत्यनेन अलोपे ‘तुतुरणिस’ इति स्थिते सन्नन्तस्य धातुत्वाल्लुङि प्रथमपुरुषैकवचने तिपि अडागमे मध्ये च्लौ तस्य सिचि ‘अतुतुरणिस सत्’ इति स्थिते सस्य ‘आर्धधातुकस्येड्वलादेः’ इत्यनेन इटि तस्य ‘अस्तिसिचोऽपृक्ते’ इत्यनेन ईटि ‘इट ईटि’ इत्यनेन सलोपे सस्य षत्वे अलोपे ‘अतुतुरणिषीत्’ इति सिद्धम् ।

लुटि तु—‘तुतुरणिषिता’ इति । तथाहि—‘तुरण्य’ इत्यस्माद्धातोर्यकि अतो लोपे ‘तुरण्य’ इति । तस्मात् सनि इटि द्वित्वादिकार्ये यलोपे अतो लोपे सन्नन्तस्य धातुत्वाल्लुटि प्रथमपुरुषैकवचने तिपि तासिप्रत्यये तिपो ङादेशे द्वित्वाल्लोपे ‘आर्धधातुकस्येड्वलादेः’ इत्यनेन इटि षत्वे ‘तुतुरणिषिता’ इति ।

‘वरण गतौ’—अस्माद्धातोर्यकि सनि लुङि प्रथमपुरुषैकवचने ‘अवीवरणिषीत्’ इति । तथाहि—वरणधातोः ‘कण् वादिभ्यो यक्’ इति यकि अतो लोपे ‘वरण्य’ इति । तस्मात् सनि सनः आर्धधातुकत्वादिति ‘सन्त्यङोः’ इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे ‘सन्त्यतः’ इत्यनेन अभ्यासस्यातः इत्वे ‘दीर्घोऽलोपोः’ इति दीर्घे ‘यस्य हलः’ इत्यनेन यलोपे ‘अतो लोपः’ इत्यनेन अलोपे ‘वीवरणिस’ इति स्थिते सन्नन्तस्य धातुत्वाल्लुङि प्रथमपुरुषैकवचने तिपि अडागमे मध्ये च्लौ तस्य सिचि ‘आर्धधातुकस्येड्वलादेः’ इत्यनेन सस्य इटि ‘अस्तिसिचोऽपृक्ते’ इत्यनेन तस्य ईटि ‘इट ईटि’ इति सलोपे अलोपे षत्वे ‘अवीवरणिषीत्’ इति सिद्धम् ।

लुटि तु—‘वीवरणिषिता’ इति बोध्यम् । साधनप्रकारस्तु लुटि पूर्ववत् ।

शोरणादिति—अस्योत्तरं ४१ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

५—निगारयति—‘नि’ इत्युपसर्गात् एयन्तात् ‘ग’ धातोः ‘निगारयच्चलनार्थेभ्यश्च’ इति सूत्रेण परस्मैपदे शबादिकार्ये ‘निगारयति’ इति सिद्धम् ।

गाज्जानीते—अस्योत्तरं ३७ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

स्मारिता—स्मृधातोः कर्मणि लुटि परत्वाग्नित्वाच्च गुणौ रपरे कृतेऽज्जन्तत्वाभावेऽप्युपदेशग्रहणात् ‘स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्जन-

प्रहृष्टां वा चिष्वदिट् च” इत्यनेन चिष्वदिटि च कृते शित्वादुपधावृद्धौ ‘स्मा-
रिता’ इति । चिष्वद्भावाभावपक्षे ‘स्मर्ता’ इति ।

ह्रायिता—दाधातोः कर्मणि लुटि “स्यसिजि”ति चिष्वदिटि च कृते “आतो
लुक् चिणकृतोः इत्यनेन युक्ति ‘दायिता’ इति । चिष्वद्भावपक्षे ‘दाता’ इति ।

तपस्तपःकर्मकस्यैव—अस्योत्तरं ३६ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

६—अन्योन्यं स्पृशतः—अत्र “सकर्मकाणां प्रतिषेधो वक्तव्यः”
इति वार्तिकेन कर्मवत्वप्रतिषेधे ‘स्पृशतः’ इति । कर्मवत्वे तु ‘स्पृश्येते’
इति स्यात् ।

वसन्तोह पुरा—अस्योत्तरं ४१ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

आशंसेऽधीयीय—गुरुरूपेयान्चेदाशंसे ‘अधीयीय’ । अत्र “आशंसाव-
चने लिङ्” इति सूत्रेण भविष्यत्यर्थे लिङ् ।

सम्भावयामि भुञ्जीत—अत्र “विभाषा धातौ सम्भावनवचनेऽयदि” इति
सूत्रेण सम्भावनेऽर्थे विभाषया लिङि ‘भुञ्जीत’ इति । लिङभावे ‘भोक्ष्यते, इति
‘वा’ भवति ।

भविष्यति मर्यादावचनेऽवरस्मिन्—भविष्यति काले मर्यादोक्ताववर-
स्मिन् प्रविभागेऽनद्यतनवन्न भवतीति सूत्रार्थः । योऽयमध्या गन्तव्य आपाटलि-
पुत्रात्तस्य यदवरं कौशाभ्यास्तत्र सक्तुन् ‘पास्यामः’ इत्युदाहरणम् । अत्र कौशा-
भ्या इति मर्यादा गम्यते, अवरमित्यनेन अवरत्वं गम्यते तेन भविष्यत्यनद्यतने
लुटं प्रबाध्य लृडेव भवतीति ।

समुच्चये सामान्यवचनस्य—समुच्चये लोड्विधौ सामान्यार्थकस्य धातो-
रनुप्रयोगः स्यादिति सूत्रार्थः । सक्तुन् पिब, घानाः खादेत्यभ्यवहरततीत्याद्युदा-
हरणम् ।

७—प्रपवणीयः—प्रपूर्वकात् ङकारेतसंज्ञक ‘पू’ धातोः धातोः तव्यत्.तव्य-
अनीय प्रत्ययाः स्युर्दित्यर्थकेन “तव्यत्तव्यानीयः” इत्यनेन अनीयर् प्रत्यये अनु-
बन्धलोपे उकारस्य गुणे अवादेशे ‘प्रपवणीय’ इति स्थिते उपसर्गस्थान्निमित्तात्पर-
स्याऽच उत्तरस्य कृत्यस्य नस्य यात्वं स्यादित्यर्थकेन “कृत्यचः” इति सूत्रेण
यात्वे कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ तस्य कृत्वे विसर्गे ‘प्रपवणीयः’ इति सिद्धम् ।
“न भामूपकमिगमिप्याबीवेपाम्” इति सूत्रे “पूज एवेह प्रहणमिष्यते” इति
वार्तिकोक्त्या अत्र यात्वनिषेधो न ।

उपसर्गः—गर्भाधानार्थं वृषभेणोपगन्तुं योग्या गौरित्यर्थः । अत्र उपोपसर्गात् ‘स’ धातोः गर्भग्रहणे प्राप्तकाला स्त्रीपशुव्यक्तिर्विवक्षिता चेदुपसर्गा इति निपात्यते इत्यर्थक “उपसर्गा कार्या प्रजने” इति सूत्रेण ण्यत्प्रत्ययं प्रवाध्य निपातनात् यत्प्रत्यये गुणे स्त्रीत्वाद्वापि कृदन्तत्वात् सौ तस्य हल्ङ्यदिना लोपे ‘उपसर्गा’ इति जातम् ।

शिष्यः—शास् धातोः एति-स्तु-शास्-वृ-ह-जुषेभ्यः क्यप् स्यादित्यर्थक-“एतिस्तुशास्वृहजुषः क्यप्” इति सूत्रेण क्यपि अनुबन्धलोपे शास उपधाया इत्स्यादङि हलादौ विकृति चेत्यर्थक “शास इदङ्ङ्होः” इति सूत्रेण इत्वे षत्वे कृदन्तत्वात् सौ तस्य क्त्वे विसर्गे ‘शिष्यः’ इति सिद्धम् ।

अरविन्दम्—अराणि विन्दतीत्यर्थे गवादिषु उपपदेषु शो वाच्य इत्यर्थक “गवादिषु विन्देः संज्ञायाम्” इति वार्तिकेन कर्मण्यणं प्रवाध्य शप्रत्यये उपपदसमासे कृदन्तत्वात् सौ तस्य क्त्वे विसर्गे ‘अरविन्दः’ इति ।

सुखप्रतीक्षा—सुखं प्रतीक्षते इत्यर्थे कर्मण्युपपदे ईक्षिणिभ्यां च णः स्यादित्यर्थक “ईक्षिणिभ्यां च” इति वार्तिकेन कर्मण्यणं प्रवाध्य णप्रत्यये उपपदसमासे टापि विभक्त्यादिकार्ये ‘सुखप्रतीक्षा’ इति ।

“न क्वादेः”—इत्यस्य प्रत्याख्यानप्रकारः ३६ वर्षे द्रष्टव्यः ।

८—ग्रामगः—ग्रामं गच्छतीति विग्रहे “अन्यत्राऽपि दृश्यत इति वक्तव्यम्” इति वार्तिकेन ग्राममित्युपपदेऽपि गम्धातोर्ङप्रत्यये ङित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेलोपे उपपदसमासे विभक्त्यादिकार्ये ‘ग्रामगः’ इति जातम् ।

तमोऽपहः—तमांसि अहन्तीत्यर्थे कर्मण्युपपदे अपपूर्वात् हन्धातोः “अपेः क्लेशतमसोः” इत्यनेन ङप्रत्यये ङित्वादभस्यापि टेलोपे उपपदसमासे विभक्त्यादिकार्ये ‘तमोऽपहः’ इति ।

आढ्यम्भावुकः—(अनाढ्यः) आढ्यो भवतीत्यर्थे “कर्तरि भुवः खिण्णच्-खुकजौ” इत्यनेन खुकञ्प्रत्यये खजावितौ खित्वान्मुमि जित्वाद्बुद्धौ आवादेशे विभक्त्यादिकार्ये ‘आढ्यम्भावुकः’ इति सिद्धम् ।

दूनवान्—‘दङ् परितापे’ अस्मात् ‘कर्तरि कृदि’ति कर्तरि क्ववतुप्रत्यये अनुबन्धलोपे “क्त्ववत् निष्ठा” इत्यनेन निष्ठासंज्ञायाम् “ओदितश्च” इत्यनेन निष्ठातस्य नत्वे ‘दूनवत्’ इति स्थिते कृदन्तत्वात् सौ उगित्वान्मुमि नान्तत्वाद् दीर्घे हल्ङ्यदिना सुलोपे ‘दूनवान्’ इति । नच ओदित्वाऽभावात् ‘ओदितश्चे’

इत्यनेन कथं नत्वमिति वाच्यम् ? 'षूक्प्राणिप्रपत्ते' इत्याद्या नव धातवः ओदितः, इति दिवादिगणोक्तेऽस्य पाठात् ।

नुन्नः—प्रेरणार्थक 'णुद्' धातोः 'णो नः' इत्यनेन नत्वे 'नुद्' इति । तस्मात् कप्रत्यये 'नुद्' इति स्थिते "नुदविदोन्दन्नाग्राह्वीभ्योऽन्यतरस्याम्" इत्यनेन निष्ठा- तस्य नत्वे धातोर्दस्याऽनुनासिके कृदन्तत्वात् सौ तस्य क्त्वे विसर्गे 'नुन्नः' इति । जत्वाऽभावे 'नुत्तः' इति ।

आरिवान्—'अ' धातोर्लिटि तत्स्थाने "लिटः कानच्वा, क्वसुश्च" इत्यनेन क्वसुप्रत्यये "ऋच्छत्यताम्" इत्यनेन गुणे कृते द्वित्वाऽभ्याससंज्ञाहला- दिशेषाऽभ्यासदीर्घसवर्णदीर्घेषु कृतेषु "वस्वेकाजाद्वसाम्" इत्यनेन इटि कृद- न्तत्वात् सौ 'आरिवस्म' इति स्थिते उगित्वान्नुमि संयोगान्तलोपे इत्थया- दिना सलोपे नान्तत्वाद् दीर्घे 'आरिवान्' इति जातम् ।

विभ्राणः—'डुभृञ् धारणपोषणयोः' अस्मात् कर्तरि "ताच्छ्रीत्यवयोवचन- शक्तिषु चानश्" इति सूत्रेण चानश्प्रत्यये अनुबन्धलोपे शित्वात् सार्वधातुकसं- ज्ञायां शपि तस्य श्लौ 'श्लौ' इत्यनेन द्वित्वे अभ्याससंज्ञायाम् "उत्" इत्यनेन अत्वे हलादिशेषे "अभ्यासे चर्च" इत्यनेन जश्त्वे "भृशामित्" इत्यनेन इत्वे 'विभृ आन' इति स्थिते यणि णत्वे कृदन्तत्वात् सौ तस्य क्त्वे विसर्गे 'विभ्राणः' इति । (चानशो लादेशत्वाऽभावादनन्तत्वात् परस्मैपदिभ्योऽपि प्रवृत्तिः)

गत्यर्थाऽकर्मकश्चिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीयतिभ्यश्च—अत्र सूत्रे 'लः कर्मणि च भावे चे' त्यतो भावे कर्मणीति, 'आदिकर्मणि क्तः कर्तरि चे' त्यतः कर्तरि इति चानुवर्तते । तेन भावे, कर्मणि, कर्तरि चाऽर्थे अस्य प्रवृत्तिः ।

६—अर्हन्—'अर्हं पू जायाम्' अस्माद्धातोः "अर्हः प्रशंसायाम्" इति सूत्रेण शतृप्रत्यये उगित्वान्नुमि संयोगान्तलोपे कृदन्तत्वात् सौ तस्य लोपे 'अर्हन्' इति ।

स्तवः—'स्तु' धातोः 'ऋदोरप्' इति सूत्रेण अप्रत्यये गुणोऽवादेशे कृद- न्तत्वात् सौ क्त्वे विसर्गे 'स्तवः' इति ।

विशयः—"व्युपयोः शेते यर्याये" इति सूत्रस्य प्रत्युदाहरणमेतत् । तत्र हि पर्यायः=प्राप्ताऽवसरता । एवञ्च 'पर्याये' इत्यस्य ग्रहणाभावे-वि-उप, इत्युपपद- योः शीङ्धातोर्षभ्यादित्यर्थे संशयार्थेऽपि 'विशयः' इत्यत्र घञापत्तौ 'विशायः' इति स्यात् ।

प्रधिः—प्रोपसर्गात् धुसंज्ञकधाधातोः "उपसर्गे धोः किः" इति सूत्रेण

कप्रत्यये “आतो लोप इटि च” इत्यनेन आलोपे कृदन्तत्वात् सौ तस्य रुत्वे विसर्गे ‘प्रधिः’ इति ।

पूनिः—प्रकारेःसंज्ञक ‘पू’ धातोः “कृत्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्वाच्यः” इति वार्तिकेन क्तिन्प्रत्यये अनुबन्धलोपे “त्वादिभ्यः” इत्यनेन तकारस्य नस्वे कृदन्तत्वात् सौ रुत्वे विसर्गे ‘पूनिः’ इति ।

अजीवाणि—आक्रोशे गन्धजाते सति नञुपगदात् ‘जीव’ धातोः “आक्रोशे नञ्यनिः” इति सूत्रेण अनिप्रत्यये कृदन्तत्वात् सौ रुत्वे विसर्गे ‘अजीवनिः’ इति । अजीवनमित्यर्थः ।

लवणङ्कारं भुङ्क्ते—अत्र लवणशब्दः स्वादुपर्यायः । तेन स्वादुपर्यायात् लवणपूर्ववदात् कृ धातोः “स्वादुमि णमुल” इति सूत्रेण णमुल् प्रत्यये पूर्वपदस्य निपातनान्मान्तस्वे णित्वाद्बुद्धौ मस्य अनुत्तरे परसवर्णे कृदन्तत्वात् सौ हल्-ङ्यादिना सुलोपे ‘लवणङ्कारम्’ इति ।

दण्डोपधातम्—दण्डेनोपधातं ‘दण्डोपधातम्’ । अत्र “द्विसार्थानां च समानकर्मकाणाम्” इत्यनेन ‘दण्डेन’ इति तृतीयान्ते उपपदे ‘उप’ इत्युपसर्ग-पूर्वकात् ‘हन्’ धातोर्णमुल् प्रत्यये णित्वाद्बुद्धौ हस्य कुत्वेन घत्वे नकारस्य तका-रादेशे कृदन्तत्वात् सौ हल्ङ्यादिना सुलोपे ‘दण्डेन उपधातम्’ इति स्थितौ ‘तृतीया प्रभृतीन्यन्यतरस्याम्’ इत्यनेन पादिके समासे ‘आद्गुणः’ इत्यनेन गुणे ‘दण्डोपधातम्, इति ।

णिजन्तादि-उत्तरकृदन्तान्तभागे प्रश्नाः

१६३४

- १—शिव-वा-धातोर्णौ, प्रह-दिब् धातोः सनि, अश्-प्रह् धातोर्त्यङि च सूत्रनिर्देशं विनैवैकैकं रूपं प्रदर्श्य—उपधाकार्यं द्वित्वात् प्रबल-मिति पङ्क्तिर्व्याख्येया ।
- २—अज्-उवरधातोः रूपे यङ्लुकि विचार्य विद्वच्छ्रुदात् क्यङि लट-स्तिपि ते च कीदृग् रूपाणि इति लेखनीयम् ।
- ३—मेधाररयोर्यकि लिटि प्रथमपुरुषबहुवचने अपोपसृष्टकिरतेर्लुङि तिपि च रूपाणि संस्कृत्य आक्रमते । परिमृष्यति । विवदन्ते । उपक्रमते । संगिरते । पशु विशेषकार्याणि वदत ।

- ४—बुभूषिष्यते । दायिषीष्ट । श्वः शीघ्रं वक्ष्यामः । जगाम किम् ।
एतानि विशेषकार्यविधायकसूत्रोपन्यासमुखेन साधयित्वा कर्मव-
त्कर्मण्येति सूत्रे कर्मण्येति किमिति किमुक्तं लिखत । .
- ५—इह भुञ्जीत भवान् । प्रवपणीयम् । परया । लभ्यम् । पापचकः ।
गायनः । एषु विशेषकार्यं प्रदर्श्य दिवाविमेति सूत्रं सकलं सोदा-
हरणं विचार्य लिखत ।
- ६—कालि मन्या । शीतभोजी । दूनः । अभिशोनः । स्वान्तम् । मूर्त्तः ।
ग्लानः । एतानि साधयित्वा हस्-धातोर्भावकर्मणोः के को विशेष
इति स्पष्टमाभधीयताम् ।
- ७—शक्नोति भोक्तुम् । स्फालः । पूनिः । भुक्त्वा ब्रजति । जरीत्वा ।
एतेषु चतुर्णां तत्तद्विशेषसूत्रोपन्यासमुखेन साधुत्वं प्रतिपाद्यताम् ।

प्रश्नोत्तराणि ।

१—‘हु ओ श्वि गतिवृद्धयोः—अस्माणिचि लटि तिपि ‘श्वाययति’
इति सिद्धं रूपं भवति ।

‘वा’ धातोः—कप्पेऽर्थे णिचि लटि तिपि ‘वाजयति’ इति । भिन्नार्थे लु
‘वापयति’ इति ।

‘प्रह’ धातोः—सनि लटि तिपि ‘जिघृक्षति’ इति ।

‘दिक्’ धातोः—सनि लटि तिपि ‘दुद्युषति-दिदेविषति’ इति ।

‘अश्’ धातोः—यङि लटि ‘अशाशयते’ इति ।

‘ग्रह’ धातोः—यङि लटि ‘जरीयुह्यते’ इति ।

उपधाकार्यं द्वित्वात्प्रबलम्—अयम्भावः—इष्-धातोः सनि इटि कृते
ह्लादित्वाऽभावेन “रलो व्युपधादलादेः संश्च” इत्यनेन कित्वाऽप्राप्तौ गुणो ‘एष्
इ स’ इति स्थिते ‘अजादेद्वितीयस्य’ इत्युक्तत्वात् ‘षिस्’ इत्यस्य द्वित्वे अभ्यास-
संज्ञायां ह्लादिशेषे सनः सकारस्य षत्वे सन्नन्तस्य धातुत्वात्लटि तिपि शपि पर-
रूपे ‘एषिषिषति’ इति रूपं सिद्धम् । नन्विह सत्यपि क्तिवे नित्यत्वात् पर-
मपि गुणं वाधित्वा ‘षिस्’ इत्यस्य द्वित्वे धात्ववयवस्य इकारस्य उपधात्वाऽभावात्
देव गुणाऽप्रसक्तेर्ह्लादेरिति व्यर्थमिति चेन्न, इह नित्यमपि द्वित्वं गुणेन वाधते,
“उपधाकार्यं हि द्वित्वात् प्रबलम्—ओरोऽर्द्धित्करणस्य सामान्यापेक्षणापत्तात् ॥

तथाहि 'ओण' धातोः ययन्ताल्लुङि चङि "यौ चङ्युरधायाः ह्रस्वः" इति ह्रस्व-
स्य "नागलोपिशास्त्रदिताम्" इति निषेधे सति 'ओणि अ त्' इति स्थिते 'णि'
शब्दस्य द्वित्वे 'माभवानोणिणत्' इति रूपम् । अत्रोपधाह्रस्वनिषेधार्थमोणोः ऋदि-
त्करणम् । उपधाह्रस्वे कृते तु 'उण् इ अ त्' इति स्थिते 'णि' शब्दस्य द्वित्वे 'माभ-
वानुणिणत्' इति स्यात् । ओकारो न श्रूयेत । यदि तु निदयत्वाद्धुपधाह्रस्वाद् प्रागेव
'ओण् इ अ त्' इति दशायां द्वित्वं स्यात्, तदा ओकारस्योपधात्वाभावादेव
ह्रस्वाऽप्रसङ्गतेस्तन्निषेधार्थम् ऋदित्करणमनर्थकं स्यात् । तस्मादुपधाह्रस्वात्मकम्
उपधाकार्यं द्वित्वात्प्रबलमिति विधायते ।

२—अज्धातोः—यङ्लुकि 'वेवीयते' इति । नच 'अज्' धातोः इलादित्वा-
ऽभावात् "धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्" इत्यस्य कथं प्रवृत्तिरि-
वाच्यम् ? "अजेर्व्यधजपोः" इति वीभावविधायनवृत्तार्धधातुके विषयसप्तम्याश्रय-
णेन यङि विवक्षिते सत्येव अजेर्वीभावे कृते इलादित्वस्य जागरूकत्वात् । ननु
अजेर्वीभावानन्तरं यङि सति तस्य "यङोऽचि च" इत्यनेन लुक् कुतो नेति चेन्न
लुका लुप्तयङो भाविशानविषयत्वाऽभावेन वीभावस्याऽप्रवृत्तेः । एवञ्चार्धधातुक
इति विषयसप्तम्याश्रयणाच्च यङ्लुगिति तत्त्वम् । प्रत्ययलक्षणन्तु न, 'न ह्यमतेति
निषेधात् ।

उवर् धातोरिति—'उवर्' धातोर्यङ्लुक् भवतीति माधवादयः । नच "य-
कारवकारान्तानां तूठ्भाविनां यङ्लुङ् नास्ती" ति ज्ञापनात् 'उवर्त्वर'ेत्यूठ्भाविनो
उवर्धातोर्यङ्लुक् कथं स्यादिति वाच्यम् ? उत्तज्ञापकं "च्छ्वो शङ्" इत्यनेन
यत्रोठ् प्रवर्तते तत्रैव तज्ज्ञापकस्योक्तसूत्रस्य भाष्यमूलकत्वात् । एवञ्च "उवर्-
त्वर" इत्यादिसूत्रेण यत्रोठ् भवति तत्र यङ्लुग् भवत्येवेति तत्त्वविदः । (ज्ञाप-
नप्रकारस्तु ४१ वर्षे द्रष्टव्यः)

विद्वच्छब्दादिति—विद्वच्छब्दात् क्यङि लटि 'विद्रायते' 'विद्वस्यते' इति ।
अत्र परस्मैपदं तु न, क्यङो ङित्वेन आत्मनेपदस्य जागरूकत्वात् ।

३—मेधा आशुग्रहणे—अस्मात् "कण्वादिभ्यो यक्" इत्यनेन यकि
'सनाथन्ता' इति धातुत्वाह्मि द्वित्वादिकार्ये प्रथमपुरुषबहुवचने 'मेधाया-
ञ्चक्रुः' इति ।

अरर आराकर्मणि—अस्मात् "कण्वादिभ्यो यक्" इत्यनेन यकि 'सना-
थन्ता' इति धातुत्वाह्मि द्वित्वादिकार्ये प्रथमपुरुष बहुवचने 'अरराञ्चक्रुः' । इति

अपोपसृष्टकिरतेर्लुङि तिपि—“अपाकारीत्” इति भवति । “अपाञ्चतु-
ष्पाच्छकुनिःखलेखने” इति सूत्रे आलेखनम् = खननम् । तेन ‘गजोऽपाकारीत्’
इत्यत्र हर्षे सत्यपि आलेखनाऽभावात् सुट् न । “किरतेर्हर्षजीविकाकुलायकरणेऽपि-
ति वाच्यम्” इत्यात्मनेपदविधौ ससुट्कानामेव भाष्ये उदाहरणात् तदपि नेति
तत्त्वविदः ।

आक्रमते—आङ्पूर्वकात् उद्गमनार्थक क्रमूधातोः “आङ् उद्गमने” इति
सूत्रेण आत्मनेपदे ‘आक्रमते’ इति ।

परिमृष्यति—परीत्युपसर्गपूर्वात् ‘मृष तितिक्षायाम्’ इति दैवादिकस्य
मृष्धातोः स्वरितेत्वात्पदद्वये प्राप्ते “परेर्मृषः” इति सूत्रेण आत्मनेपदं प्रवाच्य
परस्मैपदे ‘परिमृष्यति’ इति ।

विवदन्ते—क्षेत्रे विरुद्धं व्यवहरन्तीत्यर्थः । ‘वि’ इत्युपसर्गात् ‘वद्’ धातोः
“भास्वनोपसम्भाषाज्ञानयत्नविमर्युपभन्त्रणेषु वदः” इति सूत्रेण आत्मनेपदे ‘विव-
दन्ते’ इति । ‘विमतौ’ इत्यस्योदाहरणमेतत् ।

उपक्रमते—उपोपसर्गात् क्रमूधातोः “प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम्” इत्यनेन
आत्मनेपदे ‘उपक्रमते’ इति ।

संगिरते—समुपसर्गात् ‘गृ’ धातोः “समः प्रतिज्ञाने” इत्यनेन आत्मनेपदे
‘संगिरते’ इति सिद्धम् ।

४—बुभूषिष्यते—सनन्तात् भूधातोर्भावे कृटि आत्मनेपदे तप्रत्यये ‘बुभूष
त’ इति स्थिते स्यप्रत्यये कृते “स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्जन-
प्रहृष्टां चिण्वदिट् च” इति सूत्रेण चिण्वद्भावसन्नियोगसिष्टेन इटि ततः “अचो
ष्णिगति” इति प्राप्तां वृद्धिं वाचित्वा परत्वाद् “अतो लोपः” इत्यनेन अलोपे उभ-
योः सकारयोः षत्वे ढेरत्वे ‘बुभूषिष्यते’ इति । चिण्वद्भावाऽभावपक्षेऽपि बला-
दिलक्षणे इटि रूपं तुल्यम् ।

दायिषीष्ट—दा-धातोर्भावे आशिष्पूजिञि आत्मनेपदे तप्रत्यये “लिङ् सीयुट्”
इत्यनेन सीयुडागमे “सुट्तिथोः” इत्यनेन सुडागमे ‘दासीसत’ इति स्थिते “स्य-
सिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्जनप्रहृष्टां चिण्वदिट् च” इत्यनेन चिण्व-
द्भावसन्नियोगसिष्टेन इटि “आतो युक्चिण्वकृतोः” इत्यनेन युगागमे उभयोः
सस्य षत्वे ततः ध्रुत्वे ‘दायिषीष्ट’ इति । चिण्वद्भावाऽभावपक्षे ‘दासीष्ट’ इति ।

श्वः शीघ्रं वक्ष्यामः—अनद्यतनत्वसूचनाय श्वशब्दः । अत्र लुटं प्रवाच्य

“क्षिप्रवचने लृट्” इति सूत्रस्थ ‘लृट्’ ग्रहणसामर्थ्यात् लृट् भवति । अयम्भावः—
‘क्षिप्रवचने न’ इत्युक्ते ‘सामान्यातिदेशे विशेषानतिदेशः’ इति न्यायेन भवि-
ष्यत्सामान्ये विहितस्य लृट् एव निषेधः स्यान्नतु लुट्, तस्य अनद्यतनभविष्य-
द्विशेषविधानात् । कुते हि लृट्ग्रहणे तु उक्तविषये लृडेव स्यात्, नतु लकार-
न्तरमिति लामाल्लुटोऽपिविषये लृडेवेति लभ्यते ।

जगाम किम्—‘आसन्नकालिके भूतानद्यतनपरोक्षार्थवृत्तिभात्वर्थे प्रष्टव्ये
सति लिङ्विषये लङ्लिटौ स्तः’ इत्यर्थक “प्रश्ने चासन्नकाले” इति सूत्रेण लङ्
सति ‘अगच्छत्’ किम् इति । लिटि सति ‘जगाम’ किम् इति च भवति ।

कर्मणेति किम्—अस्योत्तरं ३६ वर्षे द्रष्टव्यम्

५—इह भुञ्जीत भवान्—अत्र ‘भुञ्जीत’ इत्यत्र “विधिनिमन्त्रणे”ति
सूत्रेण निमन्त्रणेऽर्थे लिङ् भवति ।

प्रवपणीयम्—“कृःयच्” इत्यनेन नित्यमेवाऽत्र एत्वं भवति । “इलश्चे-
जुपधात्” इति सूत्रस्य प्रत्युदाहरणमेतत् । तत्र हि ‘इजुपधात्’ इत्यस्याऽभावे-
ऽत्राप्यनेन वैकल्पिकत्वं स्यात् ।

पण्य—‘पण्य व्यवहारे’ अस्माद्धातोः “अवद्यपण्यवर्था गर्ह्यपणितव्याऽ-
निरोधेषु” इति सूत्रेण निपातनादत्र यत्प्रत्ययो भवति । यद्यपि ‘पण्य व्यवहारे
स्तुतौ च’ इति धातोरर्थद्वयमस्ति, तथापि पण्यशब्दस्य प्रयोगबलेन अववर्तय्ये
एव रुढत्वादिह व्यवहारार्थक एव गृह्यते । स्तुतौ तु—प्यति उपधावृद्धौ ‘पाण्यम्’
इति भवति ।

लभ्यम्—लभ्धातोः “पोरदुपधात्” इत्यनेन यत्प्रत्यये कृदन्तत्वात्प्राप्ति-
पदिकसंज्ञायां सौ सकारस्य अमादेशे पूर्वरूपे ‘लभ्यम्’ इति । ननु यण्यतोरसा-
रूप्यात् “वासरूपोऽस्त्रियाम्” इति परिभाषया “ऋहलोर्ण्यत्” इत्यनेन कदाचि-
ण्यदपि कृतो नेति चेन्न, “नानुबन्धकृतमसारूप्यम्” इति ‘वाऽसरूप’ सूत्रे
भाष्ये उक्तत्वात् ।

पापचक्रः—अस्योत्तरं ३८ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

गायनः—‘गै शब्दे’ अस्मात् ‘ण्युट् च’ इति सूत्रेण ण्युटि अनुबन्धलोपे
अनादेशे “आदे च उपदेशे” इत्यात्वे “आतो युक्” इति युक्ति विभक्त्यादिकार्ये
‘गायनः’ इति ।

दिवाविभेति—अत्र सूत्रे-दिवा, विभा, निष्ठा, प्रभा, भास्, कार, अन्त,

अनन्त, आदि, बहु, नान्दी, किम्, लिपि, लिबि, बलि, भक्ति, कर्तुं, चित्र, क्षेत्र, संख्या, जङ्घा, बाहु, अहर्, यद्, तद्, धनुस्, अरुस्, एषां द्वन्द्वात् सप्तमी । ततश्च — “दिवाविभानिशाप्रभाभास्करान्तानन्तादिबहुनाऽदीर्किलिपिलिबिलभक्तिकर्तुचित्रक्षेत्रसंख्याजङ्घाबाहुद्वयत्तदनुस्वरुषु” इति सूत्रस्वरूपम् । एषु कृष्यः स्याद् हेत्वादावपीति सूत्रार्थः । अत्र कर्मणीति सुपीति चानुवृत्तं यथायोगमन्वेति । उदाहरणानि यथा — दिवा (दिवसं) करोतीति = दिवाकरः, विभाकरः, निशाकरः, प्रभाकरः, भास्करः (कस्कादिवात् सः), कारकरः, अन्तकरः, अनन्तकरः, आदिकरः, बहुकरः । (बहुशब्दस्य वैपुल्यार्थं संख्यापेक्षया पृथग् ग्रहणम्) नान्दीकरः, किङ्करः, लिपिकरः, लिबिकरः, भक्तिकरः, कर्तुकरः, चित्रकरः, क्षेत्रकरः, एककरः, जङ्घाकरः, बाहुकरः, अहस्करः (कस्कादिवात् सः), यत्करः, तत्करः, धनुस्करः—अरुस्करः (उभयत्र ‘नित्यं समासे’ ति वस्वम्) ।

६—कालि मन्या—कालीमात्मानं मन्यते इति विग्रहे ‘मन ज्ञाने’ अस्मादातोः ‘आत्ममाने खश्च’ इति सूत्रेण खश्प्रत्यये शित्वात् सार्वधातुकसंज्ञायां ‘दिवादिभ्यः श्यच्’ इति श्बनि उपपदसमासे ‘स्त्रित्यन्ययस्य’ इति सूत्रेण पुंवत्वं प्रबाध्य परत्वाहत्वे ‘अरुद्विषदजन्तस्य’ इति मुमि तस्यानुस्वारे कृदन्तत्वात् सौ स्त्रीत्वात् टापि सोलौपे ‘कालि मन्या’ इति ।

शीतभोजी—शीतं भोक्तुं शीलमस्येति विग्रहे भुज्धातोः ‘सुप्यजातौ यिनि-स्ताच्छीत्ये’ इत्यनेन यिनिप्रत्यये उपपदसमासे लघुपञ्चगुणे कृदन्तत्वात् सौ नान्तत्वात् दीर्घे सुलोपे नलोपे ‘शीतभोजी’ इति ।

दूनः—‘दु गतौ’ अस्मात् कर्मणि कप्रत्यये ‘दुग्दोर्दीर्घश्च’ इत्यनेन निष्ठा-तभ्य नत्वे दीर्घे च कृदन्तत्वात् सौ क्त्वे विभर्गे ‘दूनः’ इति ।

अभिशीनः—अभिपूर्वात् ‘श्येच् गतौ’ अस्मात् निष्ठायां कप्रत्यये ‘विभाषाऽभ्यवपूर्वस्य’ इत्यनेन यकारस्य सम्प्रसारणे पूर्वरूपे ‘हलः’ इत्यनेन दीर्घे ‘अभिशीत’ इति स्थिते ‘श्योऽस्पर्शे’ इत्यनेन निष्ठातस्य क्त्वे विभक्त्यादिकार्ये ‘अभिशीनः’ इति ।

स्वान्तम्—‘स्वच्’ धातोः “ध्रुवश्चान्तश्चान्त” इत्यादिसूत्रेण निपातनात् कप्रत्यये “अनुनासिकस्य क्ली” ति सूत्रेण दीर्घे कृदन्तत्वात् सौ तस्य अमादेशे पूर्वरूपे ‘स्वान्तम्’ इति, मनः इति शेषः । अत्र निपातनादिट् न ।

मूर्तः—मुच्छीधातोः निष्ठायां कप्रत्यये “राक्षोपः” इत्यनेन कस्य लोपे

“भातो लोप इटि च” इत्यनेन आलोपे ‘हलि चे’ ति दीर्घे विभक्त्यादिकार्ये ‘मूर्तः’ इति । ‘रदाभ्यामि’ति नस्वं न’ ‘न ध्याख्यापृमुच्छ्रिमदाम्’ इति निषेधात् ।

ग्लानः—ग्लैघातोर्निष्ठायां कप्रत्यये ‘आदेन उपदेशे’ इत्यात्वे ‘संयोगादेरातोः धातोर्यण्वतः’ इत्यनेन निष्ठातस्य नस्वे विभक्त्यादिकार्ये ‘ग्लानः’ इति ।

हस्धातोरिति—हस्धातोः ‘नपुठके भावे कः’ इत्यनेन भावे कप्रत्यये नित्यनपुंसकत्वात् ‘हसितम्’ इत्येव । कर्मणि क्ते कृते तु हसिते, हसितम्, हसिता इति । वस्तुतस्तु हस्धातोरकर्मकत्वात् कर्मणि प्रत्ययो नेति तत्त्वविदः ।

७—शक्नोति भोक्तुम्—अत्र भुज्धातोः ‘शकबृषज्ञागलाङ्गटरभक्तभक्तसहा-र्हास्त्यर्थेषु तुमुन्’ इति सूत्रेण तुमन्प्रत्यये गुणे कृत्वे विभक्तिकार्ये अध्ययत्वा-स्तुब्धकिं ‘भोक्तुम्’ इति ।

स्फालः—स्फुल्धातोः ‘भावे’ इति सूत्रेण चन्प्रत्यये उपधावृद्धौ ‘स्फुरति-स्फुल्लयोर्घञि’ इत्यनेन आत्वे विभक्त्यादिकार्ये ‘स्फालः’ इति ।

पूनिः—अस्त्योत्तरं ३८ षष्ठे द्रष्टव्यम् ।

भुक्त्वा व्रजति—अत्र भुज्धातोः ‘समानकर्तृकयोः पूर्व+काले’ इत्यनेन क्त्वाप्रत्यये कृत्वे विभक्त्यादिकार्ये ‘भुक्त्वा’ इति ।

जरीत्वा—जृधातोः ‘समानकर्तृकयोः पूर्व+काले’ इत्यनेन क्त्वाप्रत्यये ‘जत्र-श्च्योः क्तिवः’ इत्यनेन इटि गुणे ‘वृत्तो वा’ इत्यनेन विभाषया दीर्घे विभक्तिकार्ये ‘जरीत्वा’ इति ।

णिजन्तादि-उत्तरकृदन्तान्तभागे प्रश्नाः ।

१६४०

१—स्मि, जि, धातुभ्यां णिचि लटि, आभ्यामेव सनि लटि च रूपाणि संसाध्य—‘चुक्षावयिषति’ इत्यत्र शौ द्वित्वात् प्रागन्तरङ्गत्वात् वृद्धधावादेशौ कुतो नेति शङ्का सप्रमाणं समाधेया ।

२—चञ्चूर्यते । जेप्नोयते । जङ्गहि । अन्तातः । एतान् संसाध्य यकार-वकारान्तानां तुङ्भाविनां यङ्लक् नास्तीत्यत्र प्रमाणं लिखत ।

३—ओजायते । ओजिढत् । स्वमनायत । साधयति । एतानि संसाध्य हलिकल्पोरदन्तत्वनिपातनस्य प्रयोजनं सोदाहरणं प्रदर्शयत ।

- ४ 'आचारेऽवगतभक्तोषहोदेभ्यः किंवा वक्तव्यः' इति वार्तिकं सोदाहरणं व्याख्येयम् ।
- ५—न्यषोषहत् । सूयूषति । परिसिषीक्षति । एषां प्रयोगाणां स्याद्वत्त्वमस्ति न वेति सप्रमाणं लिखत ।
- ६—सपरलाटयोः आङ्पूर्वाद्धन्तेश्च लुङि प्रथमपुरुषैकवचने रूपाणि प्रस्ताव्य, रामः सीतामुपायत । गर्हयते । अध्यापयति । विरमति । वासयते । एषु विशेषकार्याणि प्रकटयत ।
- ७—भाविषीष्ट । भावयामासे । आरिता । उदशिश्रियत । पुरा भुङ्क्ते । अपि धास्यति द्वारम् । यजतां भवान् । एते प्रयोगाः सूत्रोपन्यासपूर्वकं तत्तत्कार्यप्रदर्शनद्वारा संस्करणीयाः । कृत्यकबलार्थाः कर्मकर्त्तरि भवन्ति नवेति विविच्योच्यताम् ।

अथवा—

- बोभूयते । घानिषीष्ट । ओदनः पच्यते । नाहं कलिङ्गाङ्गगाम । कश्चिज्जीवति । ऊर्ध्वं मुहूर्त्ताद् यजतां स्म । एतान् तत्तत्कार्यप्रदर्शकसूत्रोपन्यासपूर्वकं संस्कृत्य "भजां ग्रामं नयति" इत्यत्र कर्मस्थक्रियात्वमुपपाद्य यगात्मनेपदाऽभावावुपपाद्यौ ।
- ८—प्रेङ्क्षणीयम् । जन्यम् । आज्यम् । द्विषतीतापः । क्षीरपायिष्णु उशीनराः । स्त्रीम्मन्यः । समवनः । प्रमुदितः । दितः । उपेयुषी । त्यागी । अजस्रम् । पवित्रम् । एतेषु सप्तैव प्रयोगाः साधनीयाः ।
- ९—नस्ति भोक्तुम् । उपाध्यायः । कायः । परिघः । भृत्या । निपठति । इषदाढ्यङ्करः । ब्रश्चित्वा । प्रणम्य । प्रवाय । लम्भंलम्भम् । दण्डेनोपघातम् । गेहानुप्रवेशमास्ते । मुञ्चतो भूत्वा । एतेषु सप्तैव प्रयोगाः साधनीयाः ।
- १०—"चिरणमुल्लोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम्" "राजसूयसूखमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्यान्यथ्याः" इति सूत्रे सोदाहरणे स्पष्टं व्याख्येये ।

प्रश्नोत्तराणि ।

- १—स्मि-घातोर्णिचि लटि 'विस्मापयते' इति । तथाहि—'वि' उपसगात् 'स्मि' घातोः 'हेतुमति च' इति णिचि णित्वाद्दृष्टौ 'नत्थं स्मयते' इत्यनेन आत्वे

पुकि 'स्मापि' इति ण्यन्तस्य 'सनाद्यन्ता' इति धातुसंज्ञायां लटि 'भीष्म्योर्होतुभवे' इत्यनेन आत्मनेपदे तत्प्रत्यये शपि गुणे अयादेशो पूर्वरूपे 'विस्मापयते' इति ।

जी—धातोर्णिचि लटि 'जापयति' इति । (साधनप्रकारस्तु ४४ वर्षे द्रष्टव्यम्)

सनि कृते 'जिगीषति' इति (साधनप्रकारस्तु ३६ वर्षे द्रष्टव्यम्)

'चुक्षावयिषति' इत्यत्रेति—“ओः पुण्यञ्जपरे” इति सूत्रस्यप्रवर्गयण-जकारग्रहणेन 'यिच्यच आदेशो न स्याद् द्वित्वे कर्तव्ये' इति ज्ञापनात् 'चुक्षाव-यिषति' इत्यत्र णौ द्वित्वात् प्रागन्तरङ्गत्वात् वृद्धयावादेशौ न भवतः । ज्ञापनप्र-कारस्तु चुरादौ द्रष्टव्यः ।

तत्र हि—“ओः पुण्यञ्जपरे” इति सूत्रस्य—पिपावयिषति, विभावयिषति, यियावयिषति, रिरावयिषति, लिलावयिषति, जिजावयिषति, इत्युदाहरणेषु द्वित्वं प्रत्यनिमित्ते णिचि 'द्विर्वचनेऽचि' इति निषेधाऽप्रवृत्त्या द्वित्वात् प्रागेव परत्वाद्बृ-द्धयावादेशयोः कृतयोरभ्यासेष्वकारस्य ह्रस्वे सति 'सन्त्यतः' इत्येवेत्वसिद्धेः पवर्ग-यणप्रत्याहारजकारग्रहणं व्यर्थम् । “ओः पययरपरयोरि'त्येव सूत्रमस्तु । पिपाव-यिषति, यियावयिषति, इत्यत्रोक्तरीत्या 'सन्त्यतः' इतीत्वसिद्धावपि—पिपविषति, यियविषति, इत्यत्र पूङ्गवातोऽुंघातोश्च अण्यन्तात् सनि अभ्यासे इत्वार्यं तदावश्य-कत्वात् । वर्गप्रत्याहारजग्रहणान्तु व्यर्थमेव । एवञ्च व्यर्थं सत् “णिच्यच आदेशो न स्याद् द्वित्वे कर्तव्ये” इति ज्ञापयति । ज्ञापिते त्वस्मिन्नर्थे “विभावयिषति” इत्यादिषु णिचि छप्ते सति 'चङि' इति द्वित्वे कार्ये प्रत्ययरुद्धणमाश्रित्य णिचि गुणा-वादेशयोः प्रतिषेधे सति उवर्णान्तानां द्वित्वेऽभ्यासेऽकाराभावेन 'सन्त्यतः' इत्य-स्याऽप्रवृत्त्या वर्गप्रत्याहारजग्रहणं स्वांशे चरितार्थम् । ज्ञापनफलान्तु—चुक्षावयिषति, तुतावयिषति, ऊर्णनावयिषति, पुस्फारयिषति, इत्यादि ।

२—चञ्चूर्यते—गर्हितं चरति इति विग्रहे चर्धातोः ‘छपसदचरजपजभदह-दशागभ्यो भावगर्हायाम्’ इत्यनेन यङि 'सन्त्यङोः' इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे 'चरफलोश्च' इत्यनेन जुगागमे 'स च पदान्तवद्वाच्यः' इति वार्ति-केन तस्य पदान्तवद्भावे 'वा पदान्तस्य' इत्यनेन अनुस्वारे परसवर्णे 'उत्परस्वातः' इत्यनेन अभ्यासोत्तरखण्डस्याकारस्योत्वे 'हलि चे'ति दीर्घे 'चञ्चूर्य' इति स्थिते 'सनाद्यन्ता' इति धातुत्वाल्लटि आत्मनेपदे तत्प्रत्यये एवैव शपि पररूपे 'चञ्चूर्यते' इति । परसवर्णाऽभावे 'चञ्चूर्यते' इति ।

जेष्णीयते—पुनः पुनः अतिशयेन वा द्विनस्तीत्यर्थे यङि विवक्षिते एव

‘हन्तेर्हिसायां यङि घनीभावो वाच्यः’ इति वार्तिकेन प्रोभावे कृते यङि ततः ‘सन्त्यङोः’ इत्यनेन द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे चुत्वे जश्त्वे ‘गुणो यङ्लुकोः’ इत्यनेन अभ्यासस्य गुणे यङन्तस्य धातुसंज्ञायां लुटि आत्मनेपदे तप्रत्यये एत्वे शपि पररूपे ‘जेघ्नीयते’ इति ।

जङ्गहि— हन्धातोर्बहुकि प्रत्ययलक्षणेन द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे चुत्वे जश्त्वे ‘अभ्यासाच्च’ इत्यनेन अभ्यासात्परस्य हन्तेर्हकारस्य कुत्वे ‘नुगतोऽनुनासिकान्तस्य’ इत्यनेन नुकि तस्यानुसारे परसवर्णे धातुसंज्ञायां लुटि मध्यम-पुरुषैकवचने सिपि तस्य ह्यादेशे ‘अनुदात्तोपदेश’ इत्यादिना अनुनासिकनकारस्य लोपे शपि पररूपे ‘जङ्गहि’ इति । नन्वत्र ‘हन्तेर्जः’ इति जादेशः कुतो नेति चेन्न, जादेशविधायकसूत्रे हन्तेरित्यत्र शितपो निर्दिष्टत्वेन तन्निर्दिष्टकार्यस्य च ‘शितपाशपे’ति निषेधेन यङ्लुक्प्रवृत्तिबोधनेन जादेशाऽभावात् ।

अतातः— ‘यङो वा’ इतीडभावपक्षे तृधातोर्बहुकि द्वित्वादिकार्यं कृते ‘तत्’ इति स्थिते ‘दीर्घोऽकितः’ इत्यनेन अभ्यासस्य दीर्घे धातुत्वात्लुङि तिपि अङागमे गुणे हलङ्यादिना तलोपे रेफस्य विसर्गे ‘अतातः’ इति ।

३—ओजायते— ओजस्वीवाचरतीति विग्रहे ‘कर्तुः क्यङ्सलोपश्च’ इति सूत्रेण ओजश्चन्दात् क्यङि तत्सन्धियोगशिष्टेन सलोपे ‘अकृतसर्वधातुकयोः’ इति दीर्घे धातुसंज्ञायां लुटि क्यङो ङित्वादात्मनेपदे ‘ओजायते’ इति । अत्र क्यङ्सन्धियोगशिष्टसलोपस्तु नित्य एव, ‘ओजसोऽप्सरसो नित्यमितरेषां विभाषया’ इति वार्तिकेन व्यवस्थितत्वात् ।

औजिढत्— अस्योत्तरं ३८ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

स्वमनायत— ” ३७ ” ”

साधयति— बाढशब्दात् यौ ‘अन्तिकषाढयोर्नेदसाधौ’ इत्यनेन बाढशब्दस्य साधादेशे धातुसंज्ञायां लुटि तिपि शपि गुणे अयादेशे पूर्वरूपे ‘साधयति’ इति ।

हलिकलयोरिति— हलिकलयोरदन्तत्वनिपातनेन ‘वृद्धौ सत्यां टिलोपः’ इत्यस्य सिद्धिर्भवति । तथाहि— ‘वृद्धेलोपो बलीयान्’ इति भाष्यवचनात् पूर्वं टिलोपे अग्लोपित्वाद् दीर्घचन्वद्भावयोरभावात् ‘अजहलत्’ ‘अचकलत्’ इति रूपद्वयसिद्धौ ‘हलिकलयोरदन्तत्वनिपातनं व्यर्थमेव, तदेव व्यर्थं भूय “वृद्धौ सत्यां टिलोपः” इति वचनं ज्ञापयति । इत्थं च स्वांशे चरितार्थम् । फलञ्च— ‘अपीषत्—अपपटत्’ इति रूपद्वयसिद्धिः । पूर्वोक्तभाष्यवचनेन पूर्वं टिलोपस्ततो वृद्धिरिति पक्षः सिद्धौ

भवति । हलिकृत्योरदन्तत्वनिपातनेन च पूर्व वृद्धिस्ततष्टिलोपः इति पक्षः सिद्धो भवति एवञ्च प्रमाणद्वयेन मतद्वयं सिद्धं भवतीति पूर्वाक्कङ्कटद्वयस्यापि सिद्धिरिति दिक् ।

४-आचारेऽवगल्भकलीबहोडेभ्यः किञ्चा वक्तव्यः-आचारेऽर्थे एभ्यः किञ्चा स्यादित्यर्थः । वाप्रहणात् क्यङ्कपि । वार्तिके अवगल्भादयः पचाद्यजन्ताः । किप्सन्नियोगेनानुदात्तत्वमनुनासिकत्वं चाचप्रत्ययस्य प्रतिज्ञायते । नचात्र किप्प्रत्ययसन्नियोगेन अचप्रत्ययस्यानुनासिकत्वादिनिपातनाद्गल्भादिवटकाकारस्य लोपेऽनेकाच्त्वाभावेन 'अवगल्भाञ्चक्रे' इत्यत्र आम् न स्यादिति वाच्यम् , 'साम्प्रतिकाभावे भूतपूर्वगतिराश्रीयते' इति परिभाषया आम्प्रत्ययस्य सिद्धत्वात् । उक्तवचने प्रमाणञ्च—“आचारेऽवगल्भ” इति प्रकृतवार्तिकमेव । नच आचारेर्थे-अवगल्भते, कलीबते, बहोडेते, इत्यादौ आत्मनेपदार्थं वार्तिकं सार्थकमिति वाच्यम् , “धातूनामनेकार्थाः” इति वचनेन प्रत्ययरहितगल्भादिधातोरेष्याचारेऽर्थे शक्तिप्रदर्शनाद् 'अवगल्भते' इत्यादौ तडः सिद्धत्वात् । वार्तिके अवोपसर्गविशिष्टपाठसामर्थ्यात् केवलगल्भादिधातोः उपसर्गान्तरविशिष्टाच्च क्यङ्केव भवतीति माधवादयः । परञ्च क्यङ्किपोर्नास्ति विवादो द्वाभ्यामपि भाव्यम् । किन्तु अवोपसर्गरहितगल्भादिभ्यः किपि सति परस्मैपदमेव स्याज्जत्वात्मनेपदमित्येव वक्तुं युक्तम् । वार्तिकस्य मुख्यप्रयोजनं प्रयोगे आम्प्रत्ययस्य सिद्धिः । आत्मनेपदं तु गौणफलमिति दिक् ।

५-न्यषीषहत्—‘नि’ उपसर्गात् ‘षड् मर्षणे’ अस्माद् धातोर्गिञि लुङि ‘न्यषीषहत्’ इति सिद्धं रूपं भवति । ‘न्यषीषहत्’ इति त्वसाध्वेव ‘परिनिविभ्यः सेवसितसयसिवुसहसुट्स्तुस्वजाम्’ इत्यनेन उपसर्गस्थनिमित्तात्परस्य षत्वस्य “स्तन्भुसिवुसहं चङि” इत्यनेन निषेधात् ।

सुस्यूषति—शिवुधातोः सनि ‘सनीवन्तर्ध’ इत्यादिना इडभावपक्षे ‘हल्-न्ताच्चे’ति किञ्चात् ‘च्छ्वोः शुङि’ति वकारस्य ऊठि सकारादिकारस्य यणि द्वित्वादिकार्ये ‘सुस्यूषति’ इति सिद्धं रूपं निष्पन्नम् । यत्तु अभ्यासेणः परस्य सस्य षत्वे ‘सुस्यूषति’ इत्युक्तं तन्न मनोरमम् , “स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात्” इत्यनेन—अभ्यासेणः परस्य चेतस्य षत्वं तर्हि स्तौतिण्यन्तयोरेवेत्युक्तत्वात् ।

परिषिषिद्धति—इति षकारद्वयषटितप्रयोग एव साधु । वत्तु ‘सुस्यूषति’ इति वदिहापि ‘स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात्’ इत्यनेन निषेधात् षभूते सनि ‘इण्

गतौ' इति घातोः परस्य सस्य षत्वं नेत्युक्तं तत्र, 'मध्येऽपवादव्यायेन 'आदेश-
प्रत्यययोः' इत्यनेन प्राप्तषत्वस्यैव तेन बाधात् । 'स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य'
इत्यनेन षत्वं तु भवत्येवेति दिक् ।

६—सपर पूजायाम्—घातोः 'कण्ठवादिभ्यो यक्' इत्यनेन यकि अतो
लोपे 'सर्पय' इति । तस्मात् 'सनाद्यन्ता' इति घातुत्वात्लुङि तिपि अडागमे मध्ये
चलौ च्लेः सिचि सस्य इटि 'अस्तिषिचो' पृक्तोः' इत्यनेन तस्य च ईटि 'यस्य हलः'
इत्यनेन यलोपे 'अतो लोपः' इत्यनेन अलोपे उपधादीर्घे 'इट ईटि' इत्यनेन
सलोपे सवर्णदीर्घे 'असर्पारीत्' इति ।

ल्लाट जीवने—अस्मात् 'कण्ठवादिभ्यो यक्' इति यकि, अतो लोपे 'सना-
द्यन्ता' इति घातुत्वात्लुङि तिपि अडागमे मध्ये चलौ सिचि सस्य इटि 'अस्ति-
षिचोऽपृक्तोः' इत्यनेन तस्य ईटि 'यस्य हलः' इत्यनेन यलोपे अतो लोपे 'इट
ईटि' इति सलोपे सवर्णदीर्घे 'अल्लाटीत्' इति ।

आङ्पूर्वादु हन्धातोः—लुङि 'आङो यमहनः' इत्यनेन आत्मनेपदे
तप्रत्यये 'आत्मनेपदेऽव्ययतरस्याम्' इत्यनेन विभाषया हनो वधादेशे अडागमे
मध्ये चलौ च्लेः सिचि 'आ अ वध स त' इति स्थिते सवर्णदीर्घे सस्य इटि अतो
लोपे सकारस्य षत्वे ष्डुत्वे 'आवधिष्ट' इति । वधादेशाभावपक्षे 'आहत' इति ।
(अस्य साधनप्रकारस्तु ४१ वर्षे द्रष्टव्यः) ।

रामः सीतामुपायत—'अप' उपसर्गात् 'यम्' घातोर्लुङि 'उपायमः स्व-
करणे' इत्यनेन आत्मनेपदे तप्रत्यये मध्ये चलौ च्लेः सिचि अडागमे सवर्णदीर्घे
'विभाषोपयमने' इत्यनेन सिचिः क्तिवपक्षे 'अनुदातोपदेशे'ति मलोपे 'ह्रस्वादज्ञात्'
इति सिञ्जलोपे 'उपायत' इति । किद्वावाऽभावपक्षे 'उपायस्त' इति ।

गर्धयते—अत्र 'गृधिवङ्भ्योः प्रलम्भने' इत्यनेन आत्मनेपदमिति विशेषः ।

अभ्यापयति—अत्र 'बुध-युध-नश-जनेङ्प्रकुस्तुभ्यो गोः' इत्यनेन परस्मै-
पदमिति विशेषः ।

धिरमति—अत्र 'व्याङ्परिभ्यो रमः' इत्यनेन परस्मैपदमिति विशेषः ।

वासयते—अत्र 'वस निवासे' अस्माद्धातोः 'अगावकर्मकाञ्चित्त्वत्कर्तृकात्'
इत्यनेन परस्मैपदे प्राप्ते 'न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहुरचिचृत्तिवदवसः' इत्यनेन
निषेधे सति 'भिवश्च' इत्यनेन आत्मनेपदं भवतीति विशेषः ।

७—भाविषीष्ट—भूधातोर्णौ वृद्धौ आवादेशे भावीति ण्यन्तात् कर्मणि

आशीर्लिङ्गस्तादेशे श्रीशुडागमे सुडागमे च विहिते 'स्यसिच्चीयुट् तासिषु भाव-
कर्मणोरुपदेशेऽञ्जनग्रहदृशा वा चिष्वदिट् च' इत्यनेन चिष्वदिटि तस्याभीय-
त्वेनाऽसिद्धत्वात् शिळोपे द्वयोः सकारयोः षत्वे ण्डत्वे 'भावयिषीष्ट' इति । चिष्वदि-
डभावपक्षे बलादिलक्षणे इटि तस्य अनाभीयत्वेन असिद्धत्वाऽभावात् अनिटीति
निषेधात् शिळोपाऽभावे गुणायादेशयोः कृतयोः 'भावयिषीष्ट' इति ।

भावयामासे—भूधातोर्णौ वृद्धौ आवादेशे भावीतिष्यन्तार्कर्मणि लिङः आ-
मादेशे लिटो लुकि आमन्तलिटपरकाऽस्यनुप्रयोगे लिटः स्थाने तादेशे तस्य 'लिट-
स्तञ्क्षयोरिति' ऐसादेशे णेरिकारस्य गुणेऽयादेशे च कृते 'भावयामासे' इति । ननु
भावयामास् ए इति स्थिते 'ह एति' इत्यनेन सकारस्य हकारः कुतो नेति चेन्न,
सार्वधातुक एव एति परे तेन हकारविधानात् ।

अयम्भावः—'ह एति' इति सूत्रे 'तासस्त्योः' इत्यनुवर्तते' ततश्च 'एधि-
ताहे' 'व्यतिहे' इत्युभयोरुदाहरणयोः सार्वधातुक एव एतिपरे हकारविधानदर्शनात् ।
प्रकृते एकारस्यार्धधातुकत्वेन नाऽस्तेः सकारस्य हकार इति दिक् ।

आरिता—ऋधातोः कर्मणि लुटस्तादेशे तस्य डादेशे च कृते मध्ये तासि-
प्रत्यये सलोपे सवर्णदीर्घे 'श्रु ता' इति स्थिते परत्वाच्चित्यत्वाच्च ऋकारस्य गुणे
रपरत्वे च कृते अजन्तत्वाऽभावेऽपि उपदेशग्रहणात् 'स्यसिच्चीयुट्तासिषु भाव-
कर्मणोरुपदेशेऽञ्जनग्रहदृशा वा चिष्वदिट् च' इत्यनेन चिष्वदिटि उपधावृद्धौ
'आरिता' इति ।

उदशिश्चियत्—'उत्' उपसर्गात्ष्यन्तात् श्रिधातोः कर्मकर्तरि लुङि तिफि
अडागमे मध्ये च्लौ 'यक्चिणोः प्रतिषेधे हेतुमण्णिभ्रियामुपसंख्यानम्' इति
वार्तिकेन कर्मत्वात्प्राप्तचिणो निषेधात् 'शिश्चि'ति' च्लेश्चि द्वित्वादिकार्ये शिळोपे
इयङि तकारस्य जश्त्वे उदशिश्चियत्' इति ।

पुराभुङ्क्ते—अस्योत्तरं ३७ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

अपिधास्यति द्वारम्—'उताप्योः समर्थयोः' इति सूत्रस्य प्रत्युदाहरण-
मेतत् । तत्र हि समर्थयोर्ग्रहणाऽभावे अप्राऽपि लिङ् रमादिति भावः ।

यजतां भवान्—यजतामित्यत्र 'प्रीषातिषर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च' इत्यनेन
लोकिति विशेषः ।

कृत्यकञ्चलर्थाः कर्मकर्तरि भवन्ति न वेति—अस्योत्तरं प्रागेव दत्तम् ।

अथवा प्रश्नोत्तराणि ।

बोभूयते-यङन्तात् 'बोभूय' इति धातोर्भावे लटस्तादेशो 'सार्वधातुके यक्' इति यकि एत्वे अतो लोपे शपि पररूपे 'बोभूयते' इति द्वियकारकं रूपं सिद्धम् ।

धानिषीष्ट—अस्योत्तरं प्रागेव दत्तं, सूच्या द्रष्टव्यम् ।

ओदनः पच्यते—अत्र 'कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः' इत्यनेन कर्तुः कर्मवद्भावेन पचधातोः कर्मकार्ये 'सार्वधातुके यक्' इति यक्, भावकर्मणोः, इत्यात्मनेपदम् च भवतः ।

नाहं कलिङ्गान् जगाम—कलिङ्गेषु = कलिङ्गो नाम निषिद्धो देशः, तेषु (जनपदविशेषवाचित्वाद् बहुवचनम्) अवात्सीः । अतस्त्वया न सहवासयोग्य इति प्रश्ने—नाऽहं 'कलिङ्गान् जगाम' इत्युत्तरम् । अत्र 'जगाम' इत्यत्र 'अत्यन्ताऽपहवे लिङ्वक्तव्यः' इति वार्तिकेन अपरोक्षार्थे लिङ्भवति । द्वित्वादिकार्यन्तु पूर्ववत् । वार्तिके 'अपहवः=अपलापः । प्रस्तुतवाक्ये तद्देशगमनोत्तरकालिकवासविषयकप्रश्ने करणीभूतगमनस्यैवाऽपलापात् अत्यन्तापहवो ज्ञेयः ।

कच्चिज्जीवति—'कामप्रवेदनेऽकच्चिति' इति सूत्रस्य प्रत्युदाहरणमेतत् । तत्रहि अकच्चितीत्यस्याऽभावे अप्राऽपि लिङ्स्यात् । कच्चिच्छब्दस्येच्छार्थकत्वाऽभावात् 'इच्छार्थेऽप्यत्र लिङ्नेति तत्त्वविदः ।

ऊर्ध्वं मुहूर्तात् यजतांस्म—अत्र 'यजताम्' इत्यत्र 'स्मे लोट्' इति सूत्रेण लोट् भवतीति विशेषः । अत्युत्कार्यं तु पूर्ववत् ।

अज्ञा ग्रामं नयति—अत्र 'कर्मवत् कर्मणां प्रतिषेधो वक्तव्यः' इति वार्तिकेन नयतेर्द्विकर्मकतया अज्ञारूपकर्मणः कर्तृत्वविवक्षायां कर्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियत्वसत्त्वात् प्राप्तस्य कर्मवद्भावस्य ग्रामरूपकर्मणा संकर्मकत्वात्प्रतिषेधे न तत्प्रयुक्त्यगादिकं भवतीति ।

वस्तुतस्तु—गमनानुकूलव्यापाररूपेण अजानिष्टफलेन नेतृव्यापारेण वा तत्र विशेषादर्शनेन कर्मस्थक्रियत्वाऽभावादिदं चिन्त्यम् । यदि ग्रामसंयोग एव तथेत्युच्यते तर्हि ग्रामं गच्छतीत्यादौ ग्रामेऽपि पुरुषसंयोगरूपविशेषदर्शनैव गम्यर्थस्याऽपि कर्मस्थत्वं स्यात् । अत एव अन्योन्यमाश्लिष्यत इत्येवोदाहृतं भाष्ये ।

८—प्रेरूणीयम्—'इखि गतौ' इदित्वानुम्, 'इच्छ्' इति तस्मात् प्रोपसर्गपूर्वकात् 'इच्छ्' धातोः 'तव्यत्तव्यानीयरः' इत्यनेनाऽनीयरप्रत्यये 'इजादेः

सञ्जुमः' इति नियमात् 'हलश्चेजुपधात्' इत्यनेन णत्वे आद्गुणे कृते कृदन्तत्वात्सौ तस्य अमादेशे पूर्वरूपे 'प्रेङ्खणीयम्' इति ।

जन्यम्—अस्योत्तरं ३६ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

आज्यम्—अङ्पूर्वात् ऊकारेत्संज्ञक 'अञ्' धातोः 'आङ्पूर्वादञ्जेः संज्ञाया-
मुपसंख्यानम्' इति वार्तिकेन बाहुलकात् करणे क्यपि 'अनिदिताम्' इति नलोपे
विभक्त्यादिकार्ये 'आज्यम्' इति जातम् ।

द्विषतीतापः—अणन्तोऽयम् । नन्वत्र 'लिङ्गविशिष्टपरिभाषया द्विषतीश-
ब्देऽप्युपपदे 'द्विषत्परयोस्तापे' इत्यनेन खचि 'खचि ह्रस्वः' इत्यनेन ह्रस्वे 'द्विष-
तीतपः' इति कुतो नेति चेन्न, तस्या अनित्यत्वात् । अनित्यत्वे 'शक्तिलाङ्ग-
लाङ्कुशयष्टितोमरघटघटीघनुषु प्रहेरुपसंख्यानम्' इत्यत्र घटीप्रहणमेव मानम् ।
अन्यथा घटप्रहणेनैव लिङ्गविशिष्टपरिभाषया घटीशब्दस्यापि सिद्धे वार्तिके घटी-
प्रहणं व्यर्थं स्यात् । तदेव व्यर्थीभूय लिङ्गविशिष्टपरिभाषा अनित्येति विज्ञायते ।

क्षीरपायिणः उशीनराः—क्षीरं पिबन्तीति विग्रहे क्षीरमुपपदे पाधातोः
'बहुलमाभीक्ष्ये' इत्यनेन णिनिप्रत्यये उपपदसमासे सुब्लुकि 'आतो युक्' इति
युकि णत्वे विभक्त्यादिकार्ये 'क्षीरपायिणः' इति ।

स्त्रीम्मन्यः—स्त्रियमात्मानं मन्यते इति विग्रहे 'आत्ममाने खश्च' इति
सूत्रेण खश्प्रत्यये शित्वात्सार्वधातुकसंज्ञायां श्यनि उपपदसमासे सुब्लुकि 'इच
एकाचोऽम्प्रत्ययवच्च' इति सूत्रेण अमि 'वाऽमृशसोः' इत्यनेन इयङि विभ-
क्त्यादिकार्ये 'स्त्रीम्मन्यः' इति । इयङोऽभावे 'अमि पूर्वः' इत्यनेन पूर्वरूपे
'स्त्रीम्मन्यः' इति ।

समक्कनः—सम्पूर्वादञ्च्धातोः कप्रत्यये 'यस्य विभाषा' इत्यनेन इयिनिषेधे
'अनदिताम्' इति नलोपे 'अञ्चोऽनपादाने' इत्यनेन निष्ठातकारस्य नत्वे चका-
रस्य कुत्वेन ककारे विभक्त्यादिकार्ये 'समक्कनः' इति ।

प्रमुदितः—प्रोपसर्गात् मुद्धातोः निष्ठायां कर्मणि कप्रत्यये इटि 'उदुपधा-
द्भावादिकर्मणोरन्यतस्याम्' इति सूत्रेण विभाषया किन्निषेधे गुणाऽभावे विभ-
क्त्यादिकार्ये 'प्रमुदितः' इति । किन्निषेधाऽभावपक्षे गुणे 'प्रमोदितः' इति ।

दितः—'दो' धातोः कप्रत्यये कृते 'धुमास्ये'ति ईत्वं 'दो दद्वोः' इति
दद्भावं चापवाद्य 'यतिस्यतिमास्थामितिकिति' इति सूत्रेण ओकारस्येकारान्ता-
देशे विभक्त्यादिकार्ये 'दितः' इति ।

उपेयुषी—उपोपसर्गादिण्धातोर्लिटि तत्स्थाने क्वसुप्रत्यये द्वित्वादिका कृते उगित्वाङ्गीपि 'वसोः सम्प्रसारणम्' इत्यनेन सम्प्रसारणे पूर्वरूपे उत्तरखण्ड-स्येकारस्य यणि आद्गुणे विभक्त्यादिकार्ये षत्वे 'उपेयुषी' इति । नन्वत्र 'उपे-यिवानभाश्वाननूचानश्च' इति सूत्रेण निपातनात् 'नेङ्क्षि कृती'ति प्रतिसूतो-बलादिलक्षण इट् कृतो नेति चेन्न, तन्निमित्तस्य वकारस्य सम्प्रसारणेन विनाशो-न्मुखत्वात् । 'अकृतव्यूह' इति परिभाषया तन्निषेधात् । 'उपेयिवान्' इति सूत्रेण बलादिलक्षण इडेव प्रतिप्रसूयते नाऽपूर्वो विधीयते इत्यत्र "उपेयुषः स्वामपि मूर्ति-मम्याम्" इति वाक्यमेव मानम्, अन्यथा सम्प्रसारणविषयेऽपि अनेन निपात-नादिटि यथादेशे 'उपेयुषः' इत्यनिष्ठापतिः स्यात् ।

त्यागी—त्यज्धातोः "संपृचानुष्ठाप्यमाह्वयसपरिसंसृजपरिदेविसंज्वरप-रिक्लिपपरिरटपरिवदपरिदहपरिमुहदुषद्विषद्रुहदुहयुजाक्रीडविविचत्यजरजभजातिचरा-पचरामुषाभ्याहनश्च" इति सूत्रेण घितुण्प्रत्यये अनुबद्धलोपे उपधावृद्धौ 'चजोः कु घिण्यतोः' इत्यनेन कृत्वे सति निष्पन्नात् 'स्यागिन्' शब्दात् सौ उपधादीर्घे' सुलोपे नलोपे 'स्यागी' इति ।

अजस्रम्—'जसु मोक्षणे' नञ्पूर्वोऽयं धातुः । निपातनात् नञ् समासे 'नलोपो नजः' इत्यनेन नलोपे 'अजस्' इति । तस्मात् 'नमिकम्पिस्स्यजसकमहि-सदीपो रः' इति सूत्रेण रप्रत्यये कृदन्तत्वात् सौ तस्य अमादेशे पूर्वरूपे 'अजस्रम्' इति । सततमित्यर्थः ।

पवित्रम्—पूयते अनेनेति विग्रहे पूधातोः 'पुवः संज्ञायाम्' इत्यनेन इत्र-प्रत्यये गुणोऽवादेशे कृदन्तत्वात् सौ तस्य अमादेशे पूर्वरूपे 'पवित्रम्' इति ।

६—अस्ति भोक्तुम्—अस्त्युपपदे भुज्धातोः 'शकधृषज्ञाग्लाघटरभल-भक्रमसहार्हास्त्वर्थेषु तमुन्' इति सूत्रेण तमुन्प्रत्यये लघुपद्युणे कृत्वे कृदन्तत्वात् सौ तस्य अमादेशे पूर्वरूपे 'अस्ति भोक्तुम्' इति । प्रकृतिसूत्रे अर्थग्रहणं सन्नि-हितत्वात् अस्तिनैव सम्बध्यते । तेन 'भवति, विद्यते वा भोक्तुम्' इत्यपि उप-दाहरणं भवति ।

उपाध्यायः—उप=समीपे, एत्थ यस्मादधीयते स 'उपाध्यायः' इति । उप-अवि-उपसर्गपूर्वकात् इट्धातोः 'इङ्श्च' इति सूत्रेण षञ्प्रत्यये भित्वाद्-वृद्धौ आयादेशे यणि सवर्णादीर्घे 'उपाध्याय' शब्दात् सौ इत्वे विसर्गे 'उपा-ध्यायः' इति ।

कायः—चीयतेऽस्मिन् अस्थ्यादिकमिति कायः । 'चि' धातोः 'निवासचि-
तिशरीरोपसमाधानेष्वादेश कः' इत्यनेन वञ्प्रत्यये धातोश्चकारस्य ककारादेशो
च कृते ङित्वाद्बुद्धौ आयादेशो 'काय' इति । तस्मात् कृदन्तत्वात् सौ सत्वे
विसर्गे 'कायः' इति ।

परिचः—परिहन्यतेऽनेनेति 'परिचः' । परि-उपसर्गात् हन्धातोः 'परौ चः'
इति सूत्रेण करणे अप्रत्यये सनियोगशिष्टेन हनो धादेशो च कृते कृदन्तत्वात् सौ
सत्वे विसर्गे 'परिचः' इति ।

भृत्या—भृधातोः 'संज्ञायां समजनितनिषदनिपतमनविदुषुश्रीङ्भृमिणः' इति
सूत्रेण क्यप्प्रत्यये 'ह्रस्वस्ये'ति तुकि स्त्रीत्वात् टापि विभक्त्यादिकार्यं 'भृत्या'
इति । (भरणं भृत्या=जीविका)

निपठितिः—निपूर्वकात् पठधातोः 'स्त्रियां क्तिन्' इत्यनेन क्तिन्प्रत्यये अनु-
बन्धलोपे 'तितुत्रेष्वप्रहाहीनामिति वाच्यम्' इति वार्तिकेन इडागमे विभक्त्यादि-
कार्यं 'निपठितिः' इति ।

ईषदाढ्यङ्करः—अनाढ्यः आढ्य ईषत् क्रियते इत्यर्थः । अत्र 'कर्तृकर्म-
योश्च्यर्थयोरिति वाच्यम्' इति वार्तिकेन कृधातोः खलूप्रत्यये खित्वान्मुमि गुणे
विभक्त्यादिकार्यं 'ईषदाढ्यङ्करः' इति ।

ब्रश्चित्वा—ब्रश्च्धातोः क्त्वाप्रत्यये ऊदित्वादिङ्विकल्पे प्राप्ते 'ज्वरङ्घ्योः
क्त्विः' इत्यनेन नित्ये इटि कृदन्तत्वात् सौ अव्ययत्वात् सुन्तुकि 'ब्रश्चित्वा' इति ।
अत्र 'ग्रहिज्ये'ति सम्प्रसारणं तु न, 'न क्त्वा सेट्' इति क्तिवनिषेधात् ।

प्रणम्य—प्रोपसर्गपूर्वकात् 'नम्' धातोः क्त्वाप्रत्यये 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो
ल्यप्' इत्यनेन ल्यपि 'वा ल्यपि' इत्यनेन विभाषया अनुनासिकलोपे णत्वे 'ह्रस्व-
स्ये'ति तुकि 'प्रणम्य' इति । अनुनासिकलोपाऽभावे 'प्रणम्य' इति भवति ।

प्रवाय—प्रोपसर्गात् 'वेल् तन्नुसन्ताने' अस्मात् क्त्वाप्रत्यये तस्य ल्यपि
'आदेच उपदेशे' इत्यात्वे अव्ययत्वात् सुन्तुकि 'प्रवाय' इति । 'ग्रहिज्ये'ति सम्प्र-
सारणं तु न, 'ल्यपि च' इत्यनेन निषेधात् ।

लम्भंलम्भम्—'लम्' धातोः 'आभीक्ष्ये णमुल् च' इति णमुल्प्रत्यये 'नित्य-
धीप्सयोः' इत्यनेन द्वित्वे पूर्वरूपे 'विभाषया चिण्णमुलोरिति' विभाषया नुमि
नुमो नकारस्य अनुस्वारे परसवर्णे 'लम्भंलम्भम्' इति । अनुनासिकाऽभावे
'चिण्णमुलोरिति' दीर्घे 'लाम्भंलाम्भम्' इति ।

दण्डेनोपघातम्—अस्योत्तरं ३६ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

गोहानुप्रवेशमास्ते—सर्वाणि गोहान्यनुप्रविश्येति, पुनः पुनः गोहमनुप्रविश्येति वा विश्रै 'विशिषतिपदिस्कन्दां व्याप्यमानासेव्यमानयोः' इति सूत्रेण विश्रुतातोः णमुलि लघुपञ्चगुणे अव्ययत्वात् सुब्लुकि 'गोहानुप्रवेशम्' इति । आस्ते इति शेषः ।

मुखतो भूत्वा—तस्यप्रत्ययान्ते स्वाङ्गे उपपदे भूतातोः 'स्वाङ्गे तस्यप्रत्यये कृम्बोः' इत्यनेन क्त्वाप्रत्यये अव्ययत्वात् सुब्लुकि 'मुखतो भूत्वा' इति ।

१०—चिपणमुत्तोरिति—अस्योत्तरं सूच्या प्राग् द्रष्टव्यम् ।

राजसूयेति—अनेन सूत्रेण राजसूय, सूर्य, मृषोद्य, रुच्य, कुप्य, कृष्टपच्य, अव्यथ्य, एते सप्त निपात्यन्ते । तत्र प्रथमनिपातने—राज्ञा सोतव्योऽभिषवद्वारा निष्पादयितव्यः, यद्वा लतात्मकः सोमो राजा, स सूयते=कण्डयतेऽत्रेति विप्रहे 'सुम् प्राणिप्रषवे' अस्मात् 'घात्वादेः षः सः' इति सत्वे 'सुज्' इति । तस्मात् निपातनात् अधिकरणे क्यपि दीर्घे च कृते विभक्त्यादिकार्ये 'राजसूयः, राजसूयम्' इति । (अर्धर्चादिः) ।

द्वितीयनिपातने—'सूर्यः' इति । अत्र सरस्याकाशे इति विप्रहे सधातोः निपातनात् कर्तरि क्यपि उत्त्वे तस्य रपरत्वे 'इलि चे'ति दीर्घे विभक्त्यादिकार्ये 'सूर्यः' इति । केचित्तु 'षू प्रेरणे' अस्मात् निपातनात् क्यपि रुटि 'सूर्यः' इत्याहुः ।

तृतीयनिपातने—'मृषोद्यम्' इति । अत्र मृषोपपदाददेः निपातनात् कर्मणि नित्यं क्यपि 'बच्चिस्वपी'ति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे गुणे विभक्त्यादिकार्ये 'मृषोद्यम्' इति (विशेष्यनिष्पेक्षम्) ।

चतुर्थनिपातने—'रुच्यः' इति । अत्र रुच्चातोः निपातनात् कर्तरि क्यपि विभक्त्यादिकार्ये 'रुच्यः' इति ।

पञ्चमनिपातने—'कुप्यम्' इति । अत्र 'गुप्' घातोः निपातनात् क्यपि घातो-रादिवर्णस्य क्त्वे च कृते विभक्त्यादिकार्ये 'कुप्यम्' इति । (सुवर्णरजतमिन्नं घनं कुप्यम्) ।

षष्ठनिपातने—'कृष्टपच्यः' इति । अत्र कृष्टोपपदात् पचघातोः कर्मकर्त्तरि निपातनात् क्यपि विभक्त्यादिकार्ये 'कृष्टपच्यः' इति । कृष्टप्रदेशे ये स्वयं पच्यन्ते ते 'कृष्टपच्यः' इति । (बहुवचनान्तनिर्देशोऽयम्) ।

सप्तमनिपातने—'अव्यथ्यः' इति । न व्यथते इति विप्रहे व्यथूधातोः निपातनात् कर्तरि क्यपि नञसमासे विभक्त्यादिकार्ये 'अव्यथ्यः' इति ।

णिजन्तादि-उत्तरकृदन्तान्तभागे प्रश्नाः ।

१६४१

१—जिघृक्षति । ईर्त्सति । अरिषति । जेगित्यते । अजर्घाः एते साधु साध्याः ।

२—सपत्नायते । स्वमनायत । अजहलत् । अजढत्-विग्रहप्रदर्शन-पूर्वकमेतान् संसाध्य स्वमनायतेत्यत्र सुशब्दात्प्रागट् कुतो नेति विवेचनीयम् ।

३—यकार-वकारान्तानामूढभाविनां यङ्लुङ् नास्तीत्यत्र प्रमाणमुप-न्यस्यताम् ।

४—विद्यामादत्ते । आहृत । मा समृत । उत्कुरुते । गडुं विनयति । पदं सुष्ठु कारयति । वारयिषति । एतान् संसाध्य 'कण्ड्वा-दिभ्यो यक्' इति सूत्रे धातोरित्यनुवृत्तेः प्रयोजनं लिखत ।

अथवा

व्यतिलुनीते । अनुक्रीडते । शतं प्रकुरुते । अनुवदति वीणा । मातुः सञ्जानाति । उपरमति । परिमोहयते । एतान् संसाध्य 'अनुप-राभ्यां कृजः' इति सूत्रस्य प्रयोजनं ब्रूत ।

५—अन्वतप्त पापेन । अगारिध्वम् । शामिता । कारिष्यते घटः । कुष्यते पादः स्वयमेव । नाहं कलिङ्गान् जगाम । मुहूर्तादुपरि उपा-ध्यायश्चेदागच्छेत् । वसन्तीह पुरा छात्राः । अधीष्व अधीष्व इत्यधीते । एषां साधुत्वं ब्रूत ।

६—निर्विण्णः । अजर्यम् । पञ्च प्रयाजाः । सान्नाय्यम् । वाह्यम् । पाद-हारकः । शोकापनोदः । कुक्षिम्भरिः । आल्यङ्करणम् । मन्त्रकृत् । वित्तः । म्लिष्टम् । धृष्टः । तूर्यः । अर्जयन् । वसति । विकत्यो । नेत्रम् । एषु अष्टौ प्रयोगाः साधनीयाः ।

७—कृष्णं दष्टुं याति । रङ्गः । निस्वानः । अराट्या । उदकोदञ्चनः । अपमाय । परिष्याय । जौरङ्कारमाक्रोशति । एते प्रयोगाः कार्य-विशेषप्रदर्शनपुरस्सरं साधनीयाः ।

अथवा

विसारः । निष्पावः । दरः । उन्निमम् । सर्वा कारिम् । अप्राप्य
४ म० प्र० ख०

नदौ पर्वतः । प्रापय्य । गोस्पदप्रम् । एतेषां साधुत्वं प्रदर्शय त ।
 ८—“णेरणौ यत्कर्मणौ चेत्स कर्ताऽनाध्याने”, “विशिषतिपदिस्कन्दां
 व्याख्यमानासेव्यमानयो”रिति सूत्रद्वयं सोदाहरणं व्याख्यायताम् ।

प्रश्नोत्तराणि ।

१—जिभृजति—‘प्रह् धातोः “धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा”
 इति सनि अनुबन्धलोपे सनः आर्धधातुकत्वात् इटि प्राप्ते “सनि ग्रहगुहोश्च” इति
 निषेधे धातुसंज्ञायां लटि तिपि अनुबन्धलोपे “रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छुः संश्च”
 इति सनः क्तिवेन “ग्रहिज्यावयिव्यविवष्टिविवतिवृश्चतिपृच्छतिभृजतीनां क्ति
 च” इति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे “सन्त्यङोः” इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायाम् “उरत्”
 इति अत्वे इलादिशेषे च “कुहोरश्चुः” इति चुत्वे “सन्त्यङोः” इति इत्वे सति ह्का-
 रादिणः परस्य सस्य षत्वं प्राप् तस्यासिद्धत्वात् हस्य ङत्वे “एकावो वशो भष्
 णषन्तस्य सन्धोः” इति भष्भावे “षढोः कः सि” इति ककारे षत्वे “जिघृक्षति”
 इति सिद्धम् ।

ईत्सति—अर्द्धितुमिच्छति इति बिग्रहे ‘ऋध् धातोः “धातोः कर्मणः समा-
 नकर्तृकादिच्छायां वा” इत्यनेन सनि अनुबन्धलोपे “आप्ताप्तृचामीत्” इति
 ईत्वे रपरत्वे ईर्च् + स इति स्थिते “पूर्वत्रा”सिद्धीयमद्वित्वे” इति वचनात् पूर्वं
 चरत्ते ततः “नन्दाः” इति रेफं वर्जयित्वा “अजादेर्द्वितीयस्य” इति ‘त्स’ इत्यस्य द्वित्वे
 अभ्याससंज्ञायाम् “अत्र लोरोऽभ्यासस्य” इति अभ्यासस्य लोपे “सनाद्यन्ता
 धातवः” इति धातुसंज्ञायां लटि तिपि अनुबन्धलोपे सार्धधातुकसंज्ञायां णपि
 णपावितौ “अतो गुणे” इति पररूपे ‘ईत्सति’ इति । इवन्त-ऋध-अस्ज-दन्धु-
 श्रि-स्व-यु-ऊर्ण-भर-ज्ञपि-एभ्यः सन इ वा स्यादित्यर्थक “सनीवन्तर्धे”ति
 इट् पक्षे तु—‘अर्द्धिषति’ इति बोध्यम् ।

अरिरिषति—‘ऋ’ धातोः “धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा”
 इति सनि अनुबन्धलोपे आर्धधातुकसंज्ञायां “स्मिपूर्वरूपवशां सनि” इति इडा-
 यमे गुणे रपरे अरि + स् इति स्थिते “अजादेर्द्वितीयस्य” इति रिस् शब्दस्य
 “सन्त्यङोः” इत्यनेन द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां “ह्लादिः शेषः” इति सलोपे “सना-
 द्यन्ताः” इति धातुसंज्ञायां लटि तिपि अनुबन्धलोपे सार्धधातुकसंज्ञायां णपि
 पररूपे षत्वे ‘अरिरिषति’ इति ।

नच “द्विर्वचनेची”ति निषेधात् इडागमोत्तरं कथं गुण इति वाच्यम्, इयो द्वित्वकार्यित्वेन “कार्यमनुभवञ्चि”ति परिभाषया निमित्तत्वाभावेन “द्विर्वचनेची”-
त्यस्याऽप्राप्तेः ।

जेगित्यते—‘ग’ धातोर्यङि घातुसंज्ञायां “ऋत इदातोः” इति इत्वे लटि तत्प्रत्यये एत्वे ‘सन्यङोः’ इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायाम् “उरत्” इत्यत्वे हलादि-
शेषे “गुणो यङ्लुकोः” इत्यभ्यासेकारस्य गुणे “ओ यङि” इति लट्त्वे शपि पररूपे
‘जेगित्यते’ इति सिद्धम् । गर्हितं गिलतीत्यर्थः ।

अजर्घाः—‘गृधु’ अभिकाङ्क्षायामित्यस्माद्दातोः यङ्लुकि ‘सन्यङोः’ इति
द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे “रुप्रिकौ च लुकि” इति सूत्रेण अभ्यासस्य
रुकि “कुहोश्चुः” इति चुत्वे जश्त्वे प्रत्ययलक्षण्येन यङन्तस्य घातुसंज्ञायां लङि
सिपि अनुबन्धलोपे शपि लङि ‘पुगन्ते’ति गुणे रपरत्वे हल्ङादिना सुलोपे
जर् + ग् + ध् इति स्थिते “एकाचो वश” इति गकारस्य भष्भावात् घकारे
जर् + घर् + ध् इति स्थिते घकारस्य श्चुत्वेन दकारे “दक्ष” इति क्त्वे “लुङ्ल-
ङि”ति अडागमे अजर् + घर् + र् इति स्थिते “रो रि” इति रेफलोपे “द्वलोपे
पूर्वस्य दीर्घोऽणः” इति दीर्घे रेफस्य विसर्गे “अजर्घाः इति सिद्धम् । तदुक्तं केनचित्—
“गृधेर्यलोपे लङि सेरिलोपे हल्ङादिलोपे रपरे गुणे च ।

अभावजश्त्वे च ररेफलोपे द्वलोपदीर्घे च भवेदजर्घाः ॥”

२—सपत्नायते—सपत्नीवाचरतीति विग्रहे—सपत्नायते, सपतीयते,
सपत्नीयते, इति त्रीणि रूपाणि भवन्ति । तथा हि—

शशुप्रर्षायात् सपत्नशब्दात् “शार्ङ्गैरवाद्यग्रो ङीन्” इति ङीनि ततः सौ तद्-
न्तात्सपत्नीवाचरतीति विग्रहे “कर्तुः क्यङ् सलोपश्च” इति क्यङि कङ्योरित्स-
ंज्ञायां लोपे च “सुपो घातुप्रातिपदिकयोः” इति सुपो लुकि “क्यङ्मानिनोश्च”
इति पुंस्त्वेन ङीनो निवृत्तौ “अकृतसार्वधातुकयोः” इति दीर्घे ‘सपत्नाय’ इत्यस्य
“सनाद्यन्तावातवः” इति घातुसंज्ञायां लटि तत्प्रत्यये शपि शपयोरित्संज्ञायां
लोपे च ‘सपत्नाय अ त’ इति स्थिते “अतोऽगुणे” इति पररूपे “टित आत्मनेपदा ।।
ऐरे” इति एत्वे “सपत्नायते” इति ।

समानः पतिः=स्वामी यस्याः इति बहुव्रीहौ तु—सपतिशब्दात् “नित्यं
सपत्नादिषु” इति नादेशे नान्तत्वात् ङीपि च कृते उक्तप्रकारेण क्यङि भाषित-
पुंस्त्वात् पुंवद्भावेन ङीबन्त्वयोर्निवृत्तौ दीर्घादिकार्ये ‘सपतीयते’ इति ।

विवाहजन्यसंस्कारविशेषनिमित्तकं पतिशब्दमाश्रित्य समानः पतिः = भर्ता यस्याः इति बहुव्रीहौ उक्तरूपेण निष्पन्नस्य सपत्नीशब्दस्य नित्यस्त्रीत्वात् पुंस्त्वाभावेन क्यङादिकार्ये 'सपत्नीयते' इति ।

स्वमनायत—अस्योत्तरं ३७ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

अजहलत्—इलिं गृह्णाति 'हलयति' तस्य लुङि 'अजहलत्' इति । तथा-
हि—'हत्यादिभ्यो ग्रहणे' इति वार्तिकेन हलिकन्थोरदन्तत्वनिपातनात् हल-
धातोः "गुण्डमिश्रलक्षणलवणव्रतवज्रहलकलकृततूस्तेभ्यो णिच्" इति णिचि इष्ट-
वद्भावेन टिलोपे धातुसंज्ञायां लुङि तिपि मध्ये ऋौ 'णिभिद्विसुभ्यः' इति चङि
द्वित्वे अभ्यासादिकार्यं 'णेरनिटि' इति णिलोपे 'अजहलत्' इति ।

औजढत्—वहधातोः क्तप्रत्यये ढत्व-धत्त्व-ष्टुत्व-ढलोपादिषु कृतेषु 'ऊढ',
इति, तमाख्यदित्यर्थे "तत्करोति तदाचष्टे" इति णिचि इष्टवद्भावेन टिलोपे प्राप्ते
'णिचि अच आदेशो न द्वित्वे कर्तव्ये' इति निषेधात् धातुसंज्ञायां लुङि तिपि
अनुबन्धलोपे मध्ये ऋौ चङि अनुबन्धलोपे ढत्वादीनामसिद्धत्वात् 'हत्' इत्यस्य
द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां ह्लादिशेषे अभ्यासस्य चुत्वे आदिवृद्धौ 'औजढत्' इति ।
'पूर्वत्रासिद्धीयमद्वित्वे' इति ढत्वादीनामसिद्धत्वाभावापक्षे ढशब्दस्य द्वित्वे तु 'औड-
ढत्' इति बोध्यम् ।

सुशब्दात्प्रागट् कृतो नेति—अस्योत्तरं 'स्वमनायत' इत्यस्य साधुत्वा-
वसरे ३७ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

३—यकारवकारान्तानामिति—अयम्भावः "च्छ्वोः शृङ्" इति सूत्रे
भाष्ये किद्ग्रहणमनुवर्तते न वेति विचारे कांश्चिद्दोषानुद्भाव्य परिहृत्य चोक्तम्—
एतावानेव विशेषः, अनुवर्तमाने किद्ग्रहणो लुः षावं वक्तव्यम्, अननुवर्तमाने तु
अनेन शस्वे कृते शान्तत्वादेव षो भविष्यतीति प्रष्टा प्रष्टुमित्यादिसिद्धये वक्ष्यादि-
सूत्रे लुग्रहणं न कर्तव्यम् । एवं हि वदता भाष्यकृता ऊट्भाविभ्यो यङ्लुक् नास्ती-
त्युक्तप्रायम् । अन्यथा दिव्यङ्लुकि ईडभावपक्षे देदेति, देदेषि इत्यादौ ऊटो भावा-
भावाभ्यां महान् विशेषः स्यात् । तत्र किद्ग्रहणमनुवृत्तावृत्तः प्रवृत्त्या देद्योति देद्यो-
षीत्यादिरूपविशेषलाभात्, परन्तिवदं ज्ञापकं "च्छ्वोः शृङ्" इत्यनेन यत्रोठ्
प्रवर्तते तत्रैव प्रवर्तते, तज्ज्ञापनस्योक्तसूत्रस्य भाष्यमूलकत्वात् । "ज्वरस्वर"
इत्यादि सूत्रेण यत्रोठ् भवति, तत्र यङ्लुक् भवत्येवेति युक्तं माधवादीनां मतञ्च ।

४—चिद्यामादत्ते—आङ्पूर्वकात् 'दा'धातोर्लटि "आञो दोऽनास्यविहरणे"

इति सूत्रेण आत्मनेपदे तत्प्रत्यये शपि तस्य श्लौ “श्लौ” इति द्विवे अभ्यासादि-
कार्ये आ + द + दा + त इति स्थिते “अघोः” इति पठ्युदासादोत्वाभावे “श्नाभ्य-
स्तयोरातः” इत्याद्ये “दित आत्मनेपदानां टेरे” इति एत्वे चत्वे आदत्ते, इति ।
विद्याम् + आदत्ते = “विद्यामादत्ते विद्यां, गृह्णातीत्यर्थः । न च दाञो भित्वादेवा-
त्मनेपदसिद्धेः “आङ्” इति सूत्रं किमर्थमिति चेत्सत्यम्, अर्कभिमामार्थत्वेना-
वश्यकत्वात् ।

आहृत—आङ्पूर्वाद्धन्तेर्लुङि ‘आङो यमहनः’ इति आत्मनेपदे तत्प्रत्यये
मध्ये च्लौ सिजादेशे इचावितौ बलादिवादिडागमे “आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्”
इत्यनेन विकल्पेन हनो वधादेशे “लुङ्लुङि”ति अडागमे दीर्घे ‘आवधि त’
इति स्थिते षत्वे ष्टुत्वे च ‘आवधिष्ट’ इति । वधादेशाभावपक्षे—“हनः सिच्”
इति कित्संशयाम् “अनुदातोपदेशवनति” इत्यादिसूत्रेण नकारस्य लोपे “ह्रस्वा-
दङ्गात्” इति सिचो लोपे ‘आहृत’ इति च भवति ।

मा समृत—समुपसर्गात् भौवादिकस्य ऋधातोर्लुङि “अतिश्रुदशिभ्यश्चेति
वक्तव्यम्” इति वार्तिकेन आत्मनेपदे तत्प्रत्यये मध्ये च्लौ तस्य सिजादेशे “ह्रस्वा-
दङ्गात्” इति सिचो लुङि माङ्योगात् आडागमाभावे ‘मा समृत’ इति । गुणादे-
षस्तु न “वश्च” इति सिचः कित्वात् । माङ्योगाभावे तु—आटि “आटश्च” इति
वृद्धौ ‘समार्त’ इति बोध्यम् ।

उत्कुरुते—‘उत्’ उपसर्गात् ऋधातोर्लुङि “गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्य-
प्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृजः” इति सूत्रेण आत्मनेपदे तत्प्रत्यये “तनादिकृञ्भ्यः
उः” इत्युप्रत्यये तमाभित्य ऋकारस्य गुणे रपरत्वे “दित आत्मने पदानां टेरे”
इत्येत्वे ‘उत्कुरुते’ इति ।

अयम्भावः—“गन्धने”ति सूत्रे गन्धनं=हिंसा, गन्ध अर्दने अर्दं हिंसायामि-
त्यनयोश्चुरादौ पाठात् । तेन ‘उत्कुरुते’ इत्यत्रात्मनेपदसिद्धिः । ननु कथमेवं तस्य
गन्धने वृत्तिः हिंसाया असत्वादिति चेन्मैवम्, उत्कुरुते इत्यस्य सूचयतीत्यर्था-
भ्युपगमात् । ‘सूचनं’ हि प्राणविद्योगानुकूलशक्तिरिति बोध्यम् ।

गडुं विनयति—“कर्तृस्थे चाऽशरीरे कर्मणि” इति सूत्रे शरीरतादात्म्या-
प्रत्यक्षस्यैव कर्तृतया शरीरस्य कर्तृस्थत्वासम्भवेन शरीरशब्दात् शरीरावयवो लक्ष्यते।
तेन “गडुं विनयति” इत्यत्र कर्मणो गडोः शरीरावयवत्वात् आत्मनेपदाभावेन

वि उपसर्गात् णीन् धातोर्लटि तिपि “णो नः” इति नत्वे शपि गुणे अयादेशे ‘विनयति’ इति भवति ।

पदं सुष्ठु कारयति—अभ्यासवृत्तेर्मिथ्याशब्दोपपदात्कुल आत्मनेपदं स्यादित्यर्थक “मिथ्योपपदात्कुलोऽभ्यासे” इति सूत्रे मिथ्योपपदादित्यस्याभावे ‘पदं, सुष्ठु=स्वरादिना शुद्धं, कारयति=उच्चारयति’ इत्यत्रापि आत्मनेपदं स्यादतः सूत्रे तदावश्यकमिति ध्येयम् ।

वारयिषिषति—उरमाख्यातुमाचक्ष्णं प्रेरयितुं वेच्छतीत्यर्थे उरुशब्दादा-
चष्टेऽर्थे णिचि “प्रिय-स्थिर-स्फिर-उरु-बहुल-गुरु-वृद्ध-तृप्-दीर्घ-वृन्दा-रकाणः
प्र-स्थ-रफ-वर्-बंहि-गर्-वर्षि-त्रप्-द्राधि-वृन्दाः” इति सूत्रेण वरादेशे उप-
धावृद्धौ ‘वारि’ इति ण्यन्तात् सनि इटि णिचो गुणाऽयादेशयोः षत्वे ‘वारिषिषे’ति
सञ्जन्तम् । माधवस्तु-वृद्धथञ्जीकारात् वारीत्यस्मात् हेतुमण्यन्तात् सनि इटि प्रथम-
गोलोपे षत्वे ‘वारिषिषे’त्येव रूपम् । तत्र च “यथेष्टं नामधातुषु” इत्याश्रित्य वका-
रस्य द्वित्वे विवारयिषति । रकारस्य द्वित्वे-वारिरयिषति । यकारस्य द्वित्वे—वार-
यिषति । इति रूपत्रयं भवति ।

कण्डवादिभ्य इति—अत्र सूत्रे “धातोरेकाचः” इत्यस्माद्धातोरिति वर्त-
ते । तदग्रहणाभावे प्रातिपदिकादेव यक् स्यादित्यर्थे तु धातोर्लडादौ कण्डवत्तीत्या-
यनिष्ठापत्तिः स्यात् । सुखदुःखादिप्रातिपदिकेभ्यो यकि अल्लोपाऽसम्भवेन सुख्य-
रीत्याद्यप्यसिद्धिप्रसङ्गाच्च ।

नच धातोरित्यनुवर्तनात् प्रातिपदिकादित्यर्थः कथं लभ्यते इति चेच्छृणु—क-
ण्डून् इति दीर्घपाठेन ‘प्रातिपदिकाः’ इति ज्ञायते । तथाहि—‘कण्डून् गात्रविच-
र्षणे’ इति धातौ कण्डु इति ह्रस्वान्त एव पठितव्यः । ‘अकृत्सार्वधातुकयोः’ इति
दीर्घे कण्डूयते इति रूपे सिद्धे दीर्घान्तपाठो ज्ञापयति “कण्डवादयः प्रातिपदिकाः”
इति । यदि च कण्डवादयः प्रातिपदिकास्तर्हि “कण्ड्वादिभ्यो यक्” इति सूत्रे
क्रित्करणं व्यर्थं स्यात्, तदेव व्यर्थं सत् ज्ञापयति—“कण्ड्वादयो धातवः” इति,
इत्थं च कण्ड्वादीनां धातुत्वं प्रातिपदिकञ्च सिद्धम् । अत एवोक्तं भाष्ये—“धातु-
प्रकरणाद्धातुः कस्य चासज्जनादपि । आह चायमिमदीर्घं मन्ये धातुर्विभाषितः॥”
इति । एवञ्च धातुपक्षे ‘कण्डूयते’ इत्यादीनां सिद्धिः । प्रातिपदिकत्वपक्षे—यकि
असति सति’ किपि च कृते—कण्डूः धातुत्वादुबद्धि-कण्ड्वा, कण्डुवः इति । प्रा-
तिपदिकत्वे—यणि कण्डवौ, ङकण्वः इत्यादि ।

अथवा-प्रश्नोत्तराणि ।

व्यतिलुनीते—अत्र “कर्तरि कर्मव्यतिहारे” इत्यनेनात्मनेपदो भवति । अन्यस्य योग्यं—शुद्धादियोग्यं सत्त्वादिलवनम् अन्यः=आह्वयः, करोतीति ‘व्यतिलुनीते’ इत्यस्यार्थः ।

अनुक्रीडते—अस्योत्तरं ३७ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

शतं प्रकुरुते—अत्र “गन्धना-ऽवक्षेपण-सेवन-साहसिक्य-प्रतियत्न-प्रकथ-नोपयोगेषु कृञः” इति सूत्रेण उपयोगेऽर्थे आत्मनेपदे तत्प्रत्ययो भवति । शतं प्रकुरुते इत्यस्य धर्मार्थं विनियुक्ते इत्यर्थः ।

अनुवदति वीणा—“अनोरकर्मकात्” इति सूत्रे “व्यक्तवाचा समुच्चारणे” इत्यतः व्यक्तवाचामित्यनुवृत्तं विषयपृथग्यन्तमाश्रीयते । समुच्चारणे इति निवृत्तम् । ततश्च व्यक्तवाग्विषयात् (मनुष्यकर्तृकात्) अनुपूर्वादकर्मकाद्देरात्मनेपदं स्यादित्यर्थो भवति । तेन ‘अनुवदते कठः कलापस्य’ इत्यत्रात्मनेपदं सम्पद्यते । व्यक्तवाचामित्यानुवृत्त्यभावे तु ‘अनुवदति वीणा’ इत्यत्रापि अनुपूर्वाददेरकर्मकादेनात्मनेपदस्य दुर्वारत्वापत्तिः स्यादिति प्रष्टुराशयः ।

मातुः सज्जानाति—‘सम्प्रतिभ्यामनाध्याने’ इति सूत्रे अनाध्याने इत्यस्याऽभावे अत्राप्यात्मनेपदं स्यादतस्तदग्रहणमावश्यकमिति भावः ।

नच यदा आध्याने कर्मणः शेषत्वविवक्षया षष्ठीमाश्रित्य मातुः सज्जानातीति प्रयुज्यते तदा सम्पूर्वकस्य जानातेरकर्मकत्वात् “सम्प्रतिभ्यामनाध्याने” इत्यात्मनेपदस्याऽप्रवृत्तावपि “अकर्मकाच्च” १।३।४५॥ इति सूत्रेणात्मनेपदं दुर्वारं तत्र सूत्रे ‘अनाध्याने’ इत्यस्याभावात् । नन्वेवं “सम्प्रतिभ्याम्” इत्यत्रानाध्यानग्रहणस्य व्यर्थतापत्तिरिति चेन्मैवं, ‘मातरं सज्जानाति’ आध्यायति । आध्यानञ्च, उत्कण्ठापूर्वकं स्मरणम् । इति सकर्मके चरितार्थत्वादिति वाच्यम्, एवं विप्रलम्भे सति ‘अनाध्याने’ इति योगविभागसामर्थ्यात् “सम्प्रतिभ्याम्” इति पूर्वयोगेन “अकर्मकाच्च” इति सूत्रेण च प्राप्तात्मनेपदस्य निषेधः स्यादित्यवश्यमित्याहुनिकाः ।

उपरमति—उपोपसर्गात् ‘रम्’ धातोः सकर्मकेषु “उपाच्च” इति सूत्रेण नित्यैव परस्मैपदसञ्ज्ञायाम् “अज्ञदत्तमुपरमति” । उपरमयतीत्यर्थः । अकर्मकेषु तु “विभाषाऽकर्मकात्” इति सूत्रेण विभाषया परस्मैपदसञ्ज्ञायाम् ‘उपरमति उपरमते’ इत्युभयमपि भवति, तत्र निवर्तते इत्यर्थो बोध्यः ।

परिमोहयते—‘परि’ उपसर्गात् एयन्तात् ‘मुह’ घातोः “अण्णावकर्मका-
चित्तवत्कर्मकात्” इति सूत्रेण परस्मैपदसञ्ज्ञायां प्राप्तायां “न पादम्याङ्गाम्” इति
सूत्रेण निषिध्यते । “न पादमि” इति सूत्रे पा-दमि-आङ्गयम्-आङ्गयस्-परिमुह-
रुचि-वृत्ति-वद्-वस्-एषां समाहारद्वन्द्वरूपश्चमीति बोध्यम् ।

‘अनुपराभ्यां कृज्’ इति—नन्वनेन सूत्रेण कर्तरि परस्मैपदविधानात् कर्म
कर्तर्यपि तत्प्रसक्तिरिति चेन्मैवम्, कार्यातिदेश-शास्त्रातिदेशपक्षद्वयमध्ये कार्याति-
देशपक्षस्यैव प्राधान्यात् कर्मकर्तर्यात्मनेपदविधायकस्य “कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः”
इत्यस्योक्तसूत्रापेक्षया परत्वादानेन तद्वाधे तदप्रसक्तेः । नच कार्यातिदेशपक्षेऽप्य-
तिदिश्यमानकार्याणामुत्पत्तिदेशस्यैव देशस्वाङ्गीकारात्, शास्त्रातिदेशपक्षे “कर्मव-
त्कर्मणा” इत्यनेनात्मनेपदाद्यविधानेन तद्विधायकं “भावकर्मणोः” इति शास्त्रस्य
वातिदेशात्तस्य च “अनुपराभ्याम्” इत्यतः पूर्वत्वेनानेनैव तद्वाधाद्दोषस्तदवस्थ
एवेति चेदत्रोच्यते—“अनुपराभ्यां कृजः” इत्यत्र “कर्तरि कर्मव्यतिहारे” इत्य-
स्मादेकं कर्तृग्रहणमनुवर्तते, तथा “शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्” इत्यतो द्वितीयं
कर्तृग्रहणमनुवर्तते । तथा च स्वभावत एव यः कर्ता न तु विवक्षाधीनः कर्मकर्ता
तथाविधकर्तर्येव अनुपराभ्यां कृजः परस्मैपदमिति लभ्यते । एवञ्च कर्मकर्तरि नास्य
प्रवृत्तिरिति सूत्रस्य प्रयोजनं ब्रवीमीति दिक् ।

५—अन्वतप्त पापेन—अत्र “चिण्भावकर्मणोः” इति सूत्रेण च्लेः चिण्
प्राप्तः “तपोऽनुतापे च” इति निषेधाच्च भवति । पापेन इत्यत्र कर्तरि तृतीया ।
पापेन अभ्याहृत इत्यर्थः । एवञ्च अन्वतप्त इत्यत्र कर्मणि लुङ्गिति बोध्यम् । यद्वा-
शोकार्थकमाभ्रित्य भावे लुङ्गीति । ततश्च परिणाममसमीक्ष्य सहसा किञ्चिदकृत्यं
कृत्वा पश्चादुःखमन्वभवदित्यर्थः । अत्र दुःखानुभव एव शोकः । शोकार्थे अकर्म-
कस्तु घात्वर्थेनोपसङ्गग्रहाद्बोध्यः ।

अगारीध्वम्—गिरतेः कर्मणि लुङि ध्वमि सिचि “स्यसिजि”ति चिण्व-
वदिति वृद्धौ रपरत्वे अडागमे ‘वृतो वा’ इति चिण्वदिदो दीर्घाप्राप्तया “चि च”
इति सलोपे ‘अगारीध्वम्’ इति । पक्षे “लिङ्सिचोरात्मनेपदेष्विति इटि “वृतो
वा” इति दीर्घविकल्पे ‘अगारीध्वम्-अगरिध्वम्’ इति । एषु “अचि विभाषा”
इति वैकल्पिकलत्वे “विभाषेटः” इति ङत्वविकल्पे ङवयोर्वस्य लस्य च “अनचि
च”, “यणो मय” इति द्वित्वविकल्पे षण्वति । “लिङ् सिचोः” इति इङभावे
“ङश्च” इति क्त्वेन गुणाभावे ह्रस्वे रपरत्वे “हलि च” इति ङ “इयाः षी-

‘वम्’ इति नित्यढत्वे उक्तसूत्रेण ढवमानां द्वित्वविकल्पे अष्टौ, उक्तसङ्कलने चतुर-
धिकं शतमिति । एतदेवोक्तं मूले—

इङ् दीर्घश्चिण्वदिट् लत्वं ढत्वं द्वित्वत्रिकं तथा ।

इत्यष्टानां विकल्पेन चतुर्भिरधिकं शतम् ॥ इति ।

शामिता—शमृधातोर्ण्यन्ताण्यौ पूर्व गेलोपे लुटि तासि अनुबन्धलोपे ततः
ण्यन्तस्याजादित्वाच्चिण्वदिटि तस्याभियत्वेनासिद्धनया अनिटीति निषेधाभावा-
ण्णिलोपे “चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम्” इति सूत्रेण दीर्घविकल्पे शामिता—
शामिता, पक्षे शमयिता इत्यपि भवति ।

अत्र “चिण्णमुल्” इति सूत्रे दीर्घग्रहणं कर्तव्यं न वेति प्रश्ने इत्थं
लेखनीयम्—

नच “चिण्णमुलोः” इति सूत्रे दीर्घग्रहणं व्यर्थम्, “चिण्णमुलोर्न्यतरस्याम्”
इत्येतावतैव “मितां ह्रस्वः” इति पूर्वसूत्रादनुवृत्तस्य ह्रस्वस्यैव विकल्पे दीर्घविक-
ल्पसिद्धेरिति वाच्यम्, शामिता—शमिता इत्युक्तप्रयोगाः ह्रस्वविकल्पो न स्यात्,
प्रथमणिलोपस्य “अचः परस्मिन्” इति स्थानिवत्वेन व्यवहिततया चिणपरक-
णिपरकत्वाभावात् । दीर्घविकल्पविधौ तु प्रथमस्य णिचो लोपो न स्थानिवत्,
दीर्घविधौ स्थानिवत्त्वनिषेधात् । भाष्यकारस्तु ‘नपदान्त’ इति सूत्रे ‘पूर्वत्राक्षिद्धे
न स्थानिवत्’ इत्येव सिद्धत्वात् तत्र द्विर्वचनसवर्णानुसारदीर्घजश्चरविधौ न प्रत्या-
ख्यातवान् । नच ण्यन्ताण्यौ ‘चिण्णमुलोः’ इति दीर्घे कर्तव्ये प्रथमणिलोपस्य
स्थानिवत्त्वं दुर्वारम्, ‘चिण्णमुलोः’ इति दीर्घस्य पूर्वत्रासिद्धीयत्वाभावात् । ततश्च
प्रथमणिचा व्यवहितत्वात् दीर्घानापत्तिः । एवञ्च तत्र दीर्घे कर्तव्ये स्थानिवत्त्वनि-
वारणाय दीर्घग्रहणमावश्यकत्वात् कथं दीर्घग्रहणं प्रत्याख्यातमिति वाच्यम्, ‘चि-
ण्णमुलोः’ इति दीर्घविधौ णाविति णित्वजातिप्रधानो निर्देशः । चिण्णमुल्परकणि-
त्वजातौ परत इति यावत् । णित्वजातिश्च णिद्वयेऽस्तीति प्रथमणेः स्थानिवत्वेऽपि
दीर्घस्य निर्बाधत्वात् । एवञ्च ह्रस्वदीर्घयोर्विशेषाभावात् ह्रस्वविकल्प एव क्रियताम्
मास्तु दीर्घग्रहणमिति भाष्यतात्पर्यम् ।

कारिष्यते घटः—अयंभावः ज्ञानेच्छयोरिव यत्नस्यापि कर्तुं स्थित्वात् तद्वा-
चिनः कृन्नोऽपि कर्ता न कर्मवत् स्यात् । ततश्च ‘क्रियते घटः स्वयमेव’ इत्यत्र
यगादिर्नोपपद्यत इति चेत् न, ‘करोति’ इत्यस्योत्पादनार्थकत्वात् । उत्पत्तिश्च

कर्मस्थेति, उरग्नोऽनुत्पन्ने च बैलक्ष्ण्यस्य प्रत्यक्षत्वात् । अत एव (कृञः कर्तुः कर्म-स्थत्वादेव) क्रियते षट् इत्यत्र यक् । ताप्ति-चिण्वदिट्पक्षे कारिता तदभावे कर्ता । लृटि-चिण्वदिटि पक्षे कारिष्यते तदभावपक्षे 'श्रुद्धनोः स्ये' इतीट् करिष्यते इत्यादि सिद्धम् ।

कुष्यते पादः स्वयमेव—कुष्याति पादं देवदत्तः इति मुख्यकर्तृलकारे पादः कर्म तस्य पुरुषप्रयत्नमनपेक्ष्य कर्तृत्वविवक्षायां 'प्राचां इयन्परस्मैपदं च' इति सूत्रेण इयनि परस्मैपदे च 'कुष्यति' इति । 'प्राचां' ग्रहणात् सूत्रस्य विकल्पकत्वेन तदुभयभावावे यकि आत्मनेपदे च 'कुष्यते' इति रूपम् । यकस्यनोस्तु-स्वरे विशेषः ।

नाहं कलिङ्गान् जगाम—अस्योत्तरं ४० वर्षे द्रष्टव्यम् ।

मुहूर्तादुपरि षपाध्यायश्चेदागच्छति—अत्र वाम्ये लोडर्थलक्षणे वर्तमानाद्गतोलिङ्लटौ वा रतः इत्यर्थक-“लिङ् चोर्ध्वमौहूर्तिके” इति सूत्रेण लटि आगच्छति इति । लिङि तु आगच्छेत् इति । पक्षे लुट् लुटौ-आगन्ता आगमिष्यति वा इत्यपि भवति ।

वसन्तीह पुरा छात्राः—अत्र वाक्ये वसन्ति इत्यत्र पुराशब्दयोगे भूता-नद्यतने लुङ्लटौ वा रतः, नतु समयोगे इत्यर्थक-“पुरि लुङ्चाऽस्मे” इति सूत्रेण लट् । लुङि तु 'अवात्सीः' इति । पक्षे यथाप्राप्तम् अर्थात् अनद्यतनपरोक्षभूते लिट्-रुपुः । परोक्षाऽविवक्षायां तु लङ् 'अवसन्' इति वा भवति ।

अधीष्वाऽधीष्वेत्यधीते—पुनः पुनः अतिशयेन वा अध्ययनमित्यर्थे “क्रियासमविहारे लीट् लोटो द्विस्वी वा च तत्त्वमोः” इति लोटि आत्मनेपदसंज्ञायां ध्वम्विषये स्वादेशे षत्वे “क्रियासमविहारे द्वे वाच्ये” इति द्वित्वे अधीऽवाधीष्व इति । ततो यथाविध्यनुप्रयोगः पूर्वस्मिन्नित्यनेन लोट्प्रकृतेरनुप्रयोगे तस्मात्संख्या-कालयोः पुरुषविशेषार्थस्य च विवक्षायां षट् 'अधीते' इति । ततश्चाभेदान्वयतात्पर्यं प्राहकेतिशब्दबलात्पुनः पुनरतिशयेन वाऽध्ययनाभिषेककर्तृकवर्तमानकालिकमध्य-यनमिति बोधः । ध्वम्विषये स्वादेशस्य विकल्पविधानात् पक्षे अधीष्वमधीष्व-मिति युयमधीष्वे (अधीष्वम्) इत्यपि बोध्यम् ।

६—निर्विण्णः—विद्धातोः “तयोरेव कृत्यकखलर्याः” इत्यनेन कर्मणि कप्र-त्यये “स्वाभ्याम्” इत्यनेन दकारादुत्तरस्य तकारस्य पदस्य च नत्वे “निर्विन् नः” इति स्थिते नकारस्य अन्वः परत्वाभावात् नकारेण व्यवधानाच्च “कृत्यचः” इति

सूत्रेण गत्वाप्राप्तया “नि वरणस्योपसंह्यानम्” इति वार्तिकेन परस्य शास्त्रे पूर्णस्य
द्वुत्वे ‘विर्विण्णः’ इति ।

अजर्यम्—अजर्यतीत्यजर्यम् । जरितुं न भवतीत्यर्थः । मित्रत्वमिति यावत् ।
अत्र जूधातोः “तयोरेव” इति भावे क्तप्रत्ययप्राप्ते “अजर्यं सज्जतम्” इत्यनेन निपा-
तनात् कर्तरि यत् । अत एव—“तेन सज्जतमार्येण रामाजर्यं कुरु द्रुतम्” इति भट्टिः
सज्जच्छते । हे राम । तेन = आर्येण, अजर्यम् = अनश्वरं, सज्जतं = सज्जमं, द्रुतं =
शीघ्रं, कुरु, इत्यर्थः । ननु यदा सज्जतं चेद्विशेष्यं तदेवोक्तसूत्रेण यत्प्रत्ययो निपा-
त्यते । ततश्च “मृगैरजर्यं जरसा” इति कालिदासप्रयोगाऽनापत्तिः स्यादिति चे-
न्नैवम्, अत्र वाक्ये सज्जतमिति विशेष्यमध्याहार्येण सम्भवात् ।

पञ्च प्रयाजाः—अथ च “प्रयाजाऽनुयाजो यज्ञाग्ने” इत्यनेन निपातना-
त्सिद्धं भवति ।

सान्नाय्यम्—सभ्यङ् नोद्यते होमार्थमस्मीतीति सान्नाय्यं हविर्विशेषः । अत्र
सम्पूर्वाज्ञाधातोः “पाय्य-सान्नाय्य-निकाय्य-धाया-मान-हवि-निवास-सामिधे-
नीषु” इति सूत्रेण निपातनात् ण्यत् आयादेशः समो दीर्घश्च भवति ।

वाह्यम्—अभिधारणार्थं स्थलविशेषेऽभिधये सम्पूर्वात् बहुधातोः ‘अमौ परि-
चाय्योपचाय्यसमूह्याः’ इति सूत्रेण निपातनात् कर्मणि ण्यति सम्प्रसारणे दीर्घे च
कृते ‘समूह्यम्’ इति भवति । अन्यत्र ‘संवाह्यम्’ भवति । उपसर्गमिन्ने तु कर्मणि-
ण्यति सति ‘वाह्यम्’ इत्येव स्यात् ।

पादहारकः—“कृत्यल्युटः” इत्येतावदैव पुनर्वचनबलात् येष्वर्थेषु ते कृत्य-
ल्युटो विहिताः ततोऽन्येष्वर्थेषु भवन्तीत्यर्थलाभसम्भवात् सूत्रे बहुलग्रहणं योगवि-
भागार्थम्—कृत्यप्रत्यया येष्वर्थेषु विहितास्ततोऽन्यत्राऽपि क्वचिद् भवन्तीति । तेन
पादाभ्यां ह्रियते ‘पादहारकः’ इत्यत्र कर्मणि लुल् सिद्ध्यति । “कृतो बहुलम्”
इति वार्तिकन्तु एतद्योगविभागसिद्धकथनपरमिति बोध्यम् । भाष्ये तु “कृतो बहु-
लम्” इत्येव स्थितम् । ततश्च योगविभागं विनैव सकलेष्टसिद्धिरिति ध्येयम् ।

शोकापनोदः—शोकमपनुदतीति शोकापनुदः । “आलस्यसुखाहरणयोरिति
वक्तव्यम्” इति वार्तिकेन कप्रत्यये सति गुणाभावात् ‘शोकापनुदः’ इति सुखस्या-
हर्ता इत्यर्थः । यश्च संसाराऽसारत्वोपदेशेन शोकमपनुदति स शोकापनोदः । अत्र
सुखाहरणाभावेन कप्रत्ययाभावात् पुनरे ‘शोकापनोदः’ इत्येव ।

कुक्षिम्भरिः—कुक्षिं विभर्तीति कुक्षिम्भरिः । “फले ग्रहिरतमम्भरिश्च” इति

सूत्रेण चकारात् कुक्षेः मुमागमः, भृशः इन्प्रत्ययश्च निपातनाद्भवति ।

आढ्यङ्करणम्—न आढ्यमनाढ्यम्, अनाढ्यमाढ्यं कुर्वन्त्यनेनेति विप्रहे
अभूततद्भावविषये “आढ्य-सुभग-स्थूल-पलित-नग्ना-ऽन्व-प्रियेषु ऋयर्थेष्व-
चवौ कृष्णः करणे ख्युन्” इति सूत्रेण ख्युन्प्रत्यये अनुबन्धलोपे “युवोरनाकौ”
इति अनादेशे “अर्द्धिषदजन्तस्य मुम्” इति मुमि उमावितौ गुणे णत्वे
च विहिते कृदन्तत्वात् सौ अमि पूर्वरूपे अनुस्वारे परसवर्णे च आढ्यङ्करणम्
इति सिद्धम् ।

मन्त्रकृत्—अत्र “सु-कर्म-पाप-मन्त्र-पुण्येषु कृजः” इति सूत्रेण क्तिपि
‘मन्त्रकृत्, इति । अत्र सूत्रे त्रिविधनियमो भवति । तथा च भाष्यम्—(१)–‘भूते
क्विवेवेति, तेन ‘कर्मकृतवान्, इत्यत्र अण् न । (२)–‘सुकर्मादिषु भूते कृष् एव
क्विविति, तेन ‘मन्त्रमधीतवान्-मन्त्राध्यायः’ इत्यत्र क्विप् न । (३)–‘सुकर्मादिषु
भूत एव क्विविति । तेन मन्त्रं करोति करिष्यति वेति विवक्षाया न क्विप् ।
सुकर्मादिषु पञ्चस्वेव नियमाभावात्, शास्त्रकृत्, भाष्यकृत्, इत्यादावपि क्विप्
भवतीति दिक् ।

वित्तः—‘विद विचारणे’ इत्यस्माद्धातोः निष्ठायां कप्रत्यये अनुबन्धलोपे
विद् त इति स्थिते “नुदविदोन्दन्नाम्राह्मीभ्योऽन्यतरस्याम्” इति सूत्रेण “रदाम्या-
मि”ति नित्यनस्त्वं वाचित्वा पाक्षिकनस्त्वं प्राप्तं तमपि प्रवाध्य “वित्तो भोगप्रत्ययोः”
इति सूत्रेण प्रत्ययार्थे निपातनात् नस्त्वाभावे चत्वे कृदन्तत्वात् सौ रुत्वे विसर्गे
वित्तः इति । वित्तः=पुरुषः, प्रख्यात इति यावत् ।

भोग-प्रत्ययभावाऽभावेर्धे तु-विन्नः-वित्तः-इति रूपद्वयमपि भवति । “नुद-
विद” इति सूत्रे उन्दिना साहचर्यात् रौघादिक एव विदधातोर्ग्रहणात् ‘विदसत्ता-
याम्’ इत्यस्य तु कप्रत्यये “रदाम्यामि”ति नित्यनस्त्वे ‘विन्नः’ इत्येकमेव रूपं
भवति । ‘विद ज्ञाने’ इत्यस्य तु कप्रत्यये सेट्त्वादिति ‘विदितः’ इत्येव स्यादिति
समवयस्काः ।

स्लिष्टम्—‘लमेच्छ अव्यक्ते शब्दे’ इत्यस्माद्धातोः कप्रत्यये “व्रश्चे”ति
षत्वे ष्टुवे सति “लुब्ध-स्वान्त-स्वान्त-लन-स्लिष्ट विरिद्ध-काण्ट-वाढानि-
मन्थ-मन-स्तमः-सक्ता-ऽविस्पष्ट-स्वरा-ऽनायास-भृशेषु” इति सूत्रेण निपात-
नाद् उपधाया इत्वे इडभावे च कृदन्तत्वात् सौ अमि पूर्वरूपे ‘स्लिष्टम्’ इति । ‘अथ
स्लिष्टमविस्पष्टम्’ इत्यमरः ।

धृष्टः—‘अि धृषा प्रागल्भे’ इत्यस्माद्धातोः कप्रत्यये “धृषिशसी वैयात्ये” इति सूत्रेण इग्निषेधे ष्टुत्वे कृदन्तत्वात्सौ ऋत्वे विसर्गे “धृष्टः” इति अविनीत इत्यर्थः ।

अयम्भावः धृषेरादित्वात् “आदितश्च” इत्यनेन, शसुघातोश्च ओदितत्वात् “यस्य विभाषा” इत्यनेन इग्निषेधे सिद्धे “धृषिशसी वैयात्ये” इति सूत्रं नियमयति—अविनये एवैतौ अनिटौ स्तः” इति । तेन अविनयभिन्नार्थे इटि सति षष्पितः, विशसितः इत्येव रूपं भवति । नच धृषेर्भावादिकर्मणोरर्थयोः कप्रत्यये ‘विभाषाभावा दकर्मणोः’ इति इटि विकल्पे प्राप्ते तन्निषेधार्थं विध्यर्थमेवेदं सूत्रमिति वाच्यम्, वैयात्येऽथ भावादिकर्मणोर्धृषेर्विधानाभावात् । एवञ्च नियमार्थमिदं सूत्रमिति वृत्तिकारादयः । इरदत्तादयस्तु धृषिघातौ आकारप्रहणस्य फलाभावात् तदकरणे “आदितश्च” इति सूत्रप्रवृत्त्यभावे इटः प्राप्तौ तन्निषेधार्थं विध्यर्थमेव सूत्रमिदमित्याहुः ।

तूर्णः—जित्वरा सम्भ्रमे इत्यस्माद्धातोः कप्रत्यये अनुबन्धलोपे “आदि-तश्च” इति नित्यमिग्निषेधे प्राप्ते तम्प्रवाध्य “रुध्यमत्वरसङ्धुषाऽऽस्त्वनाम्” इति सूत्रेण विभाषया इग्निषेधे । “ज्वरत्वर” इत्यादिसूत्रेण ऊठि “रदाभ्याम्” इति नृत्वे णत्वे कृदन्तत्वात् सौ ऋत्वे विसर्गे ‘तूर्णः’ इति इग्निषेधाभावपक्षे ‘स्वरितः’ इति ।

अर्जयन्वसति—‘अर्जं प्रतियत्ने’ इति चुरादिष्यन्तात् ‘अर्जं’ घातोर्लटि “लक्ष्णहेत्वोः क्रियायाः” इति सूत्रेण हेतावर्थे शतृप्रत्यये गुणादिकार्ये ‘अर्जयन्’ इति । अर्जयन्वसति इत्यस्य अर्जनाय वसतीत्यर्थः । नच घनाद्यर्जनस्य वाससाध्यतया कथं तस्य वासहेतुत्वमिति चेत्सत्यम्, इष्टसाधनताज्ञानस्य वासप्रवृत्तौ हेतुतया इष्टस्यार्जनस्यापि वासहेतुत्वात् ।

विकरथी—वि-उपसर्गात् ‘कथं श्लाघायाम्’ इत्यस्माद्धातोः “वौ कष-लस-कथ-सम्भः” इति सूत्रेण विनुष्ण् प्रत्यये, अनुबन्धलोपे कृदन्तत्वात् सौ उपघादीर्धे नलोपे मुलोपे ‘विकरथी’ इति ।

नेत्रम्—नीघातोः “दाग्नी-शस-यु-युज-स्तु-तुद-सि-सिच-मिह-पत-दश-नह-कारणे” इति सूत्रेण ष्टृन्प्रत्यये अनुबन्धलोपे गुणो कृदन्तत्वात्सौ अग्निपूर्वरूपे ‘नेत्रम्’ इति सिद्धम् ।

७—कृष्णं द्रष्टुं याति—‘अत्र ‘तुमन्गुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्’ इति सूत्रेण दृशवातोः भावे तुमुन्प्रत्यये मान्तत्वात् “कन्मेजन्तः” इत्यव्ययसंज्ञायाम् ‘द्रष्टुम्’ इति । कृष्णं द्रष्टुं याति’ इत्यस्य कृष्णकर्मकं यद्भविव्यदर्शनं तत्प्रयोजकं जन्मनमित्यर्थः । अत एव “न लोकाव्यय” इति न षष्ठी ।

रङ्गः—रज्यत्यस्मिन्निति विग्रहे “अकर्तरि च कारके संशायाम्” इति घञ्प्रत्यये “चजोः कुविण्यतोः” इति कृत्वे अधिकरणशक्तिप्रधानतया नलोपाभावे तत्त्वानुसारे परसवर्णे कृदन्तत्वात्सौ क्त्वे विसर्गे ‘रङ्गः’ इति ।

निस्वानः—अत्र “नौ गदनदपठस्वनः” इति सूत्रेण विभाषया अपि सति ‘निस्वनः’ तदभावे षञ्चि वृद्धौ ‘निस्वानः’ इति ।

अटायथा—अटधातोः “परिचर्यापरिसर्यामृगयाऽटाटथ्यानामुपसंख्यानम्” इति वार्तिकेन क्रियाम् निपातनात् शे यकि टथशब्दस्य द्वित्वे पूर्वभागे यकारनिवृत्तौ दीर्घे च “अटायथा” इति । नच द्वित्वे कृते ह्लादिशेषेणैव यकारलोपः कुतो नेति वाच्यम्, ह्लादिशेषस्य षाष्ठद्वित्वविषयत्वात् ।

अपमाय—मेङ्धातोः “उदीचां माङ्गो व्यतीहारे” इति क्त्वाप्रत्यये “स-मासेऽनपूर्वे”ति क्त्वो ल्यपि “मयतेरिदन्धतरस्याम्” इति विभाषया इत्वे “ह-स्वस्य पिती”ति तुकि “अरमित्य” इति । इत्वाभावे “ईयति” इति प्राप्तमीत्वं “न ल्यपि” इति निषेधात् “आदेच उपदेशेऽशिति” इत्यात्वे ‘अपमाय’ इति । अपमाय, अपमित्य वा याचते इत्यस्य त्वया गौर्दत्ता चेन्मया महिषी दीयते इत्येवं विनिमयं कर्तुं णां याचते इत्यर्थः ।

“उदीचां माङ्गो व्यतीहारे” इति सूत्रे उदीचां ग्रहणात् यथा प्राप्तमपि भवति । तेन मेङ्गः क्त्वाप्रत्ययस्य विकल्पलाभात्, तदभावे याचेः पूर्वकालक्रियावृत्ति-त्वात् समानकर्तृकथोरिति क्त्वाप्रत्यये ‘याचित्वा उपमयते’ इति ।

परिव्याय—परिपूर्वाद्ध्येजः क्त्वो ल्यपि “विभाषापरे” इति सूत्रेण यकारस्य सम्प्रसारणे पूर्वरूपे परि × वि × य इति स्थिते तुकं वाचित्वा परत्वात् “हलः” इति दीर्घे ‘परिवीय’ इति । सम्प्रसारणाभावे आत्वे ‘परिव्याय’ इति ।

चौरङ्कारमाक्रोशति—करोति उच्चारणे चौरशब्दमुच्चार्य आक्रोशति इत्यर्थः । अत्र कर्मोपपदात्-कृञ् वातोः “कर्मण्याक्रोशे कृञः खमुञ्” इति सूत्रेण खमुञ् प्रत्यये उपपदसमासे “अरुर्दिषदजन्तस्य मुञ्” इति मुभि वृद्धौ “स्वादुङ्कारम्” इति विद्धम् ।

अथवा प्रश्नोत्तराणि ।

विसारः—“वि” उपसर्गात् सृधातोः “व्याधिमत्स्यबलेषु चेति वाच्यम्” इति वार्तिकेन षञ्प्रत्यये वृद्धौ रपरत्वे कृन्तत्वात्सौ क्त्वे विसर्गे ‘विसारः’ विसारो मत्स्य इति ।

निष्पावः—निष्पूयते शूर्पादिरिति निष्पावो घान्यविशेषः । “निरभ्योः पूर्वोः” इति सूत्रेण घञि वृद्धावादेशयोः ‘निष्पावः’ इति ।

दरः—“हृ” धातोः “हृ-वृ-हृ-निश्चि-गमश्च” इति सूत्रेण अप्रत्यये गुणो कृदन्तत्वात्सौ क्त्वे विसर्गे ‘दरः’ इति, घञि तु ‘दारः’ स्यादतः तमपवाद्याप् विधीयते ।

उप्त्रिमम्—वपधातोः “छिवतः क्रिः” इति सूत्रेण क्प्रत्यये “क्त्रमन्त्रित्यम्” इत्यनेन क्प्रत्ययान्तात्, मप्प्रत्यये कृदन्तत्वात् प्रातिपदिककार्ये ‘उप्त्रिमम्’ इति सिद्धम् ।

सर्वा कारिकाम्—आख्यानेऽर्थे कृधातोः स्त्रियाम् “विभाषाख्यानपरिप्रश्नयोर्विञ्च” इति सूत्रेण शबुलि अगादशे वृद्धौ स्त्रीत्वाद्यापि “प्रत्ययस्थादि” ति इत्वे ‘कारिका’ ति । तस्य द्विवचने ‘कारिकाम्’ इति । सर्वामित्यस्य ‘अकार्षम्’ इति मूलोक्तेऽन्वयो बोध्यः । पूर्वं परिप्रश्नः, पञ्चादुक्तकथनमाख्यानम् । ततश्च कां स्वं कारिं, कारिकां क्रियां, कृत्यां, कृतिं वाऽकार्षीः ? इति प्रश्ने उत्तरयति—सर्वा कारिं, कारिकां, क्रियां, कृत्यां, कृतिं, वाऽकार्षम् इति ।

अप्राप्य नदीं पर्वतः—इत्यत्र “परावरयोगे च” इति सूत्रेण क्त्वाप्रत्यये तस्य ल्यपि अप्राप्य इति अवरस्य परयोगे उदाहरणमेतत् ।

प्राप्य—“प्र” उपसर्गात् ययन्तात् आपधातोः “समानकर्तृकयोः पूर्वकाले” इति क्त्वाप्रत्यये “समासेऽनन्पूर्वे क्त्वो ल्यप्” इति ल्यपि ततः णिलोपे प्राप्ते तम्प्रवाध्य “विभाषाऽऽपः” इत्यनेन विभाषया शेरयादेशे ‘प्राप्य’ इति, अथा-देशाभावे णिलोपे ‘प्राप्य’ इति ।

गोष्पदप्रम्—“वर्षप्रमाणं कलोपश्चास्यान्यतरस्याम्” इति सूत्रेण विभाषया ण्यन्तात् पूरण्मुलि कलोपे च सति णिलोपे कृदन्तात् सौ तस्यामादेशे ‘गोष्प-दप्रम्’ इति ।

गेरणावति—अत्र सूत्रे चत्वारि वाक्यानि प्रतीयन्ते । तथाहि—‘गेः’ इत्येकं वाक्यम् । “अणौ यत्कम् णौ चेत्” इति द्वितीयम् । ‘स कर्त्ता’ इति

तृतीयम् 'अनाध्याने' इति चतुर्थम् । आत्मनेपदस्याधिकारः । द्वितीययोगे कर्म-
पदस्य क्रियापरत्वम् । तृतीययोगे द्वितीययोगस्यानुवृत्तिः, तत्र कर्मपदस्य कर्मका-
रकबोधकत्वम् । तथा च—शयन्तादात्मनेपदं स्यादणौ या क्रिया सैव शयन्तेनोच्यते,
अणौ यत्कर्मकारकं स चेशणौ कर्ता स्यात्त्वाध्याने इति तदर्थः । एतदुदाहरणानि
तु अपरिस्पन्दनसाधनसाध्याः कर्तृस्थभावकाः सपरिस्पन्दनसाधनसाध्याः कर्तृस्थ-
क्रियाश्च । तथाहि—(१) पश्यन्ति भवं भक्ताः । (२) पश्यति भवः । (३)
दर्शयन्ति भवं भक्ताः । (४) दर्शयते भवः । इति त्रिमिकोदाहरणानि बोध्यानि ।

उदाहरणसङ्गमस्तु इत्थम्—पश्यति भवः इति द्वितीयकक्षायां या
क्रियोच्यते सैव क्रिया दर्शयते भव इति चतुर्थकक्षायामुच्यते । एवञ्च
क्रियासाम्यात् प्रथमकक्षायां भवरूपकर्मणः कर्तृत्वाच्चात्मनेपदं सिद्धम्भ-
वति । एवं कर्तृस्थक्रियायामारोहयते हस्तीत्यत्रापि अथवा पश्यन्ति भव-
मारोहयन्ति हस्तिनमिति प्रथमकक्षायामेव कर्मणो हेतुत्वरोपाणिञ्चि दर्शयति
भवः आरोहयति हस्तीति । ततश्च शिजर्थव्यापारस्य अध्यारोपितकर्तृव्या-
पारस्य च त्यागेन दर्शयते भव इति तृतीयकक्षायामेव तद् भवति । न
च भवरूपकर्मणः कर्तृत्वात् दर्शयति भवो भक्तानिति द्वितीयकक्षायां कथं
तद् न स्यादिति वाच्यम्, अध्यारोपितकर्तृव्यापारेण साध्येऽपि शिजर्थव्या-
पारस्याधिबयेन समानक्रियात्वाभावात् । तृतीयकक्षायां तु घातृपातव्यापारस्य
शिजर्थव्यापारस्य च त्यागेन समानक्रियात्वात्तत्त्वसिद्धिः । नच तृतीयकक्षायामपि]
चानुषञ्जानविषयीकरणरूपव्यापारगुक्तायाः पश्यन्ति भवं भक्ता इति प्रथमकक्षा-
स्थक्रियाया अपेक्षया न्यूनता स्यादिति वाच्यम्, एवकारेणाधिक्यांशस्यैव निस्स-
रितत्वात् ।

विशिष्यतीति—अत्र सूत्रे द्वितीयायामित्यनुवर्तते सूत्रार्थस्तु—द्वितीयान्ते
वपपदे विश्यादिस्थो यमुल्स्याद्वाप्यमाने, आसेव्यमाने चार्थे गम्ये इति ।
गेहादिद्रव्याणां विश्यादिक्रियाभिः साकरुयेन सम्बन्धो व्याप्तिः । क्रियायाः पौनः-
पुन्यम्, आसेवा । ननु 'आभीक्ष्ण्ये यमुल् च' इत्यनेनैव यमुल् सिद्धे प्रकृतसूत्रे
आसेवाग्रहणं किमर्थम् । नच वत्वानिवृत्तिफलमिति वाच्यम्, वत्वाग्रहणस्यापि
पक्षे इष्टत्वादिति चेन्न, द्वितीयान्तस्योपपदसम्भार्य तस्य ग्रहणस्यावश्यकत्वात् ।
नच आसेवाग्रहणाभावेऽपि 'तत्रोपपदमिति' उपपदसंज्ञा कुतो न स्यादिति वा-

च्यम्, “आभिक्ष्ये णमुल् च” इति सूत्रे द्वितीयान्तस्य सप्तम्या निर्देशेन प्रहारा-
भावादुपपदसृज्ज्ञा न स्यात् । “तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्” इत्युपपदसृ-
ज्ज्ञासृज्ज्ञो न स्यादिति तदुभायः । “गेहानुप्रवेशमास्ते” इत्याद्युदाहर-
णम् । गेहानुप्रवेशमास्ते इत्यत्र सर्वाणि गेहान्यनुप्रविश्येति, पुनः पुनर्गेहानुप्रवि-
श्येति वा अर्थः । उक्तञ्चापि “नित्यविप्सयोः इति द्वित्वं तु न, समासेनैव ह्यस-
वतः तयोरुक्तत्वात् ।

णिजन्तादि-उत्तरकृदन्तान्तभागे प्रश्नाः ।

११४२

१—विस्मापयन् विस्मितमात्मवृत्तादित्यत्र आत्मवृत्तेः साध्याभावयोः-
पपत्तिः प्रदर्शनीया ।

२—अजीवकालत् । अजुह्वत् । अध्यापित् । अरिषित् । एतान्
प्रयोगान् संसाध्य विपठितुमिच्छति । मीमांसितुमिच्छति ।
पुनः पुनरतिशयेन वा गच्छति । इति विग्रहे सन्यङौ भवतौ
न वेति विवेचनीयम् ।

३—अटाटयते । शाशयते । अवधीत् । अजर्घाः । मामूमः ।
मोमोति—साधु साधनीया इमे ।

४—अवगल्भाञ्जके । बुभाव । त्वापयति । औजिह्वत् । एते साधु साध्याः ।

५—व्यतिपूर्वादस्तेर्लटि मध्यमस्य, उपपूर्वाद् यमो लुङि प्रथमस्य च
बहुवचने, प्रपूर्वाङ्गभेः कर्मणि लुङि प्रथमपुरुषैकवचने च
रूपाणि संसाध्य ईर्यते । चन्द्रिद्रियिषति । उपस्किरते वृषः । ऋचि
क्रमते बुद्धिः । माणवकं वञ्चये । एषु विशेषकार्याणि प्रदर्शयत ।
अथवा—

सुवर्णमुत्तपति । संस्वरते । माणवकमुपनयते । धर्मं जिज्ञासते ।
गां जानीते । योधयति काष्ठानि । एतान् संसाध्य, न पादस्या-
ङिति सूत्रं सोदाहरणं व्याख्यायताम् ।

६—शय्यते । अधानिष्यत । कतमं भोजयसि । न मर्षये हरिं निन्देत्
एतान् लकारविशेषनिर्देशपुरःसरं संसाध्य, भावे लकारे कर्म-

बहुभावेन द्वितीया, गच्छति ग्राम इत्यादौ सविग्रहं साधु साधनीयाः ।

९—सिंहः । अथयं पापम् । विपुयः । धारया । पतापतः । आयः । मिष्टः । एताञ्जयो । एते प्रयोगाः साधु साधनीयाः ।

१०—वृत्तम् । नियकारः । आशीः । अभिषयानम् । उषितः । संशि-
तेष्वम् । विदुरम् । प्राङ् । एषु पञ्चैव प्रयोगान् संसाध्य,
प्रद्विट् । जुब्धः । संपर्की । इत्येतेषु केवलं सूत्राण्येव लेख्यानि ।
साधुत्वञ्चात्र नापेक्षितम् ।

११—भीष्मः । आत्मः । निषद्या । सन्तिः । रक्षपेषम् । अन् विज्ञेयं ।
कथयति । एषु कार्यविशेषान् प्रदर्श्य, क वा त्यक्त्वाने को
मेद इति सोदरणं ब्रूत ।

प्रश्नोत्तराणि ।

१—विस्मापयन्निति—‘विस्मापयन् विस्मितमात्मवृत्तौ’ इत्यत्र मनुष्य-
वाचेति करणेनैव राज्ञो विस्मय इति सिंहरूपप्रयोजकाद् विस्मयाऽभावेन “निर्यं
स्मयतेः” इति सूत्राऽप्रवृत्तौ आत्वाऽभावेन ‘पुग्’ न स्यात् । यदि प्रयोजकाद्
विस्मयः स्वीक्रीयते, तदा “भीस्मोर्हेतुभये” इत्यात्मनेपदमपि स्यात् एवञ्च
शत्रुप्रत्यययुक्तं रूपमनुपपन्नं भवतीति सन्देहावसरे “विस्मापयन्” इत्येव पाठ
इति साम्प्रदायिकाः ।

अथवा राजा विस्मयते, मनुष्यवाक् प्रेरयतीति मनुष्यवाक् राजानं विस्मापयते
इति तां मनुष्यवाचं सिंहः प्रेरयतीति सिंहः राजानं विस्मापयतीति प्यन्ताणौ
मनुष्यावाग्रूपप्रयोजकाद् विस्मयो विद्यत इत्यात्वादिकार्यं सुलभमिति दिक् ।

२—अचीचकासत्—“चकास दीप्तौ” अस्माणिचि तदन्ताद्बुद्धिं तिपि
इपाबितौ ‘लुङ्-लङ्’ इत्यङागमे मध्ये च्लौ तस्य “णि-अ-ङ्-लुभ्यः कर्तरि
चङ्” इत्यनेन चङादेशे “चङि” इत्यनेन द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे च
“कृहोश्चुः” इति जुत्वे “शोरनिटि” इति णिलोपे चङ्परे णौ यदङ्गं तस्य थोऽ-
भ्यासो लघुपरः इत्यर्थपक्षाभये “सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनगलोपे” इति सन्वद्भावे
“सन्त्यतः” इति इत्वे “दीर्घो लघोः” इति दीर्घे “अचीचकासत्” इति । “अङ्गं
यत्र द्विरुच्यते” इति मते अर्थात् “सन्वल्लघूनी”त्यस्य “चङ्परे णौ यत्लघु

तत्परो योऽज्ञस्य अभ्यासः' इत्यर्थपक्षे सन्वद्भावाऽभावात् ह्रस्वदीर्घयोः समासोः
“अचक्षकाश्चत्” इति भवतीति ।

अजूहवत्—अस्योत्तरं सूच्या द्रष्टव्यम् ।

अध्यापपत्—अधिपूर्वादिङ्वातोर्णिवि तदन्ताद्यानुसंज्ञायां ङुकि हि रि
इपावितौ “जुङ्-लुङ्” इत्यङागमे च्लेश्चङादेशे “कौ च संख्योः” इति विभा-
षया इङो गङादेशे “अति-ङी-वङी-री-ञ्चुकी-क्षय्यतां पुङ् लौ” इति णुकि
“लौ ऋदुपधाया ह्रस्वः” इति ह्रस्वे ‘अधि अ गप् इ अ त्’ इति स्थिते ‘कप्’
इत्यस्य द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे “कुहोश्चुः” इति चुत्वे “सन्वत्सुनी”-
ति सन्वद्भावे “सन्वतः” इति इत्वे “दीर्घो लघोः” इति दीर्घे अघोकारस्य
यसि “अध्यजीगपत्” इति । नवात्र णिज्निमित्तस्य गङो द्वित्वे कर्त्तव्ये स्थानि-
वद्भावो निषेधो वा अङ्क्यः, यत्र अभ्यासोत्तरखण्डे आद्योऽन्वयोऽस्ति तत्रैव
स्थानिवद्भावो निषेधो वेत्युक्त्वात् । इह तु गङः पूर्वं सति हि द्वित्वे “अजादे-
द्वितीयस्य” इति णिच एव द्वित्वं भवेत्तत्त्वत्परिणिमित्तो गङ्, ततश्च
प्रक्रियायां परिनिष्ठितरूपे वाऽवर्णबहुत्तरखण्डं दुर्लभं, कीर्तयति साम्यात् ।

गङभावे “क्रीड्जीनां गौ” इत्यात्वे णुकि ‘अधि आ प् इ अ त्’ इति स्थिते
‘पि’ इत्यस्य द्वित्वादिकार्यं “अध्यापपत्” इति भवति ।

अरिषति—अस्योत्तरं ४१ वर्ये द्रष्टव्यम् ।

पिपठितुमिच्छति—इति विग्रहे सन्न भवति, अन्विष्यत्येकं भाष्ये—“शैषि-
कान्मनुवर्थायाच्छैषिको मनुवर्थिकः । सरूपः प्रत्ययो नेष्टः, सन्नन्ताच्च सनिष्यते”
इत्युक्त्वात् । नचैवं “जुगुप्सिषते” इत्यादौ कथं सन्नन्तात् सन्निति चेत् ? सत्यम्,
‘सन्नन्ताच्च सनिष्यते’ इत्यत्र शब्दतो वैदप्यस्याऽऽसम्भवेन अर्थद्वारकमेव सार-
ण्यस्य ग्रहणात् । तेन इच्छासन्नतादिच्छा सञ्जेति लभ्यते । एवञ्च “गुप्तिज्जिह्वः
सन्” इत्यादिसूत्रेण विहितस्वार्थसन्नतात् इच्छासन् भवत्येवेति दिक् ।

मीमांसितुमिच्छति—इति विग्रहे तु सन्न भवत्येव । ‘शैषिकान्मनुवर्थाया-
च्छैषिको मनुवर्थिकः । सरूपः प्रत्ययो नेष्टः सन्नन्ताच्च सनिष्यते” इति सन्निधा-
यकभाष्ये तुशब्दतो वैदप्यस्याऽऽसम्भवेन अर्थद्वारकमेव सारण्यस्य ग्रहणात् ।
इच्छासन्नतादिच्छासञ्जेत्येव लभ्यत्वेन “मान्ववदान्शान्भ्यो०” इति विहितस्वा-
र्थसन्नताद् इच्छासनो निर्वाधत्वात् ।

पुनः पुनरतिशयेन वा गच्छति—इति विग्रहे तु क्रियासमभिहारस्य

सत्त्वात् “धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्” इति यङ् स्यादेव । क्रिया-
समभिहारेऽप्य-पौनः पुन्यं भूतार्थश्चेति दिक् ।

इ—अट्ठाट्यत्ते—‘अट् गतौ’ इत्यस्याऽजादित्वेन “धातोरेकाचो हलादेः”
इत्यनेन यङोऽपाप्त्या “सूचि-सूत्रि-मूत्र्य-ट्ठत्यर्थ-शृणोतिभ्यो यङ्वाच्यः”
इति वार्त्तिकेन यङि “सन्त्यङो” इत्यनेन ‘अट्’ शब्दस्य द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां
हलादिशेषे ‘दीर्घोऽकितः’ इत्यनेन अभ्यासस्य दीर्घे “सनाद्यन्ता धातवः” इति
धातुत्वात् लटि आत्मनेपदे तत्प्रत्यये टेरित्वे च कृते “आट्ठाट्यते” इति ।

शाशय्यते—‘शीङ्’ धातोः “धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्”
इति यङि अनुबन्धलोपे “सनाद्यन्ता” इति धातुत्वे लटि आत्मनेपदे तत्प्र-
त्यये एत्वे च कृते “अयङ् यि विङ्ति” इत्यनेन परत्वादन्तरङ्गत्वाच्च द्वित्वात्
पूर्वम् अयङादेशे ततः “सन्त्यङोः” इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे
“दीर्घोऽकितः” इति दीर्घे “शाशय्यते” इति सिद्धम् ।

अवधीत्—‘हन्’ धातोः “धातोरेकाचः” इति यङि “यङोऽचि च” इति
लुकि “सन्त्यङोः” इत्यनेन परत्वात् वधादेशात् प्राग् द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां हला-
दिशेषे “कुहोक्षुः” इति लुक् कृते “अभ्यासाच्च” इति कुक्षीं यद्यपि “हो हन्तेः”
इत्यतो ‘हन्तेः’ इत्यनुवर्त्य विहितं तच्च यङ्लुकि कृतेऽपि स्वीकारादकुत्वे विहिते
“एकाचो द्वे प्रथमस्य” इति सूत्रस्थैकाजग्रहणेन “क्षितपा शपा” इत्यादि सर्व-
निषेधानां यङ्लुकि कचिदप्रवृत्तिज्ञापनात् निषेधाभावे “नुगतोऽनुनाठिकान्तस्य”
इति लुकि अनुबन्धलोपे अनुस्वारे परसवर्णे च कृते—जङघनित्यस्मात् लुङ्स्तिथि
इपावितौ “हनो वध लुङि च” इति वधादेशे “अस्ति सिचः” इति नित्यमीडा-
गमे “अवधीत्” इति । नच कृतद्विर्वचनस्य वधादेशे सति पुनर्द्वित्वं कृतो नेति
वाच्यम् ? “लिटि धातोरनुभ्यासस्य” इत्यत्र ‘अनुभ्यासस्ये’ति पदस्य समानाधि-
करणेन धातोर्विशेषणात् स्थानिवत्त्वेनाऽनुभ्यासस्येति निषेधात् ।

अचर्घा—इत्यस्य साधुत्वं ४१ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

मामूमः—‘मव्’ धातोर्यङ्लुकि धातुसंज्ञायां द्वित्वादिकार्ये कृते मामव् मस्
इति स्थिते—‘डवर-स्वर-स्त्रि-वि-अवि-मव्-एषामुपधावकारयोः ङ्’ स्यात् कौ
भलादावनुनासिकादौ च प्रत्यये’ इत्यर्थक—“डवरस्वरस्त्रिविमवामुपधायाश्च”
इत्यनेन अकारवकारयोरेकस्मिन् अनुनासिकपरत्वात् लटि छित्वात् गुणाऽभावे
सकारस्य रुत्वे विसर्गे “मामूमः” इति “एकः पूर्वपरयोः” इति सूत्रस्य भाष्य-

विद्वान्तेन उपवाया वकारस्य च प्रत्येकमूठ् इति पक्षे तु ऊठि सति सन्तर्जनी-
वर्त्तव्यं बोध्यम् ।

मोमोर्ति—‘मूच्छो मोहसमुच्छ्रययोः’ अस्मात् यङ्लुकि ‘अङो वा’ इति
इटि विकल्पपक्षे रूपम् । अत्र ईडभावे ‘राल्लोपः’ इति छुलोपो बोध्यः । एवं च-
मोमूच्छोर्ति-मोमोर्ति इति रूपद्वयं ज्ञेयम् ।

४—अवगल्भ-शब्दे—अवोपसर्गपूर्वकात् ‘गल्भ’ धातोः पचाद्यचि कृते
निष्पत्त्यात् ‘अवगल्भ’ शब्दात् ‘आचारेऽवगल्भ-कलीय-होडेभ्यः’ क्तिञ्च वक्तव्यः ।
इत्यनेन विभाषया किपि तत्सन्नियोगेन चाऽनुदात्तत्वमनुनासिकत्वं चाऽनुदात्तपद-
प्रतिज्ञायते, ततो धातुसंज्ञायां लिटि अनुदात्तत्वप्रतिज्ञानादात्मनेपदे तत्प्रत्यये तस्य
एकादेशे ‘कास्यनेकाच आम्बुक्तव्यः’ इत्यनेन आम्बु ‘आमः’ इति लिटो लुकि
‘कृञ्चानु’ इति ‘कृ’ इत्यनुप्रयोगकलित्प्रयोगे द्वित्वे अभ्यासस्येति अनुस्वारे
परसवर्णे यणि ‘अवगल्भान्ध्रक्रे’ इति ।

(अत्र शङ्कासमाधिदृश्यतामिति प्रश्नश्चेदित्थं समाधेयम्)—

अवगल्भदेशः पचाद्यचि कृते । किप्प्रत्ययसन्नियोगेनाऽनुदात्तत्वमनुनासिकत्वं चाच्-
प्रत्ययस्य प्रतिज्ञायते । नचात्र किप्प्रत्ययसन्नियोगेन अच्प्रत्ययस्यानुनासिकत्वा-
दिनिपातनाद् गल्भादिषट्कारस्य लोपेऽनेकाच्चाभावेन आम्बु न स्यादिति वा-
च्यम्, ‘साम्प्रतिकामावे भूतपूर्वगतिराश्रीयते’ इति परिभाषया साम्प्रत्ययस्य सिद्ध-
त्वात् । उक्तवने प्रमाणञ्च—‘आचारेऽवगल्भ’ इति वार्तिकमेव । नचाचारेथै अव-
गल्भते इत्यादावात्मनेपदार्थं वार्तिकं सार्थकमिति वाच्यम् ‘आतूनामनेकार्थाः’
इति वचनेन प्रत्ययरहितगल्भादिधातोऽप्याचारेऽर्थे शक्तिप्रदर्शनादवगल्भते इत्यादौ
तिङ्, सिद्धत्वात् । वार्तिकेऽवोपसर्गविशिष्टपाठसामर्थ्येन केवलगल्भादिधातोः उप-
सर्गान्तरविशिष्टाच्च गल्भादिधातोः क्यञ्चैव भवतीति माधवादयः । परञ्च क्यङ्-
किपोर्नास्ति विवादो द्वाभ्यामपि भाव्यम् । किन्तु अवोपसर्गरहितेभ्यः गल्भादिभ्यः
किपि सति परस्मैपदमेव स्याच्च त्वात्मनेपदमित्येव वक्तुं युक्तम् । वार्तिकस्य मुख्य-
प्रयोजनं प्रयोगे आम्प्रत्ययस्य सिद्धिः । आत्मनेपदन्तु गौणफलमिति दिक् ।

बुभाव—भूरिवि भवतीति विप्रद्वे, भुशब्दात् ‘सर्वप्रातिपदिकेभ्यः’ क्तिञ्च
वक्तव्यः’ इति किपि सर्वापहारे किबन्तस्य धातुसंज्ञायां लिटि तिपि णलि
द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां ‘ह्रस्वः’ इत्यनेन अभ्यासस्य ह्रस्वत्वे ‘अभ्यासे चर्च’ इति
जश्त्वे ‘अचोऽङिति’ इति वृद्धौ ‘बुभाव’ इति । नचाऽत्र ‘भुवो वुग्लुङलिटोः’

“भवतेरः” इति सूत्रद्वयस्य प्रवृत्तिः कुतो नेति वाच्यम् ? अभिव्यक्तत्वेन धातु-
पाठस्य ‘भू’ इत्यैव उपपन्नं ग्रहणेन “अभिव्यक्तपदार्था ये स्वतन्त्रा लोके विश्रुताः”
इति न्यायेन तदन्तर्याम्यप्रवृत्त्यात् ।

तदाश्लेषः—अस्योत्तरं ४३ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

श्रौतिलुक्—‘वह्’ धातोः क्तिनि ढत्व-यत्-ढृत्व-ढलोपेषु कृतेषु सम्प्रसार-
णे पूर्वक्षणे क “ऊढिः” तमाख्यादिति विग्रहे “तत्करोति” इति णिचि ढिलोपे
“ऊढि” इति ण्यन्ताल्लुङि तिपि इपाबितौ “आडजादीनाम्” इत्यादि “आटश्च”
इति ड्रडौ मध्ये च्लौ “णि-ञि-ड्र लु” इति चङि औ ङि आ त् इति स्थिते
ढत्व-यत्-ढृत्व-ढलोपानामसिद्धत्वात् “अजादेर्द्वितीयस्य” इति ‘हृत्’ शब्दस्य
द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां ह्रस्वदिशेषे “कुहोक्षु” इति हस्य चुत्वे “औजिढत्” इति ।
अत्र ढलोपे कृते “ढ्रलोप” इति दीर्घस्तु न “असिद्ध” परिभाषया ढलोपस्याऽ-
सिद्धत्वात् ।

ढत्वादीनामसिद्धत्वे कर्तव्ये “पूर्वत्राऽसिद्धीयमद्वित्वे” इत्यस्य प्रवृत्तिरपि
न शङ्क्या, तस्याऽनित्यावात् । नच कचिदनित्यत्वेऽप्यत्र तदप्रवृत्तौ मानाभाव
इति चेत्तन्मते ‘ढि’ शब्दस्य द्विविधं “औजिढत्” इत्येवेति दिक् ।

पू—व्यतिपूर्वादिति—व्यतिपूर्वात् ‘अस्’ धातोर्लुङि मध्यमपुरुषबहुवचने
“कर्तरि कर्मव्यतिहारे” “इत्यात्मनेपदे ध्वमि एत्वे नसोरल्लोपः” इति अल्लोपे
“व्यति स् ध्वे” इति स्थिते “चि च,” इति सलोपे “व्यतिध्वे” इति भवति ।

उपपूर्वादिति—उपपूर्वाद् ‘यम्’ धातोर्लुङि प्रथमपुरुषस्य बहुवचने “उपा-
यमः स्वकरणे” इत्यात्मनेपदे सति “आत्मनेपदे ध्वन्यतरस्याम्” इति ज्ञास्य अता-
देशे अडागमे सवर्णदीर्घे मध्ये च्लौ सिचि “विभाषोपयमने” इति विभाषया सिचः
किरवेन “अनुदात्तोपदेश” इत्यनेन मकारलोपे “ह्रस्वादज्ञात्” इति सिचो लोपे
च विहिते उपाय अत इति स्थिते “अतो गुणे” इति पूर्वरूपे “उपायत” इति ।
किदभावे “अनुदात्तोपदेशः” इत्यस्याऽप्राप्त्या मस्यानुस्वारे “उपायंसत” इति
च भवति ।

प्रपूर्वाल्लभेरिति—प्रपूर्वात् ‘लभ्’ धातोः कर्मणि लुङि प्रथमपुरुषैकवचने
आत्मनेपदे तप्रत्यये अडागमे सवर्णदीर्घे मध्ये च्लौ तस्य चिणदेशे “चिणो लुक्”
इति तशब्दस्य लुकि “विभाषा चिण्यमुलोः” इति व्यवस्थितविकल्पत्वात् नित्यं
अभि अनुस्वारेऽप्रसक्त्यै च “प्रालम्भि” इति भवति ।

व्यवस्थितविकल्पत्वादित्यस्य कोऽर्थः इति चेच्छृणु—प्रादेरुपसर्गात्परस्य लभे-
नित्यं नुम्, अनुपसर्गात् परस्य तु लभेर्विभाषया नुमिति व्यवस्थितविकल्पाशङ्क-
णादुपसर्गपूर्वस्य लभेर्नित्यं नुमित्त्वर्थः । स्पष्टं चेदं भाष्ये ।

ईर्यते — अत्र 'ईरम् ईर्यायाम्' इति धातोः “कण्ठ्यादिभ्यो यक्” इति
यक्, “हलि च” इति दीर्घो विशेषः ।

चन्द्रिणीयमिति—चन्द्रीयतेः सति “यथेष्टं नावधातुम्” इति वार्तिकबलात्
द्वितीयस्यैकाचो द्वित्वे रूपम् । अत्र “नन्दाः” इति निषेधात् नकारस्य न द्वित्व-
मिति माधवः । वस्तुतस्तु आदिभूतादचः परेषां नदराणां न द्वित्वमित्येषा अप्यन-
न्मतत्वेन माधवमतं चिन्त्यमेवेति दिक् ।

अपस्करते वृषः—अत्र “किरतेर्द्वर्षजीविकाकुलायकरणेष्विति वाच्यम्”
इति वार्तिकेन आत्मनेपदम् । “अपस्करतुल्याच्छुक्रनिष्कलेखने” इत्यनेन सुट् च
विशेषो भवति । अपस्करते वृषो हृष्टः=हर्षाद्भूमिं लिखन् धूल्यादि विक्षिप्तस्त्यर्थः ।

आदि क्रमते बुद्धिः—“इतिसर्गतायनेषु क्रमः” इति सूत्रेण आत्मनेपद-
मत्र विशेषः ।

माणवकं वञ्चयते—अत्र “गृध्रिवञ्च्योः प्रलम्भने” इति सूत्रेण ण्यन्तात्
आत्मनेपदमिति विशेषः ।

अथवा प्रश्नोत्तराणि—

सुवर्णमुत्तपति—“उद्विभ्यां तपः” इत्यत्र “स्वाङ्गकर्मकाच्चेति वक्त-
व्यम्” इति वार्तिकं वस्तंते तेनात्र आत्मनेपदं न भवति । सुवर्णमुत्तपतीत्यस्य
सन्तापयति विलापयति वेत्यर्थः ।

संस्वरते—“विदि-प्रच्छि-स्वरतीनामुपसंख्यानम्” इति वार्तिकेन अत्र
आत्मनेपदं भवति ।

माणवकमुपनयते—अत्र “सम्माननोत्सजनाचार्यकरणज्ञानभृतिविगणनव्य-
येषु नियः” इत्यात्मनेपदं भवति ।

धर्मं जिज्ञासते—अत्र “ज्ञा-श्रु-स्मृ-दृशां सनः” इत्यात्मनेपदमिति विशेषः ।

गां जानीते —अस्योत्तरं ३७ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

योधयति काष्ठानि—अत्र “बुध-युध-नश-जनेङ् प्रु-ङ्-सुभ्यो गोः”
इत्यनेन ण्यन्तात् ‘बुधः’ धातोः परस्मैपदं भवतीति शेषम् । काष्ठानि युध्यन्ते
स्वयमेव, तानि योध्यतीत्यर्थः ।

न पादभ्याङ्यमाङ्यस्यपरिमुहश्चिन्तितिवदवसः—पा, दमि, आ-
ङ्यम्, आङ्यस्, परिमुह, इचि, वृति, वद, वस् इत्येतेभ्यो ण्यन्तेभ्यः परस्मैपदं
नेत्यर्थः । तेन 'पा' इत्यस्य "पाययते" इत्यत्र "निगरणचलनार्थेभ्यश्च" इति पर-
स्मैपदं न । सूत्रे निगरणं=भक्षणम्, 'पा पाने' इत्यत्राऽपि पानमपि भक्षणमेवेति
निगरणार्थे विद्यमानं बोध्यम् ।

'दमि' इत्यस्य "दमयते" अत्र "अणावकर्मकाच्चित्तवःकर्तृकात्" इत्यनेन
परस्मैपदं प्राप्तमनेन निषिध्यते । यद्यपि दिवादौ 'दमिः' स कर्मकोऽस्ति, तथाप्यत्र
कर्मणः कर्तृत्वविवक्षायां दमिरकर्मको बोध्यः (वस्तुतस्तु अकर्मकत्वेऽस्य सूत्रस्य
मानत्वेऽपि सकर्मकत्वे मानं चिन्त्यम्) । 'आङ्यम्' इत्यस्य "आयामयते"
इत्यत्र, 'आङ्यस्' इत्यस्य "आयासयते" इत्यत्र, 'परिमुह' इत्यस्य "परिमो-
हयते" इत्यत्र, 'इचि' इत्यस्य "रोचयते" इत्यत्र च "अणावकर्मकाच्चित्तवःकर्तृ-
कात्" इति प्राप्तं परस्मैपदञ्च । एवं चलनार्थकं 'वृति' इत्यस्य "नर्तयते"
इत्यत्र "निगरणचलनार्थेभ्यश्च" इत्यनेन च प्राप्तं परस्मैपदञ्च भवति । तथा
'वद' इत्यस्य "वादयते" इत्यत्र, 'वस निवासे' इत्यस्य "वासयते" इत्यत्र च
"अणावकर्तृकादि"ति प्राप्तं परस्मैपदञ्चेति बोध्यम् ।

६—शृणुते—अकर्मक 'शीङ्' धातोर्भावे प्रत्यये सति "भावकर्मणोः" इति
तङ्प्रत्यये टेरत्वे "सार्वधातुके यक्" इति यकि "अयङ्यि विङिति" इति अयङ्गा-
देशे "अय्यते" इति ।

अघानिष्यत्—सकर्मकात् 'हन्' धातोर्लङि प्रथमपुरुषैकवचने "भाव-
कर्मणोः" इति तङि "लृङ्-लृङ्-लृ" इत्यङ्गागमे स्यप्रत्यये "स्य-सिच्-सीयुट्-
तासिष्ठु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्ज्ञानप्रदृशां वा चिष्वदिट् च" इत्यनेन चिष्वद्भावे
इङागमे च कृते चिष्वद्भावात् वृद्धौ "हो हन्तेऽङ्गिष्ठेषु" इति कृत्वे सस्य षत्वे
"अघानिष्यत्" इति । चिष्वद्भावाऽभावे तु—"अहनिष्यत्" इति । न च चिणि
वधादेशस्य दृष्टत्वात् तद्भावपक्षे वधादेशः कृतो नेति वाच्यम् ? 'अङ्गस्यै'त्यधि-
कारादाङ्गस्यैवातिदेशात् ।

कतमं भोजयसि—अत्र "किं वृत्ते लिप्तायाम्" इत्यनेन भविष्यति विभा-
षया लट् । पक्षे लुट्-लृटौ यथाप्राप्तमपि भवतः ।

न मर्षये हरिं निन्देत्—अत्र "अनवकल्लसमर्षयोरकिञ्चित्तेऽपि" इत्यनेन
लिङिति विशेषः ।

भावे लकारे इति—ननु कर्मणः कर्तृत्वविवक्षायां भावे लकारे पच्यते ओदनेन, भिद्यते काष्ठेन, इत्यत्र कर्मकर्तृस्तिष्ठाऽनभिहितत्वात् द्वितीया स्यात्, कर्मवत्त्वातिदेशादिति चेत् । भावे प्रत्यये च कर्तृलंकारेणानुपस्थितेः ।

गच्छति ग्राम इति—“कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः” इति सूत्रे ‘कर्मणे’-स्यस्याऽभावे ‘असिना छिनत्ति’ ‘स्थाल्यां पचति’ इत्यत्र करणाधिकरणयोर्यो व्यापारः स एव इदानीं ‘मसिश्छिनत्ति’ ‘स्थाली पचती’त्यादौ कर्तृस्थ इति तत्राऽपि कर्मवत्त्वं स्यात्, तन्माभूदित्येवमर्थं कर्मणेति पदम् । नन्वेवं तुल्यक्रियः कर्त्ता कर्मवद्भवति इत्युक्ते केनेत्याकाङ्क्षायामनेककारकोपस्थितावपि कर्मवदिति प्रत्यासत्या कर्मणेति लभ्यते एव इति चेत् ? तर्हि “गच्छति ग्रामः” इत्यादौ कर्तृ-स्थक्रियेभ्यो कर्मवत्त्वनिवृत्त्यर्थं तदिति स्यात् । नचैवमपि पचि-भिदिप्रभृतीनामेव गमिरुहिप्रभृतीनां सकर्मकत्वे फलस्य कर्मनिष्ठत्वे च तुल्ये कर्तृस्थभावका गम्यादय इति कथं ज्ञातव्या इति तु न शङ्क्यम् ? यत्र कर्मणि क्रियाकृतो विशेषो दृश्यते यथा पक्षेण तण्डुलेषु, यथा वा छिन्नेषु काष्ठेषु, तत्र कर्मस्था क्रिया नेतरत्र । नहि पक्षापकृतण्डुलेष्विव गतागतप्रामेषु आरूढानारूढद्विस्तिष्वित्यादौ वा क्रियाकृतं वैलक्षण्यं प्रत्यक्षमुपलभ्यते इति ।

७—प्रेङ्खणीयम्—अत्योत्तरं ४० वर्षे द्रष्टव्यम् ।

अवद्यं पापम्—गर्हितत्वादवाच्यमित्यर्थः । अत्र वेदर्नस्युपपदे “वदेः सुपि क्यप् च” इत्यनेन यत्क्यपोः प्राप्तयोः “अवद्य-पण्य-द्वयां गह्वं-पणितव्या-ऽनि-रोधेषु” इत्यनेन निपातनात् यत्प्रत्यये कृदन्तत्वात्सौ तस्याऽमादेशे च “अवद्यम्” इति । अवद्यं निपातनो गह्वार्यामेव । तेन “अनुद्यं गुरुनाम” इत्यत्र नामोपपदे “वदः सुपी”ति क्यपि “वचि स्वपी”ति सम्प्रसारणे “अनुद्यम्” इति सिद्धं भवति । न च गुरुनाम्नोऽप्रह्वत्वात् कथं वचनाऽनर्हत्वमिति वाच्यम् ? “आत्मनाम गुरोर्नाम नामातिरूपणस्य च । श्रेयस्कामो न गृह्णीयाज्ज्येष्ठापत्यकलत्रयोः” इति स्मृतेः जागरूकत्वात् ।

विपूयः—‘वि’ उपसर्गात् मौवादिक ‘पू’ धातोः “विपूय-विनीय-जित्या मुञ्ज-कल्क-द्विष्णु” इति सूत्रेण ‘मुञ्ज’ परे निपातनात् क्यपि कृदन्तत्वात् सौ कवे विसर्गे “विपूयो (मुञ्जः)” इति सिद्धम् ।

धाव्या—धीयतेऽनया समिदिति ‘धाव्या’ ऋक् । अत्र “पाठ्यसाक्षादय-

शेषत्वविक्षायां कर्मोपपदाभावात् अणभावे पचाद्यच् बोध्यमिति कौमुद्यां स्पष्टम् ।
“क्षेमङ्करी” इत्यत्र तु गौरादिवात् ङीष् बोध्यः ।

आशीः—“आङः शासु इच्छायाम्” अस्मात् “क्विप् च” इति क्विप् तस्य सर्वाऽपहारे “आशासः कावुपधाया इत्वं वाच्यम्” इति इत्वे कृदन्तत्वात् सौ तस्य हल्ङ्थादिलोपे सकारस्य रुत्वे “वोरुपधायाः” इति दीर्घे रेफस्य विसर्गे “आशीः” इति । “शास इदङ्ङलो” इत्यनेन इत्वन्तु न शङ्क्यं तत्र सूत्रे परस्मै-पदिनः एव शासेर्प्रदृशात् ।

अभिध्यानः—“विभाषाऽभ्यवपूर्वरय” इति विकल्पपक्षे इदं रूपम् । तथा हि—सम्प्रसारणाऽभावे अभिपूर्वकात् ङकारेत्संज्ञक “इयै” धातोः “कृक्तवत् निष्ठा” इत्यनेन निष्ठासंज्ञायां “निष्ठा” इत्यनेन कप्रत्यये “इयोऽस्पशे” इति निष्ठा-तकारस्य नकारे आत्वे कृदन्तत्वात् सौ तस्य नपुंसके अनादेशे पूर्वरूपे च “अभि-ध्यानम् (धृतम्)” इति । सम्प्रसारणपक्षे तु “अभिधीनम्” इति ।

संशितं व्रतम्—“सम्” उपसर्गात् “शो तनूकरणे” अस्मात् निष्ठायां कप्र-त्यये “शाच्छोरन्यतरस्याम्” इत्यस्य आभ्ये व्यवस्थितविभाषाभ्रयणात् व्रते विषये इत्यनेन नित्यमिदमेव कृदन्तत्वात् सौ तस्य नपुंसके अनादेशे पूर्वरूपे च “संशितं (व्रतम्)” इति ।

क्षिदुरम्—“क्षिद्” धातोः “विदि-मिदि-च्छिदेः कुरङ्” इत्यनेन कुरङ्प्र-त्यये किरवात् गुणाभावे कृदन्तत्वात् सौ तस्य नपुंसके अनादेशे “क्षिदुरम्” इति ।

प्राट्—पृच्छतीति ‘प्राट्’ । “किञ्चिद्विप्रच्छयायतस्तुकटमुजुश्रीणां दीर्घोऽस-म्प्रसारणश्च” इत्युणादिसूत्रेण निपातनात् सिद्धं भवति ।

प्रद्विट्—अत्र “सत्-स-द्विष-द्वह-दुह-युज-विद-मिद-च्छिद-जि-नी-राजामुपसर्गेऽपि क्विप्” इति क्विप् ।

क्षुब्धः—“क्षुब्धः-स्वात-भ्रान्त-लग्न-म्लिष्ट-विरिब्ध-फारट-वाढानि म-न्य-मनस्-तमः-सक्ता-ऽविस्पष्ट-स्वरानायास-भ्रशेषु” इत्यनेन निपातनात् सिद्धं भवति ।

संपर्का—“संपृचा-ऽनुरुधा-ऽऽकथमा-ऽऽकथस-परिसृ-संसृज्-परिदेव - संज्वर-परिक्षिप-परिरट-परिवद-परिदिह-परिमुह-दुष-द्विष-द्वह-दुह - युजा-ऽऽक्रीड-विविच-त्यज-रज-भज-अतिचारा-ऽपचरा-ऽऽमुषा-ऽभ्याहनश्च” इति सूत्रेण चिनुणप्रत्ययो भवति ।

२—‘‘सोऽयं...’’ इति इत्यै गोप्नो अतिथिः’’ ‘‘हाहागोप्नो सम्प्र-
शान्तिः’’ इति । ‘‘सोऽयं...’’ इति भवति ।

‘‘सोऽयं...’’ इति ‘‘सोऽयं...’’ इति ‘‘सोऽयं...’’ इति ‘‘सोऽयं...’’ इति ‘‘सोऽयं...’’ इति ।

निष्पद्य—‘‘निष्पद्य...’’ इति ‘‘निष्पद्य...’’ इति ‘‘निष्पद्य...’’ इति ‘‘निष्पद्य...’’ इति ‘‘निष्पद्य...’’ इति ।

सन्तिः—‘‘सन्तिः...’’ इति ‘‘सन्तिः...’’ इति ‘‘सन्तिः...’’ इति ‘‘सन्तिः...’’ इति ‘‘सन्तिः...’’ इति ।

रुक्तेष्वम्—‘‘रुक्तेष्वम्...’’ इति ‘‘रुक्तेष्वम्...’’ इति ‘‘रुक्तेष्वम्...’’ इति ‘‘रुक्तेष्वम्...’’ इति ‘‘रुक्तेष्वम्...’’ इति ।

भूविक्षेपं कथयति—‘‘भूविक्षेपं...’’ इति ‘‘भूविक्षेपं...’’ इति ‘‘भूविक्षेपं...’’ इति ‘‘भूविक्षेपं...’’ इति ‘‘भूविक्षेपं...’’ इति ।

क्त्वा-ल्यबिधाने इति—‘‘क्त्वा-ल्यबिधाने...’’ इति ‘‘क्त्वा-ल्यबिधाने...’’ इति ‘‘क्त्वा-ल्यबिधाने...’’ इति ‘‘क्त्वा-ल्यबिधाने...’’ इति ‘‘क्त्वा-ल्यबिधाने...’’ इति ।

णिजन्तादि-उत्तरकृदन्तान्तभागे प्रश्नाः ।

१६४३

१—अपीपवत् । भतिष्ठिपत् । जिघृक्षति । धोषति । बोभूयते ।
सशास्त्रमिमे साध्याः ।

२—बोभवीति । वर्धतीति । भशनायति । अप्सरायते । लोहिता-
यति । सशास्त्रमेतै प्रसाध्याः ।

३—ईषति । प्राणिषत् । दुद्युषति । जज्ञप्यते । आरति । मुण्ड-

यति माणवकम् । एषु सविग्रहं तत्तत् कार्यं प्रदर्शयन्तु ।

४—अपस्क्रियते । आहत । समारत । विनयति विपादिकाम् । दर्शयते भवः । परिमोहयते । स्वं यज्ञं यजति । संविद्रते । एघोदकस्योपस्कुरुते । क्रमन्तेऽमिन् शास्त्राणि । एषु केचन षड् प्रयोगाः पदव्यस्यापूर्वकं साधनीयाः ।

५—भूयत इत्यत्रैकवचनव्यवस्थामुपपाद्य, अरिता । अशमि । बोध्यते माणवकं धर्मः । गच्छति प्रामः । तपस्तप्यते तापसः । यच्च यत्र वा त्वमेवं कुर्याः । एतेषु षण्णां प्रयोगाणां साधुत्वं यथाशास्त्रं सूत्रार्थसङ्गतिपुरस्सरं प्रदर्शयताम् ।

६—चत्यम् । वध्यः । शिष्यः । भव्यः पादूपटः । आबूस्थः । कवचहरः । पूर्वसरः । शुनिन्धयः । दुर्गः । अन्नादः । अग्नेः । नितः कामः । उदकमुदर्ककूपात् । फुल्लः । एषु केचनाष्टौ यथाशास्त्रं साधनीयाः ।

७—वृत्तं छन्दः । वैकुण्ठमधिष्ठितः । अनूचानः । विविदवान् । शयाना भुञ्जते यवनाः । यायजूकः । जङ्घिः । सेक्त्रम् । द्रष्टुं याति । अपधनः । प्रह्वन्निः । स्मारं स्मारं नमति । गोष्पदप्रम् । निमूलकाषम् । ऊर्ध्वशोषम् । गेहानुप्रवेशमास्ते । एतेषु यथेच्छमष्टौ प्रयोगास्तुल्यन्ताम् । तत्र कस्मिन्नर्थं कः प्रत्ययः इत्यपि निरूपणीयम् ।

८—अथ कथं भार्या वधूरिति । प्रकृतो मितां ह्रस्व इति तु न विकल्पितः । अनयोरेकतरस्य व्याख्यानं सम्यक्क्रियताम् ।

प्रश्नोत्तराणि ।

१—अपीपवत्-‘पूङ्’ घातोः “हेतुमति च” इत्यनेन णिचि अनुबन्धलोपे पू इति स्थिते “द्विर्वचनेऽचि” इति निषेधात् वृद्धयभावे “सनाद्यन्ता घातवः” इत्यनेन प्यन्तस्य घातुसंज्ञायां लुङि तिपि इपावितौ “लुङ्-लङ्-लृङ्स्वङ्-दात्तः” इत्यनेन अडागमे “चिल लुङि” इति च्लौ “णि-अ-डु-सुभ्यः” इत्यनेन च्लेक्ष्वादेशे अनुबन्धलोपे “चङि” इत्यनेन द्वित्वे उत्तरखण्डस्य वृद्धयवादेशयोः कृतयोः ‘अपू पाव् इ अत्’ इति स्थिते “गोरनिटि” इत्यनेन णिलोपे “णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः” इत्यनेन उपधाह्रस्वे अभ्यासे अकाराभावेन “सन्ध्यतः”

इत्यस्मात्तस्या “ओः पुनश्चोऽपरे” इत्यनेन अभ्यास्याकारस्य इकारे सन्वद्भावा-
विशेषात् “ओषोः लघोः” इति दीर्घे “अरीवत्” इति जातम् ।

मादिष्ठिपत्—“छा णटि-निवृत्तौ” इत्यस्य धातवादेः षः सः” इति सत्त्वे “नि-
मित्तापाये नैमित्तिकलप्यपायः” इति परिभाषया द्रुत्वस्यापि निवृत्तौ स्था इत्यस्मा-
त्तलोः “दिदृप्सति च” इति णिचि अनुबन्धलोपे “अर्ति-ह्री-व्ली-री-कनूयी-
इत्यादयोः पुङ् ल्यौ” इत्यनेन पुकि अनुबन्धलोपे स्थापि इति श्यन्तस्य “सना-
यन्ता धातवः” इति धातुसंज्ञायां लुङि तिपि इपावितौ “लुङ्-लङ्” इत्याङगमे मध्ये
व्लौ तस्य “णि-श्रि-द्रु-लुभ्यः” इत्यनेन चङि “णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः” इति
ह्रस्वे “वेऽणिटि” इति णिलोपे “चङि” इत्यनेन द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां “सपूर्वाः
खयः” इति अभ्यासावयवसकारपकारयोलोपे “अभ्यासे चर्च” इति चत्वे
“सन्वत्लघुनि” इति सन्वद्भावे “सन्वतः” इति इत्वे षत्वे घृत्वे च कृते अति-
ष्ठप अत् इति स्थिते “तिष्ठतेरित्” इत्यनेन उपधाया इदादेशे “अतिष्ठिपत्” इति ।

जिघृक्षति—अस्योचरं ४१ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

धीप्सति—“दम्भ” धातुः उपदेशे “दम्भ” इति, तस्मात् “धातोः कर्मणः”
इत्यनेन सनि अनुबन्धलोपे सन्नन्तस्य धातुसंज्ञायां लटि तिपि शपि पूर्वरूपे “सनी-
वन्तर्धभ्रस्ज-दम्भु-श्रि-स्व-यूगुं-भर-ज्ञपि-सनाम्” इत्यनेन विभाषया सनो
भलादित्वाभावेन अकिटवान्नञोपाभावे “दम्भ इ स ति इति स्थिते “सन्वङोः”
इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां हलादिद्यौषे “सन्वतः” इति इत्वे इणः परस्य सस्य
षत्वे “दिदम्भिषति” इति । इङ्विकल्पपक्षे “दम्भ इच्च” इत्यनेन दम्भेरकारस्य
इत्वे दिम्भ स ति इति स्थिते हलप्रहणस्य जातिपरत्वेन “हलन्ताच्च” इति क्तिवे
“अनिदित” मिति उपदेशिनो नकारस्य लोपे द्वित्वे अभ्याससंज्ञायाम् “अत्र
लोपोऽभ्यासस्य” इति अभ्यासलोपे “अभ्यासे चर्चः” इति जश्त्वे मभावे
“खरि च” इति चत्वे “धिप्सति” इति । “दम्भ इच्च” इत्यनेन चकारादीस्वपक्षे
“धीप्सति” इत्यप्यव्यवहितपूर्ववद्बोध्यम् ।

“दिदम्भिषति” इत्यत्र “अत्र लोपः” इत्यभ्यासस्य लोपस्तु न भवति,
“सनि मीमे”ति “आपृङ्ग्यधामी”दिति “दम्भ इच्च”ति “मुचोऽकर्मकस्य
शुणो वे”ति पूर्वसूत्रचतुष्टयविहितकार्यं यत्रोक्तं तत्रैवास्य प्रवृत्तेरिति राधान्तात् ।

बोभूषते—पुनः पुनः अतिशयेन वा भवतीति विग्रहे “धातोरेकाचो
हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्” इत्यनेन यङि अनुबन्धलोपे “सन्वङोः” इति

द्वित्वे अभ्याससंज्ञायाम् “अभ्यासे चर्च” इत्यनेन जश्वे “गुणो यङ्लुकोः” इत्यनेन अभ्यासोकारस्य गुणे ‘बोभू’ इत्यस्य “सनाद्यन्ता घातवः” इत्यनेन घातुसंज्ञायां लटि छिदन्तत्वादात्मनेपदे तत्प्रत्यये एत्वे शपि पररूपे “बोभूयते” इति । “क्रियासमभिहारे द्वे” इत्यनेन पुनर्द्वित्वन्तु न, तस्य लोङ्विषयत्वादिति तत्र सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् ।

२—बोभवीति—‘भू’ घातोर्यङि “यङोऽचिच्च” इत्यनेन तस्य लुकि प्रत्य-
यलक्षण्येन “सन्त्यङोः” इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायाम् “अभ्यासे चर्च” इत्यनेन
जश्वे “गुणो यङ्लुकोः” इत्यनेन अभ्यासोकारस्य गुणे ‘बोभू’ इत्यस्याल्लटि
तिपि इरावितौ ‘बोभू ति’ इति स्थिते “शितपाशपे” ति निषेधात् “दिवादिभ्यः
श्नन्” , “रघादिभ्यः शनम्” इत्यादीनाप्राप्तावपि “कर्त्तरि शप्” इत्यस्य “शितः
पाशपे” ति निषेधाविषयत्वात् तेन शपि “चर्करीतद्धे”त्यदादौ याज्ञात् शपो लुकि
“यङो वा” इत्यनेन ईडागुप्ते । ऊकारस्य गुणे अवादेशे “बोभवीति । “भूभु-
वोस्तिङ्” इति गुणिवेषधस्तु यङ्लुकि भाषायां न “ बोभूत ते तिक्ते” इति
छन्दसि निपातनात् । अत एव यङ्लुभ्याशयानपि सिद्धः ।

ववृतीति—‘वृत्तु वर्तने’ अस्मात् यङि यङ्लुकि च कृते “सन्त्यङोः”
इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायाम् “उरत्” इत्यत्वे रपरत्वे हलादिशेषे च कृषे ‘ववृत्त’
इत्यस्य “सनाद्यन्ता घातवः” इत्यनेन घातुसंज्ञायां लटि तिपि अनुबन्धलोपे
“यङो वा” इत्यनेन ईटि व वृत् ई ति इति स्थिते “नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्व-
धातुके” इत्यनेन निषेधात् लघुपञ्चगुणाऽभावे “रग्निकौ च लुकि” इत्यनेन
अभ्यासस्य रुकागमे ‘ववृतीति’ इति सिद्धम् । एवञ्च रिकागमे—“वरिवृतीति”
रीकागमे—“वरीवृतीति” इत्यपि बोध्यम् ।

अशनायति—अशयते यत्तदशनम्=अन्नं, तद्भोक्तुमिच्छतीत्यर्थे “अश-
नाथो-इन्य-घनाया-बुभुक्षा-पिपासा-गर्द्धेभु” इत्यनेन ‘अशन’ शब्दात् क्यचि
“क्यचि चे”ति ईत्वाऽभावे च निपातने सति “अकृतसार्वधातुकयोर्दीर्घः”
इत्यनेन दीर्घे “अशनायति” इति सिद्धम् ।

अप्सरायते—अप्सरश्शब्दाद् “ओजसोऽप्सरसो निश्चमितरैषां विभा-
षया” इति वार्तिकवृत्तात् “कर्त्तुः क्यङ्सलोपश्च” इत्यनेन क्यङि सलोपे च
कृते “सनाद्यन्ता घातवः” इत्यनेन घातुसंज्ञायां लटि आत्मनेपदे तत्प्रत्यये
शपि पररूपे एत्वे दीर्घे “अप्सरायते” इति ।

लोहितायति—‘लोहित’ शब्दात् भवत्यर्थे “लोहितादिडाभ्यः क्यष्” इति नञोः अयमि अनुबन्धलोपे, नच ‘काम्यच्’ इव क्यषोऽपि ककारः उच्चारण-
मात्रायां भूयत एवेति वाच्यम् । क्यषः ककारस्य भाष्ये प्रत्याखयानात् । एवं च लोहितय’ इति स्थिते “सनाद्यन्ता धातवः” इत्यनेन धातुसंज्ञायां लटि “वा इयपः” इत्यनेन पररमैपदसंज्ञायां तिपि इपावितौ सार्वधातुकसंज्ञायां शपि पर लपे दीर्घे च कृते “लोहितायति” इति । आत्मनेपदे तु —“लोहितायते” इति भवति । अलोहितो लोहितो भवतीत्यर्थः ।

नच अभूत-तद्भावविषयत्वं कथं लब्धमिति चेच्छृणु-प्रकृतिसूत्रे “अच्चेः” इत्यनुबन्धभात् लभ्यते । नन्वैवमभूततद्भावविषयत्वं डाचोऽपि विशेषणं स्यादिति चेन्न, अव्यक्तानुकरणाद्डाचो विहितत्वेन तस्य अभूततद्भावविषयत्वे अनुकरण-
त्वस्य भङ्गापत्तेः । एवञ्च आदिशब्दप्राच्याणां श्यामादिशब्दानामपि न विशेषणम् आदिशब्दस्य भाष्ये प्रत्याखयानात् । तथा च वार्त्तिकम्—“लोहितडाभ्यः क्यष्-
वचनं, भृशादिष्वितराणि” आदिप्रहणमपनीय लोहितशब्दाद्डाजन्तेभ्यश्च क्यष्-
वचनं कर्तव्यम्, इतराणि=लोहितादिगणपठितानि, प्रातिपदिकानि भृशा-
दिष्वेव पठनीयानित्यर्थः । एवञ्च लोहितादिगणपठित-श्यामादिशब्देभ्यः क्यङि
नित्यमात्मनेपदमेवेति ज्ञेयमिति दिक् ।

३—ईप्सति-आप्तुमिच्छतीति विप्रदे ‘आप्’ धातोः “धातोः कर्मणः समा-
नकर्तृकादिच्छायां वा” इति सनि अनुबन्धलोपे “आप्ज्ञपृधामीत्” इत्यनेन ईप्ते
सन्नन्तस्य “सनाद्यन्ता धातवः” इत्यनेन धातुसंज्ञायां टलि तिपि अनुबन्धलोपे
“सन्त्यङोः” इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायाम् “अत्र लोपोऽभ्यासस्य” इत्यभ्यासस्य
लोपे सार्वधातुकसंज्ञायां शपि अनुबन्धलोपे पररूपे च ‘ईप्सति’ इति सिद्धम् ।

प्राणिणत्—‘प्र’ इत्युपसर्गात् प्राणनार्थक-‘अन्’ धातोर्णिपचि “सना-
द्यन्ता धातवः” इत्यनेन धातुसंज्ञायां लुङि तिपि इपावितौ “आडजादीनाम्”
इत्यादि “आटश्च” इति वृद्धौ ‘प्र आ नि त्’ इति स्थिते मध्ये क्लौ ‘णि-अ-
ड-लुभ्यः कर्तरि चङ्’ इत्यनेन चङि णत्वस्याऽसिद्धत्वात् “चङि” इत्यनेन अ-
जादेर्द्वितीयस्येति द्वितीयैकाचस्य ‘नि’ शब्दस्य द्वित्वे “योरनिटि” इत्यनेन आर्ध-
धातुके चङि परे णिलोपे सवर्णदीर्घे उत्तरखण्डे नकारस्याऽभ्यासनकारेण व्यवधा-
नात् णत्वेऽप्राप्ते “उभौ साभ्यासस्य” इत्यनेन द्वयोर्नकारयोर्णत्वे “प्राणिणत्”
इति सिद्धम् ।

न च “पूर्वत्राऽसिद्धोयमद्विर्वचने” इति निषेधात् द्वित्वे कर्तव्ये परदत्ता-
ऽसिद्धत्वविरहेण परत्वात् कृते णत्वे पश्चात् ‘णि’ शब्दस्य द्वित्वं कुतो नेति वाच्यम्
एतत् सूत्राऽऽरम्भसामर्थ्यात् तस्याऽनित्यत्वविज्ञानात् । अत एव “अणुनाव”
इत्यत्र णत्वात् पूर्वमेव ‘नु’ शब्दस्य द्वित्वे कृते अभ्यासोत्तरखण्डे णत्वाऽभावसिद्धि-
रिति दिक् ।

दूद्यषति—द्विवचनोः सङ्प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे “सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भु-
श्चित्दूद्युर्भ्रस्जपिसनाम्” इत्यनेन विकल्पेनेद्विविधानात् तदभावे “हल-
न्ताच्च” इति सनः क्त्वे “च्छ्वोः शृङनुनासिके च” इत्यनेन वकारस्य
ऊटि इकारस्य यणि च कृते “सन्त्यङोः” इत्यनेन द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे
प्रत्ययावयवस्य सनः सकारस्य षत्वे “भजभनगमां सनि” इति दीर्घे
धातुसंज्ञायां ऊटि तिपि शपि पररूपे “दूद्यषति” इति सिद्धयति । इदं पदे तु स-
लादित्वाभावात् सनः क्त्वाभावे ऊटोऽप्रवृत्तौ लघूपधगुणे “दिदेविषति” इति ।

जञ्जप्यते—गर्हितं जपतीति विग्रहे ‘जप्’ धातोः “धातोरेकाचो हलादेः
क्रियासमभिहारे यङ्” इति यङि “सनाद्यन्ता०” इति धातुत्वात् ऊटि,
विदन्तत्वात् आत्मनेपदे तत्प्रत्यये “सन्त्यङोः” इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां हला-
दिशेषे “जप-जभ-दङ्-दश-भञ्ज-पशां च” इत्यनेनाऽभ्यासस्य ङुकि अनु-
स्वारे परसवर्णे शपि पररूपे “जञ्जप्यते” इति ।

भारति—अस्योत्तरं ३८ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

मुण्डयति माणवकम्—माणवकं मुण्डं करोतीत्यर्थे “मुण्ड” शब्दात् “मु-
ण्ड-मिश्र-इलक्षण-लवण-व्रत-वस्त्र-हल-कल-कृततूस्तेभ्यो णिच्”
इत्यनेन णिचि अनुबन्धलोपे “सनाद्यन्ता०” इति णिजन्तस्य धातुसंज्ञायां ऊटि
तिपि शपि पररूपे “मुण्डयति” इति ।

नचाऽत्र “प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे” इत्येव सिद्धे प्रकृतिसूत्रे मुण्डादीनां ग्रहणं
किमर्थमिति वाच्यम् ? सामर्थ्यात् सापेक्षेभ्योऽपि मुण्डादिभ्यो णिजर्थे तस्याऽवश्य-
कत्वात् । अत एव माणवकं मुण्डं करोतीत्यर्थे मुण्डशब्दस्य सापेक्षत्वेऽपि णिच्
सिद्धयति । अन्यथा यदा प्रकरणादिना माणवकादिविशेषो ज्ञायते तदैव मुण्डयतीति
णिच् स्यान्न तु माणवकादिप्रयोगे । णिजन्तस्य सनाद्यन्तवृत्तित्वात्, सविशेषणानां
वृत्त्यभावाच्चेति भावः ।

४—अपस्मिन्—अस्योत्तरम् ४२ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

आहत— ” ४१ वर्षे ”

समुपसर्गात्—समुपसर्गात् श्लुविकरणक ‘ऋ’ धातोर्लुङि प्रथमपुरुषैकवचने काव्येणे आडागमाऽभावेन “मा समरत्” इत्युदाहरणप्रदर्शनानन्तरमिदं प्रस्तुतमुदाहरणं प्रदर्शितम् । तथाहि—

समुपसर्गात्—श्लुविकरणक ‘ऋ’ धातोर्लुङि “समो गम्यच्छ्रियाम्” इति सूत्रस्थ—“अति-शु-ह-शिभ्यश्चेति वक्तव्यम्” इति वार्तिकेन आत्मनेपदे तत्प्रत्यये मध्ये च्लौ तस्य “सति-शास्त्यतिभ्यश्च” इति सूत्रेण अङि “आडजादीनाम्” इत्यादि “आटश्च” इति वृद्धिं वाचित्वा पूर्वं “ऋदृशो-ड गुणः” इत्यनेन गुणे रपरत्वे पश्चात् वृद्धौ “समारत्” इति ।

भौवादिकस्थस्य ‘ऋ’ धातोस्तु—“समात्” इति भवति । तथा हि—समुपसर्गात् ‘ऋ’ इत्यस्मादातोर्लुङि “अति-शु-ह” इति वार्तिकेन आत्मनेपदे तत्प्रत्यये अजादित्वादाडागमे मध्ये च्लौ तस्य सिजादेशे ‘सम् आ ऋ सू त इति स्थिते “डश्च” इति क्त्वात् गुणाभावे “ह्रस्वादङ्गात्” इत्यनेन सिचो लुकि “आटश्च” इति वृद्धौ रपरत्वे “समात्” इति ।

नचात्रापि “सतिशास्त्यती”ति च्लेरङ् कुतो नेति वाच्यम् ? अत्र सूत्रे लुप्तवकरणेन सासिना साहचर्यात् “सत्यतीति जौहोत्यादिकमेव गृह्यते” इति पूर्वमेव कौमुद्यामुक्तत्वात् । केचित्त्र “समात्” इति वदन्ति । तद्व्याख्यानन्तु प्रकृतप्रश्नाद्याऽनुपयुक्त्वादभ्रद्धेयमिति दिक् ।

विनयति विपादिकाम्—‘णीम् प्राप्ते’ अस्मात् “स्वरितञितः” इत्येव आत्मनेपदे सिद्धे “कर्तृस्थे चाऽशरीरे कर्मणि” इति सूत्रं नियमयति—“कर्मकारके कर्तृस्थे सति शीघ्रधातोर्यदात्मनेपदं कर्तुं फले वित्त्वात्प्राप्तं, तच्छरीरावयवमिन्ने एव सति कर्तृकारके स्यात्” इति । नच सूत्रस्थशरीराग्रहणात् शरीरावयव इति कथमुच्यते इति चेत् सत्यम् ? शरीरतादात्म्यापक्षस्यैव कर्तृतया शरीरस्य कर्तृस्थत्वासम्भवेन सूत्रे शरीरशब्दात् शरीरावयवो लक्ष्यते । तेन प्रकृते विपादिकायाः शरीरावयवत्वात् आत्मनेपदाभावेन ‘वि’ उपसर्गात् ‘णी’ धातोर्लुङि तिपि “णो नः” इति नस्वे अपि गुणे अयादेशे “विनयति” इति सिद्धं भवतीति । “पादस्फोटो विपादिका” इत्यमरः ।

दर्शयते भवः इति—“योरणौ यत्कर्म णौ चेत् स कर्ताऽनाभ्याने”

इत्यस्योदाहरणमिदम् । तस्य सङ्गमस्तिवत्यम्—

पश्यति भवः इति द्वितीयकक्षायां या क्रियोच्यते सैव क्रिया दर्शयते भवः इति नतुर्थकक्षायामुच्यते । एवञ्च क्रियासाम्यात् प्रथमकक्षायां भवरूपकर्मणः कर्तृत्वाच्चात्मनेपदं सिद्धं भवति । एवं कर्तृत्वक्रियायामारोह्यते हस्तीत्यत्रापि अथवा पश्यन्ति भवमारोहन्ति हस्तिनमिति प्रथमकक्षायामेव कर्मणो हेतुना-रोपणमिच्छां दर्शयति भवः आरोहयति हस्तीति । ततश्च शिजर्थव्यापारस्य अध्यारोपितकर्तृव्यापारस्य च त्यागेन दर्शयते भव इति तृतीयकक्षायामेव तद्ध भवति । न च भवरूपकर्मणः कर्तृत्वाद् दर्शयति भवो भक्तानिति द्वितीयकक्षायां कर्तृत्वं तद्ध न स्यादिति वाच्यम् । अध्यारोपितकर्तृव्यापारेण साम्येऽपि शिजर्थव्यापारस्याविक्रयेन समानक्रियत्वाभावात् । तृतीयकक्षायाम्नु धातुपात्तव्यापारस्य शिजर्थव्यापारस्य च त्यागेन समानक्रियत्वात्तद्ध सिद्धः । न च तृतीयकक्षायामपि चा-ल्लुषज्ञानविषयकरणरूपव्यापारयुक्तायाः पश्यन्ति भवो भक्ता इति प्रथमकक्षायां क्रियाया अपेक्षया न्यूनता स्यादिति वाच्यम् एवमारेणाऽधिकोऽशस्यैव निस्सारितत्वात् ।

परिमोहयते—अस्योत्तरं ४१ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

स्वं यज्ञं यजति—अत्र स्वशब्देन फलस्याऽऽत्मगामित्वावगमात् “स्व-रितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले” इत्यनेन नित्यात्मनेपदं प्राप्तं “विभाषोप-पदेन प्रतीयमाने” इत्यनेन विभाषया भवति तेन विकल्पपक्षे “स्वं यज्ञं यजति” इति बोध्यम् । अत्र ‘स्वम्’ इत्यस्य स्वीयमित्यर्थः ।

सौवद्रते—अस्योत्तरं ३७ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

एधोदकस्योपस्कुरुते—अत्र “गन्धना-पुवक्षेपण-सेवन-साहसि-क्य-प्रतियत्न-प्रकथनोपयोगेषु कृजः” इत्यनेन प्रतियत्नेऽर्थे आत्मनेपदं भवति । प्रतियत्नो गुणाधानम् ।

प्रकृते “अवोदैधौद्मप्रश्रथहिमश्रथाः” इति सूत्रे निगमितोऽदन्त एध-शब्दो गृह्यते चेत्तदा एधाश्च उदकश्च एधोदकं तस्य एधोदकस्येति बाध्यम् । यदि सान्तो गृह्यते तदा एधांश्चि च दकं चेति विग्रहः दकशब्दोऽप्युदकवाची एव—“प्रोक्तं प्राज्ञेर्भुवनममृतं जीवनीयं दकं च” इति हलायुवकोशादिति दिक् ।

क्रमन्तेऽस्मिन् शास्त्राणि—अत्र “वृत्ति-सर्ग-तायनेषु क्रमः” इति सूत्रेण तायनेऽर्थे क्रमघातोरात्मनेपदं भवति । तायनं वृद्धिः । क्रमन्तेऽस्मिन् शास्त्राणि स्फीतानि भवन्तीत्यर्थः ।

५.—अभ्युदये—भावे प्रत्यये कर्तुंस्तिङ्वाच्यत्वाऽभावेन अनभिहितत्वात् अनभिहिते कर्तुंस्तिङ्वाच्यत्वात् भवति । एवञ्च—“त्वया मया अन्यैश्च भूयते” इति भवति । तस्य द्विवचनप्रकारस्य एकवचनमेव भवति, द्विवचनादिः कुतो नेति वाच्यम् ॥ तिङ्वाच्यया भावना क्रिया सा शब्दशक्तिस्वभावात् असत्स्वरूपा (लिङ्गसंख्यान्वयाऽयोग्या) ततश्च तस्यां तिङ्वाच्यभावनायां द्वित्वबहुत्वयोरप्रतीतिः ।

आश्रिता—अस्योत्तरं विषयसूच्या द्रष्टव्यम् ।

अशमि—शमधातोरुलुङि तिपि अडागमे च्लेखिचणि “चिण्तेपदः—” इति तशब्दस्य लोपे “अशमि” इति । “अत उपधायाः” इति वृद्धिस्तु न, “नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्याऽनाचमेः” इति निषेधात् ।

बोध्यते माणवकं धर्मः—बुध्यर्थकस्याऽपि प्रधाने गौणे वा कर्मणि स्वेच्छया लादयो भवन्ति । अत एव—बोध्यते माणवकं धर्मः—“बोध्यते माणवको धर्मम्” इति वा भवतीति ।

बीजश्चात्र मूलस्थ—द्विकर्मणां धातूनां कर्मप्रत्ययस्य व्यवस्थैव । तथाहि—

“गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नी-हृ-कृष्-वहाम् ।

बुद्धि-भक्षार्थयोः शब्दकर्मकाणां निजेच्छया ॥

प्रयोज्यकर्मण्यन्येषां ण्यन्तानां लादयो मताः ॥” इति ।

दुह्याच-प्रभृतीनां द्वादशधातूनां गौणे कर्मणि लादयो भवन्ति । गौर्दुह्यते पयः । गोपेनेति शेषः । अत्र गौरप्रधानकर्मत्वात् तस्मिन् कर्मणि लकारः । तिङ्गानभिहितत्वात् गोः प्रथमा । प्रधानकर्मत्वात् पयः इति द्वितीयान्तम् । नी-हृ-कृष्-वहाम् प्रधाने कर्मणि लादयो भवन्ति । अजा ग्रामं नीयते, ह्रीयते, कृष्यते, वह्यते । अत्र अजायां प्रधानकर्मणि लकारः । ग्रामस्याऽनभिहितत्वात् द्वितीया । बुध्य-र्थकस्य भक्षार्थकस्य शब्दकर्मणाञ्च प्रधाने वा गौणे वा कर्मणि स्वेच्छया लादयो भवन्ति । बोध्यते माणवको धर्मम् । बोध्यते माणवकं धर्मः इति वा । भोज्यते माणवकमोदनः । भोज्यते माणवकः ओदनमिति वा । वेदोऽध्याप्यते विधिं हरिणा, वेदमध्याप्यते विधिरिति वा । अन्येषां गत्यर्थादीनां प्रयोज्यकर्मणि लकारः । देवदत्तो ग्रामं गम्यते, अत्र प्रयोज्यकर्मणि देवदत्ते इति गमेर्यन्तात्कर्मणि लः ।

गच्छति ग्रामः—अस्योत्तरं ४२ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

तपस्तप्यते तापसः—अत्र “तपस्तपःकर्मकस्यैव” इति सूत्रेण कर्ता बर्भवद् भवति । तपिरत्र अर्जनार्थकः । तपस्तप्यते तापसः=प्राजापत्यचान्द्रायण-

सोत्तरा प्रश्नावली ।

णादिकृच्छ्राद्यात्मकं तपः सन्पादयतीत्यर्थः । मुख्यकर्तरि लकारः । सम्पादनस्य तापसात्मककर्तृत्वत्वात् पोक्तकर्तृत्वत्वाऽभावात् “कर्मवत्कर्मणे”त्यप्राप्तं कर्मवत्त्व-
भवेन सूत्रेणाऽत्र विधीयते । तेन यगात्मनेपदादीति लब्धम् ।

यच्च यत्र वा त्वमेवं कुर्याः—यच्चेति समुदाये यत्रशब्दे च प्रयुज्यमाने अनवकल्पस्य मर्षयोर्लिङ् स्यादित्यर्थक—“यच्चयत्रयोः” इति सूत्रेण अत्र लट्-
मन्वाद्य लिङ् भवति । अत्रोदाहरणे यच्चेति यत्रेति च अनवकल्पस्य मर्षयोक्तौ ।
एवमेवं कुर्याः इत्येतन्न श्रद्धे न मर्षयामि वेत्यन्वयो बोध्यः ।

६—चत्यम्—इदित्संज्ञक-चतुर्धातोः “तकि-शसि-चति-यति-जनि-
भ्यो यद्वाच्यः” इति वार्तिकेन यत्प्रत्यये कृदन्तत्वात् सौ तस्य अमादेशे पूर्वरूपे
च “चत्यम्” इति ।

वध्यः—‘हन्’ धातोः “हनो वा तद्वधश्च वक्तव्यः” इति वार्तिकेन
यत्प्रत्यये हनो वधादेशे च कृति कृदन्तत्वात् सौ रुत्वे विसर्गे “वध्यः” इति ।
यद्भावपक्षे तु—“अट्ठहलोऽयत्” इति एयत्प्रत्यये “हनस्तोऽचिण्णलोः” इति
नकारस्य तकारे “हो हन्तेः” इति कुत्वे उपधावृद्धौ कृदन्तत्वात् सौ रुत्वे विसर्गे
धात्यः इति भवति । वधादेशस्तु न, यत्सन्नियोगशिष्टत्वेन विहितत्वात् ।

शिष्यः—अस्योत्तरं ३८ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

भव्यः—भवतीति भव्यः । भूधातोः “तयोरेवे”ति नियमात् “अबो यत्”
इत्यस्याऽप्राप्त्या “भव्यगेयप्रवचनीयोपास्थानीयजन्म्याल्लभ्यापात्या वा”
इत्यनेन निपातनात् “भव्यः” इति भवति ।

पाटूपटः—पाटेणौ पाटि तस्मात् “नन्दि-ग्रहि-पचादिभ्यो ल्युणि-
स्थचः” इत्यनेन अचि तस्मिन् परे “पाटेणिलुक चोक्च दीर्घश्चाभ्यासस्य”
इति वार्तिकेन णेलुकि द्वित्वे आभ्यासस्य ऊगागमे अभ्यासाकारस्य ह्रस्वे तस्य
दीर्घे च कृते कृदन्तत्वात् सौ रुत्वे विसर्गे “पाटूपटः” इति जातम् ।

न च हलादिशेषेण टकारस्य निवृत्तिः कुतो नेति वाच्यम् ? तथा सति आहुणे
कृते “पोपटः” इति रूपस्य उग,गमे कृतेऽपि सिद्धे ऊगागमे दीर्घोच्चारणस्य
वैयर्थ्यं स्यात् ।

आखूथः—“सुपि स्थः” इत्यत्र सुपि उपपदे आदन्तात् कः स्यादित्य-
र्थक—“सुपि” इत्येको योगः । सुपि तिष्ठितः कः स्यादित्यर्थक “स्थ” इत्यपरो योगः
एवं च कर्तरि “सुपि” इति पूर्वयोगेनैव सिद्धे “स्थ” इति द्वितीययोगसामर्थ्यात्

अपि तिष्ठतेः भावे एव कः स्यादिति विज्ञायते । ततश्च आख्यानमुत्थानमाखूथः इत्यत्र सुसन्तोषपदात् स्था घातोः द्वितीययोगेन कप्रत्यये “आतो लोपः” इत्यालोपे “उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य” इत्यनेन उदः परस्य सस्य थकारे उदो दस्य नत्वे कृदन्तत्वात् सौ रुत्वे विसर्गे “आखूथः” इति सिद्धम् ।

कवचहरः—“वयसि च” इति सूत्रेण ‘ह’ घातोः अचप्रत्यये गुणे कृदन्तत्वात् सौ रुत्वे विसर्गे “कवचहरः” इति । ननु “हरतेरनुद्यमने” इत्यनेनैव अच् सिद्धे किमर्थमिदमिति चेन्न, उद्यमानार्थं तस्याऽऽवश्यकत्वात् ।

पूर्वसरः—अस्योत्तरं ३६ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

शुनिन्धयः—शुनीं धयतीति शुनिन्धयः । “वात-शुनी-तिल-शर्द्धेष्वजघेट-तुद-जहांतिभ्यः खश उपसंख्यानाम्” इति वार्तिकेन घेट्घातोः खश्प्रत्यये “खित्यनव्ययस्य” इति खिदन्ते परे पूर्वपदस्य ह्रस्वे “अरु-द्विषद-जन्तस्य मुम्” इति मुमि कृदन्तत्वात् सौ रुत्वे विसर्गे “शुनिन्धयः” इति ।

दुर्गः—दुःखेन गच्छतीत्यत्र दुर्गः “सुदुरोरधिकरणे” इत्यनेन दुरपपदे गम्घातोर्द्वेप्रत्यये अनुबन्धलोपे कृदन्तत्वात् सौ रुत्वे विसर्गे “दुर्गः” इति सिद्धम् ।

अन्नादः—अन्नमत्यत्र “अन्नादः” । कर्मण्यण् भवति । “अदोऽन्ने” इति सूत्रस्य प्रत्युदाहरणमेतत् । तत्र हि अन्नञ्जे इत्यस्याभावे अत्रापि विट्स्यादिति भावः ।

अग्नेभ्रूः—अग्ने भ्रमतीत्यत्र “अग्ने भ्रूः” । “ऊङ् च गमादीनामुपसंख्यानम्” इति वार्तिकेन अमेरकारस्य ऊभावे चकारादनेनैव अन्त्यस्य मस्य लोपे “तत्पुरुषे कृति बहुलम्” इत्यनेन सप्तम्या अलुकि कृदन्तत्वात् सौ रुत्वे विसर्गे “अग्नेभ्रूः” इति जातम् ।

क्षितः कामः—‘क्षि क्षये’ इत्यस्मादन्तर्भावित्यर्थात् कर्मणि निष्ठायां कप्रत्यये कृदन्तत्वात् सौ रुत्वे विसर्गे “क्षितः” इति । ण्यदर्शो भावकर्मणी ततोऽन्यत्र निष्ठायां “निष्ठायामण्यदर्धे” इत्यनेन क्षियो दीर्घविधानादत्र दीर्घो न । अत एव “क्षियो दीर्घात्” इत्यनेन नत्वञ्च न भवति, निष्ठातस्य दीर्घात् परत्वाऽभावात् ।

उदक्तमुदकं कृपात्—“अञ्चोऽनपादाने” इत्यस्य प्रत्युदाहरणमेतत् । अत्राऽऽपादानसमिध्याहारसत्त्वात् नत्वं न । ‘अनपादाने’ इत्यनुक्तौ त्वत्रापि नत्वं दुर्वारं स्यादिति भावः ।

फुल्लः—‘विफला विशरणे’ अस्मात् निष्ठायां कप्रत्यये “अनुपसर्गाः फुल्ल-क्षीब-कृशोल्काद्याः” इत्यनेन निपातनात् निष्ठातस्य लत्वे, “आदितश्च”

इत्यनेन इङ्निषेधे सति “ति च” इत्यनेन उत्वे कृदन्तत्वात् सौ इत्वे विसर्गे
“फुल्लः” इति सिद्धम् ।

नच “ति च” इत्यनेन “एकानुबन्धक” परिभाषया ‘फल निष्पत्तौ’ इत्यस्यैव
उत्वं स्यादिति वाच्यम् ? प्रस्तुतपरिभाषाया असार्वत्रिकत्वेन प्रकृतसूत्रे उभयोर्ग्रह-
णस्य व्याख्यातत्वात् ।

७—वृत्तिं छन्दः—पञ्चन्तात् कृतधातोः कर्मणि क्तप्रत्यये सति “शोरष्ययने
वृत्तः” इति सूत्रेण अधीयमानेनै निपातनात् क्तस्यैवभावे णेरुक्कि कृदन्तत्वात्
सौ तस्य अमादेशे पूर्वरूपे च “वृत्तं छन्दः” इति । णिलोपे तु प्रत्ययलङ्घने लघु-
पधगुणः स्यादिति ध्येयम् ।

वैकुण्ठमधिष्ठितः—‘अवि’ उपसर्गात् स्थाधातोः “गत्यर्थाऽकर्मक-
श्लिष-शीङ्-स्था-ऽस-वस-जन-बह-जीवतिभ्यश्च” इति सूत्रेण कर्तरि क्तप्रत्यये
“यति-स्यति” इति इत्वे ष्टप्त्वे कृदन्तत्वात् सौ इत्वे विसर्गे “वैकुण्ठमधि-
ष्ठितः” इति । वैकुण्ठे स्थितवानित्यर्थः ।

अनूचानः—अनुपूर्वात् वच्धातोः “उपेयिवाननाश्वाननूचानाश्च” इति सूत्रेण
निपातनात् कर्तरि कानच्प्रत्यये अनुबन्धलोपे कानचि यजादित्वात् वकारस्य
संप्रसारणे पूर्वरूपे सवर्णदीर्घे कृदन्तत्वात् सौ इत्वे विसर्गे “अनूचानः” इति ।
वेदस्यानुवचनं कृतवानित्यर्थः ।

विविदिवान्—विद् धातोलिटि तत्स्थाने छन्दसि भूते लिटिः कसुश्चादेशः
इत्यर्थक—“कसुश्च” इत्यनेन कसुप्रत्यये अनुबन्धलोपे द्वित्वादिकार्ये वि विद् वस्
इति स्थिते “विभाषा गम-हन-विद्-विशाम्” इत्यनेन विभाषया इष्टि “उगिद-
चामि”ति नुमि “सान्तमहतः” इति दीर्घे संयोगान्तलोपे कृदन्तत्वात् सौ
तस्य लोपे “विविदिवान्” इति सिद्धम् । इडभावपक्षे “विविद्वान्” इति
भवति ।

शयाना भुञ्जते यवनाः—अत्र शयनं भुञ्ज्यर्थपरिचायकं तस्मिन् अर्थे
शीङ्धातोलिटि तत्स्थाने “लक्षणहेत्वोः क्रियायाः” इति सूत्रेण शानचि अनु-
बन्धलोपे गुणे अयादेशे प्रथमाबहुवचने कृदन्तत्वाज्जसि अनुबन्धलोपे सकारस्य
इत्वे यत्वे यलोपे “शयना भुञ्जते यवनाः” इति । अत्र भोजनकालीनं शयनं
भोक्तुर्यवनत्वसूचकम् ।

यायजूकः—यङन्तात् यजधातोः “यज-जप-दशा यङ्” इति सूत्रेण

ऊङ्गादिभ्यो य-यञ् य ऊक् इति स्थिते “यस्य हलः” इति यलोपे “यलो-लोपः” इत्यलोपे “दीर्घोऽकितः” इत्यनेन अभ्यासस्य दीर्घे कृदन्तत्वात् सौ इति विसर्गे “यायजूकः” इति सिद्धम् ।

जञिः—जन् धातोः “आट्-गम-हन-जनः कि-किनौ लिट् च” इति सूत्रेण किप्रत्यये, किन् प्रत्यये वा कृते लिङ्बद्भावे च विहिते द्वित्वादिकार्ये “जञिः” इति । कि-किनोस्तु स्वरे विशेषः ।

सेकत्रम्—सिच्धातोः करणेऽर्थे “दाम्नी-शस-यु-युज-स्तु-तुद-सि-सिच-मिह-पत-दश-नहः करणे” इति सूत्रेण ष्टन् प्रत्यये अनुबन्धलोपे “ति-तु-न-त-थ-सि-सु-शर-क-सेषु च” इति सूत्रेण इणिवेषे ण्युक्त्वे कृदन्तत्वात् सौ तस्य अमादेशे पूर्वरूपे “सेकत्रम्” इति ।

द्रष्टुं याति—अस्योत्तरं “कृष्णं द्रष्टुं याति” इति साधनावसरे ४१ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

अपघनः—अपहन्यनेनेति विग्रहे अपपूर्वात् हन्धातो “अपघानोऽज्ञम्” इति सूत्रेण अप्रत्यये हस्य घत्वे “अपघनः” इति निपातनात् सिद्धम् ।

प्रहृन्ति—प्रपूर्वात् हृद्धातोः “स्त्रियां किन्” इत्यनेन किन् प्रत्यये ‘श्रु-त्वादिस्यः क्तिञिष्ठावद्वाच्यः’ इति वार्तिकेन निष्ठावद्भावे ‘रदाभ्याम्’ इत्यनेन सकारस्य नत्वे ‘ह्रादो निष्ठायाम्’ इत्यत्र ‘हृद्’ इति योगविभागेन अनिष्ठायामपि क्वचिद् ह्रस्वविधानात् किञि प्रत्यये परे ह्रस्वे कृदन्तत्वाद् सौ क्त्वादिकार्ये ‘प्रहृ-न्तिः’ इति । भाष्ये तु एतदनभिधानात् ‘प्रहृत्तिः’ इति केचित् ।

स्मारं स्मारं नमति—पौनः पुन्ये द्योत्ये ‘समानकर्तृकयोः पूर्वकाले’ इत्यर्थे स्मृधातोः ‘आभीक्ष्ये णामुल् च’ इति सूत्रेण णामुल् प्रत्यये सति ‘नित्यवीक्षयोः’ इत्यनेन द्वित्वे वृद्ध्यादिकार्ये ‘स्मारं स्मारं नमति’ इति । क्त्वाप्रत्यये तु ‘स्मृत्वा स्मृत्वा’ इति भवति ।

गोष्पप्रदम्—अस्योत्तरं ४१ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

निमूलकाषम्—निमूले कर्मण्युपपदे ‘निमूल-समूलयोः कषः’ इत्यनेन कर्षणमुलि वृद्ध्यादिकार्ये ‘निमूलकाषम्’ इति । नियतं भूतमस्य निमूलम् । निमूलकषणाभिर्घ्न कषणमिति बोधः ।

ऊर्ध्वशोषम्—ऊर्ध्वे कर्तरि उपपदे शुषेः ‘ऊर्ध्वे शुषि-पुरोः’ इत्यनेन णामुलि शुषादिकार्ये ‘ऊर्ध्वशोषम्’ ‘शुष्यति’ इति शेषः । वृक्षादिकूर्ध्व एव तिष्ठन् शुष्यतीत्यर्थः ।

गेहानुप्रवेमास्ते—अस्योत्तरं ४० वर्षे द्रष्टव्यम् ।

८—अथ कथं भार्या वधूरिति—ननु ‘भृजोऽसंज्ञायाम्’ इति सूत्रे भार्या क्षत्रिया इति पुँल्लिङ्गे संज्ञायां क्यपोऽभावं कुर्वत्प्रचरितार्थमिति स्त्रीलिङ्गे संज्ञायां न प्रवर्तिष्यते इति भार्या वधूरित्यत्र ‘संज्ञायां समजनिषत्’ इत्यादिना क्यपा भाव्यमिति चेत्, न । ‘एकानुबन्धकग्रहणे न द्वयनुबन्धकस्य’ इति परिभाषया ‘डुभृज्धारणपोषणयोः’ इत्यस्मात् कयादिगठितदीर्घान्तात् भृ भरणे इत्यस्मात् वा ण्यन्तप्रत्ययस्य सिद्धत्वात् । ‘संज्ञायां समजनि’ इत्यादि सूत्रे ह्रस्वान्तभृज्धातौः पाठेन दीर्घान्तभृज्धातुविषये तत्सूत्राऽप्रवृत्तिः । डुभृज्धातौ अनुबन्धद्वयं वर्तते भृज्धातौ चैकानुबन्धो वर्तते, इति डुभृज्धातुविषयेऽपि तत्सूत्राऽप्रवृत्तिरिति दिक् ।

प्रकृतो मितं ह्रस्व एव तु न विकल्पः—ननु “चिण्मुलोः” इति सूत्रे दीर्घग्रहणं व्यर्थम्, “चिण्मुलोरन्यतरस्याम्” इत्येतावतैव “मितं ह्रस्वः” इति पूर्वसूत्रादनुवृत्तस्य ह्रस्वस्यैव विकल्पे दीर्घविकल्पाऽसिद्धेरिति चेत् न । शमधातो-
र्ण्यन्ताणौ पूर्वं जेळोपे लुटि तास्त्रि ण्यन्तस्याऽन्तादिवाचिण्वदिटं तस्याऽऽभीयत्वे-
नाऽसिद्धतया अनिटीति निषेधाभावाणिलोपे दीर्घविकल्पे सति शमिता—शमि-
तेति रूपद्वयमिष्यते, ह्रस्वविकल्पविधाने तु ह्रस्वविकल्पो न स्यात्, प्रथमणिलोपस्य
“अचः परस्मिन्” इति स्थानिवत्त्वेन व्यवहिततया चिण्परकण्णिपरकत्वाभा-
वात् । दीर्घविकल्पविधौ तु प्रथमस्य णिचो लोपो न स्थानिवत् दीर्घविधौ स्थानि-
वत्त्वनिषेधात् । भाष्यकारस्तु—“न पदान्त” इति सूत्रे “पूर्वत्रासिद्धं न स्थानिवत्”
इत्येव सिद्धत्वात् तत्र द्विवचनसवर्णानुस्वारदीर्घजश्चरविधौ प्रत्याख्यातवान् ।
नच ण्यन्ताणौ “चिण्मुलोः” इति दीर्घे कर्तव्ये प्रथमणिलोपस्य स्थानिवत्त्वं दुर्वा-
रम्, “चिण्मुलोः” इति दीर्घस्य पूर्वत्रासिद्धीयत्वाभावात् । ततश्च प्रथमणिचा
व्यवहितत्वात् दीर्घानापत्तिः । एवञ्च तत्र दीर्घे कर्तव्ये स्थानिवत्त्वनिवारणाय दीर्घ-
ग्रहणस्यावश्यकत्वात् कथं दीर्घग्रहणस्य प्रत्याख्यानमिति चेत्, न । “चिण्मुलोः”
इति दीर्घविधौ णाविति णित्वजातिप्रधानो निर्देशः । चिण्मुलूपरकण्णिवज्जातौ
परत इति यावत् । णित्वजातिश्च णिद्वयेऽस्तीति प्रथमणेः स्थानिवत्त्वेऽपि दीर्घस्य
निर्वाधत्वात् । एवञ्च ह्रस्वदीर्घयोर्विशेषाभावात् ह्रस्वविकल्प एव कियतां मास्तु
दीर्घग्रहणमिति भाष्यकाराशयः ।

मिलन्तादि-उत्तरकृदन्तान्तभागे प्रश्नाः ।

१६४४

- १—प्रथमकासत् । तितंसति । परीपृच्छयते । अतातः । सपतीयते ।
 एतान् संसाध्य विस्मापयन्निति पकारघाटितः प्रयोगः समर्थनीयः ।
 २—अपप्रथत् । असोषमत् । जापयति । जटाभिर्लोपयते । सोसू-
 चिता । अतितिरायत । अरारिता । शाशय्यते । एषु षट् प्रयोगान्
 संसाध्य स्तौतिशयोरेवेति सूत्रे एवकारस्य प्रयोजनं प्रतिपाद्यताम् ।
 ३—उपसर्गसमानाकारं पूर्वपदं धातुसंज्ञाप्रयोजके इत्यादिफक्प्रकार्ये
 किं मानं, किञ्च तत् फलं कथञ्च ओढायित्वा इत्यत्र न पृथक्करण-
 मित्येतत् सकलं विशदं व्याख्यायताम् ।

मथवा—

एतुमिच्छति । उदकमिच्छति । भाण्डानि समाचिनोति । त्वामा-
 चष्टे । इति विग्रहे सिद्धरूपाणि सप्रमाणं प्रदर्श्य सर्वप्रतिपदिकै-
 भ्यः इत्येव सिद्धे आचारे अवगल्मेति वार्तिकं किमर्थमारब्धं
 वार्तिककृतेति प्रतिपाद्यताम् ।

- ४—उररयति । बोभूयिषति । धनुषि शिञ्जते । सुस्मृषते । प्रावयति ।
 अगीर्ढ्वम् । दासीष्ट । अवाकीर्ष्ट । उदपुपुच्छत । भवान् यज-
 ताम् । एषु साधनप्रणाली प्रकटनीया ।

- ५—“गेरणौ यत्कर्मणौ चेत्स कर्ताऽनाध्वाने” इति सूत्रं व्याख्याय
 कर्तृस्थभावक-कर्तृस्थक्रिययोरुदाहरणं च प्रदर्श्य तत्स्वरूपं प्रति-
 पाद्यताम् ।

- ६—वाप्यम् । पाटूपटः । बिहङ्गः । जितवरः । सूतम् । शुश्रुवान् ।
 वतिष्णुः । दन्दशुकः । यायावरः । इमे सविग्रहं साधु साधनीयाः ।

- ७—वष्टि भोक्तुम् । नीकाशः । अभिनिष्टानः । प्रक्षणः । द्रघतः ।
 ग्रीणिः । श्रद्धा । आढ्येन सुभूयते । पाणिनोपकर्षम् । तिर्यक्कारं
 गतः । एषु सुसूत्रनिर्देशं विशेषकार्यं प्रदर्शनीयम् ।

- ८—नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाच्चमेः, क्रियासमभिहारे लोट् लोटो
 स्विौ वा च तच्चमोः, तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोः, पारिक्लिश्य-
 माने च सोदाहरणनिर्देशमेतेषामर्था लेख्याः ।

६—सन्नन्तात्-यङन्ताद्वा गमधातोः कर्मणि प्रत्यये लटि प्रथमद्वय-
षैकवचने कीदृग् रूपमिति विविच्य विलिख्यताम् ।

प्रश्नोत्तराणि ।

१—भवचकासत्—अस्योत्तरं ४२ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

तितंसति—तन्धातोः षनि धातुसंज्ञायां लटि तिपि इपावितौ 'सन्त्यङोः'
इत्यनेन द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे 'सन्त्यतः' इत्यनेन द्वित्वे 'तनिपतिदरिद्रा-
तिभ्यः सन्तो वा इद्वाच्यः' इति वार्तिकेन इटि प्रत्ययावयवत्वात् सकारस्य षत्वे
सार्वधातुकसंज्ञायां अपि पूर्वरूपे 'तितनिषति' इति । इडभावपक्षे—'तनोतेवि-
भाषा' इत्यनेन उपधाया दीर्घे 'तितंसति' इति दीर्घाभावे 'तितंसति' इति भवति ।

परीपृच्छयते—प्रच्छधातोर्यङि 'सनाद्यन्ता' इत्यनेन धातुसंज्ञायां लटि
आत्मनेपदे तप्रत्यये एत्वे 'प्रहिज्ये' ति रेफस्य सम्प्रसारणे ऋकारे पूर्वरूपे 'सन्त्यङोः'
इत्यनेन द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां उरदत्वे रपरत्वे हलादिशेषे प पृच्छ्य ति इति
स्थिते अपि पूर्वरूपे 'रीगृदुपधस्य च' इत्यनेन रीगागमे 'परीपृच्छयते' इति ।

ननु धातोश्चकारोपधत्वेन ऋदुपधत्वाभावात् 'रीगृदुपधस्य च' इत्यनेन कथं
रीगिति चेत् ? न, रीदुपधस्येत्यत्र ऋदुपधस्येत्यपनीय 'ऋत्वत्' इति वक्तव्यम् ।
इत्यभिप्रायक—'रीगृत्वत् इति वक्तव्यम्' इति वार्तिकस्य जागरूकत्वात् ।

अतातः—अस्योत्तरं ४० वर्षे द्रष्टव्यम् ।

सपतीयते—अस्योत्तरं ४१ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

विस्मापयन्—अस्योत्तरं ४२ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

२—अपप्रथत्—'प्रथ प्रख्याने' अस्मात् स्वार्थे णिचि 'सनाद्यन्ता' इति
धातुत्वात् लुङि तिपि इपावितौ अडागमे 'च्छि लुङि' इति च्लौ 'णि-ञि-ङु-लुभ्यः
कर्तरि चङ्' इत्यनेन च्लेश्चि 'चङि' इत्यनेन द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे
'सन्त्यतः' इतीत्वे प्राप्ते तं प्रवाच्य 'अत्-स्मृ दृ-त्वर-प्रथ-अद-स्तृ-स्पशाम्'
इत्यनेन अभ्यासस्याऽऽत्वे 'णेरनिटि' इत्यनेन णिलोपे 'अपप्रथत्' इति सिद्धम् ।

असीषमत्—'साम सान्त्वने' इति कथादेः प्राक् चुरादौ पठितस्य रूपम् ।
तद्धि—'साम्' धातोर्णिचि धातुसंज्ञायां लुङि तिपि इपावितौ अडागमे मध्ये च्लौ
'णि-ञि-ङु-लुभ्यः कर्तरि चङ्' इति च्लेश्चि द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां 'ह्रस्वाः'
इत्यभ्यासस्याऽकारस्य ह्रस्वे हलादिशेषे 'सन्त्यतः' इति इत्वे 'दीर्घो लघोः' इति
दीर्घे 'णेरनिटि' इति णिलोपे षत्वे 'असीषमत्' इति । उपदेशे 'षाम्' इति धातुः ।

यद्यपि 'साम आत्मवर्धने' इत्येव कथादेः प्राक् चुरादेशे पठितं न तु 'लाप आत्मवर्धने' इति, तथापि तान्त्रिकस्य सामप्रयोगादनन्यत्वात्तथोक्तिरिति कौमद्याशयः ।

जापशक्तिः—'जि जये' अस्मापि च वृद्धौ 'कीङ्जीनां यौ' इत्यनेन आत्वे पुकि 'जापि' इत्यस्य 'सनाद्यन्ता धातवः' इत्यनेन धातुसंज्ञायां लटि तिपि शपि गुणे अयादेशे पूर्वरूपे 'जापयति' इति सिद्धम् ।

जटाभिर्लोपयते—लोधातो 'हेतुमति चे'ति भिचि 'प्रज्ञम्भनाऽभिभव-पूजासु लियो नित्यमात्मवशिति वाच्यम्' इति वार्तिकेन एजिष्ये नित्यात्वे पुकि लापी-त्यस्य धातुसंज्ञायां लटि 'लियः सम्माननशालिनीकरणयोश्च' इत्यनेन आत्मनेपदे कप्रत्यये प्रदे शपि गुणे अयादेशे पररूपे च 'लापयते' इति । 'जटाभिर्लोपयते' इत्यस्य पूजामधिगच्छतोऽर्थः ।

सोसूचिता—'सूच पैशन्त्ये' इति चुरादिगणपठिताददन्तात् 'सूच' धातोः स्वार्थे णिचि अलोपे 'सूचि' इति, तस्मात् 'धातोरेकावो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्' इत्यनेन अनेकाच्चात् यङोऽप्राप्तया 'सूचि-सूत्रि-मूत्रयव्यर्थशूखोतिभ्यो यङ्वाच्यः' इत्यनेन यङि णिलोपे 'सून्यङोः' इति द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां हलादि-शेषे 'गुणो यङ्लुकोः' इत्यनेन अभ्यासोकारस्य गुणे यङन्तस्य 'सनद्यन्ताः' इति धातुसंज्ञायां लटि 'स्यतासी लृलुटोः' इत्यनेन तासिप्रत्यये 'आर्द्धधातुकस्येड्व-लादेः' इत्यनेन इटि 'लुटः प्रथमस्ये'ति डादेशे ढिलोपे सोसूच य इ ता इति स्थिते 'यस्य हलः' इत्यनेन यकारस्य लोपे 'अतो लोपः' इत्यनेन परिशिष्टस्य यकारोत्तराकारस्य लोपे 'सोसूचिता' इति । उत्तरखण्डस्य षत्वन्तु न, धातोरनेका-चत्वेनाऽशेषदेशत्वादादेशसकाराऽभावात् ।

अतितिरायत्—तिर्यङ्माचष्टे इत्यर्थे णिचि इष्टवद्भावेन ढिलोपे तस्य बहिरङ्गत्वेनाऽसिद्धत्वात् तिरसस्तिर्यादेशे वृद्धौ आशि 'तिरायि' इत्यस्य धातुसंज्ञायां लुङि तिपि अडागमे मध्ये ञ्लौ चङि द्वित्वादिकार्ये णिलोपे 'अतितिरायत्' इति ।

नचात्र ढिलोपेन अश्वधातुत्वामावात् कथं तिर्यादेशः इति वाच्यम् ? 'असि-ङ् बहिरङ्गमन्तरङ्गे' इति परिभाषया तिर्यादेशे कर्तव्ये ढिलोपस्याऽसिद्धत्वेन अश्व-धातुत्वस्त्वात् । न च तिर्यादेशे कृते पुनर्ढिलोपः स्यादिति वाच्यम् ? यथा अपा-चितरामित्यत्र 'असिद्धवद्भावात्' इति सूत्रेण प्रथमतोलोपस्याऽसिद्धत्वेन तरब्घट-कृतकारस्य पुनः 'विणो लुक्' इति सूत्रेण लुक् न भवति, तथाऽप्रापि प्रथमढिलो-पस्यासिद्धत्वेन पुनर्ढिलोपामावात् । 'अङ्कार्ये कृते पुनर्नाङ्कार्यम्' इति परिभाषया

धा पुनश्चिलोपाभावाच्चेति । नच प्रकृते उपधाह्रस्वः कुतो नेति वाच्यम् ? अग्रे-
पित्वेन 'नान्त्रोपिशास्त्रदिताम्' इत्यनेन निषेधात् ।

आरारिता—अस्योत्तरं ३६ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

शाशय्यते— „ ४२ वर्षे „

स्तोतिष्योरिति सूत्रे—एवकारस्य प्रयोजनम्—अत्र सूत्रे एवकारोऽर्थ-
ज्ञापयति—‘अभ्यासेऽप्यस्य षत्वश्चेत् ? तर्हि स्तोतिष्यन्तयोरेव’ । नच
‘आदेशप्रत्यययोः’ इत्येव षत्वे सिद्धे आरम्भसान्ध्यादेव नियमलोभादेवकारो व्यर्थ-
एवेति वाच्यम् ? ‘षण्येवे’ति नियमनिरसनार्थन्तस्यावश्यकत्वादन्वयः ‘दुष्टाच्च’
इत्यत्र षत्वाऽनापत्तेरिति दिक् ।

३—उपसर्गसमानाकारमिति—ननु सुमनश्शब्दात् क्यङ्विधानेन सुम-
नश्शब्दस्याऽङ्संज्ञासत्त्वात् सुशब्दात् प्रागेवाट् भविष्यतीति चेन्न, ‘संप्रामयुद्धे’
इत्यत्र युद्धे संप्रामशब्दः स च समुपसर्गविशिष्ट एवास्ति न केवलसंप्रामशब्दः, ततो
संप्रामशब्दपठेनैव संप्रामशब्दलोभे समुपसर्गविशिष्टो व्यर्थोभूय ज्ञापयति ‘धातुसंज्ञा-
प्रयोजकीभूतप्रत्ययस्य चिकीर्षितत्वे उपसर्गसमानाकारकपूर्वपदस्य पृथक्करणं
भवती’ति तात्पर्यात् । तेन ‘स्वमनायत’ इत्यादौ सूपसर्गस्य पृथक्करणं फलं
भवति । अथ च ज्ञापकस्य सजातीयापेक्षत्वेन यत्रोपसर्गस्य सम्पूर्णरूपेण स्थिति-
स्तत्रैव पृथक्करणं भवति । यत्र तु गुणादेशेनोपसर्गस्याऽपहरणं भवति, तत्र पृथ-
क्करणं न भवति । ततश्च ओढ इव आचर्येति विग्रहे निष्पन्नस्य ‘ओढायित्वा’
इत्यत्र आढः पृथक्करणाऽभावेनाऽव्ययपूर्वपदत्वाभावात् त्यक् न भवतीति फलम् ।
ज्ञापकस्य विशेषापेक्षकत्वे ‘उस्योमाङ्क्षाटः प्रतिषेधो वक्तव्यः’ इति वार्तिकं तत्प्र-
त्याख्यानपरकम्, ‘आटश्च’ इति सूत्रे चकारप्रहणश्च प्रमाणम् । अन्यथा ‘ओढी-
यत’ इत्यादौ धातुसंज्ञायां कर्तव्यायाम् ‘आङः’ पृथक्करणेन ‘ओमाङ्कोश्च’ इति
सूत्राऽप्रवृत्तौ वार्तिकं व्यर्थमेव । एवञ्च पररूपादिकार्याप्रवृत्तौ पुनर्बुद्धिविधानार्थं
चकारप्रहणमपि व्यर्थम् । ‘आटश्च’ इति सूत्रे चकारप्रहणम् “आटश्च” इति बुद्धि-
विषये यद्यत् कार्यं प्राप्नोति तत्तत्सर्वं निवारयति, चकारप्रहणेनैव पररूपस्य स्यादिति
वार्तिकं निष्प्रयोजनमिति तद्भगवता प्रत्याख्यातमिति दिक् ।

अथवा प्रश्नोत्तराणि—

पतुमिच्छति—इति विग्रहे ‘जिगमिषति’ इति भवति । तद्धि इणधातोः

‘अचि क्षितिः’ इति सूत्रे ‘अचि’ इत्यनेन द्वित्वे ‘अभ्यास-
संज्ञायां’ इति द्वित्वे ‘उद्धाद्युः’ इति तुल्ये सन्नतस्य धातुसंज्ञायां लटि तिपि
सुद्धिः ‘अचि’ परस्मैपरिणामे इत्यनेन इटि षत्वे पररूपे ‘जिगमिषति’ इति ।

उद्धाद्युः—इति विग्रहे ‘उद्धादीयति’ इति भवति । तद्धि ‘सुप आत्मनः
क्यच्’ इत्यनेन क्यच्चि ‘क्यच्चि लृ’ इत्यनेन ईत्वे ‘सनाद्यन्ता’ इति धातुसंज्ञायां लटि
तिपि ण्यि पररूपे ‘उद्धादीयति’ इति ।

भाष्येनानुवृत्तिः—इति विग्रहे ‘सम्भाषयति’ इति भवति ।
तथाहि—समुपसर्गकभाष्यशब्दात् ‘भाषडात्समाचयने’ इति वार्तिकेन णिङि धातु-
संज्ञायां लटि क्तिवादात्मनेपदे तत्प्रत्यये एत्वे ण्यि गुणे अयादेशे पररूपे च सिद्धिः ।

स्वामाचष्टे—इति विग्रहे—‘त्वापयति’ इति भवति । तथाहि—युष्मच्छब्दात्
शौ ‘प्रत्ययोत्तरपदयोश्च’ इत्यनेन मपर्यन्तस्य त्वादेशे ‘त्व अद् इ’ इति स्थिते पर-
रूपात् पूर्वं कृताऽकृतप्रसङ्गित्वेन नित्यत्वात् टिलोपे ‘त्व इ’ इति स्थिते वृद्धौ ‘त्वा
इ’ इति जाते ‘अर्त्ता’ इत्यनेन पुकि ण्यन्तस्य धातुसंज्ञायां लटि तिपि ण्यि गुणे
अयादेशे पररूपे च ‘त्वापयति’ इति ।

वस्तुतस्तु—‘त्वादयति’ इत्येव न्याय्यम् । तथाहि—‘मपर्यन्तस्य’ इत्य-
धिकारात् ‘प्रत्ययोत्तरपदयोश्च’ इति सूत्रेण त्वादेशे अन्तरङ्गत्वात् पूर्वम् ‘अर्त्तो
गुणे’ इति पररूपे ततः ‘प्रकृत्यैका’ इति टिलोपनिषेधे वृद्धौ च सत्त्वात् तत्सि-
द्धिः । नच ‘प्रकृत्यैकाच्’ इति सूत्रस्योदाहरणं वार्तिककारेण ‘प्रेष्ठः-प्रेष्ठान्’ इति
दत्तम् । तच्चोदाहरणं भाष्यकारेण टिलोपे कर्त्तव्ये ‘अभिद्वन्द्वान्नामात्’ इति सूत्रेण
प्रादेशस्याऽसिद्धत्वात् प्रादेशोऽकारोच्चारणसामर्थ्याद्वेति हेतुद्वयेन साधितम् ।
एवञ्च—‘प्रकृत्यैकाच्’ इति सूत्रं भाष्ये प्रत्याख्यातमिति वाच्यम् ? प्रेष्ठेत्यादिप्रयो-
गोऽन्यथासिद्धो न तु ‘प्रकृत्यैकाच्’ इति सूत्रस्य मुख्योदाहरणमित्येव तद्भाष्या-
शयात् । मुख्योदाहरणन्तु—‘त्वादयति’ ‘मादयति’ इत्यादि ज्ञेयम् । वार्तिककारो-
क्तोदाहरणमन्यथासिद्धमिति भाष्यतात्पर्यम् । न तु तत्सूत्रमेव न कर्त्तव्यमिति
तत्प्रत्याख्यानं तात्पर्यमिति दिक् ।

‘सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्त्वा वक्तव्यः’—इति वार्तिकेनैव सर्वत्र किप्
सिद्धे ‘आचारेऽवगतभक्तीबहोऽभ्यः क्त्वा वक्तव्यः’ इति वार्तिकन्तु अनुबन्धा-
संज्ञानार्थम्, अन्यवर्णस्य इत्संज्ञासिद्धयर्थमित्यर्थः । विस्तरस्तु अन्यत्र प्रति-
पादितमिति ।

४—उरस्यति—उरस् बलार्थः । तस्मात् ‘कण्ठवादिभ्यो यक्’ इत्यनेन यकि धातुं शायं लटि तिपि शपि पररूपे ‘उरस्यति’ इति । बलवान् भवतीत्यर्थः ।

बोभूयिषयिषति—भूषातोर्बळि द्वित्वादिकार्ये ‘गुणो यङ्गुकोः’ इत्यनेन अभ्यासस्य गुणे ‘बोभूय’ इति यङन्तात् सनि सनः आर्षधातुक्त्वात् इटि अतो लोपे षत्वे ‘बोभूयिष’ इति सन्नन्तात् हेतुमणिचि अतो लोपे बोभूयिषि इति व्यन्तात् पुनः सनि हटि णिचो गुणाऽयादेशयोः षत्वे ‘बोभूयिषयिष’ इति स्थिते सन्नन्तस्य बाहुलशायां लटि तिपि शपि पररूपे ‘बोभूयिषयिषति’ इति जातम् ।

अनुषि शिक्षते—अत्र ‘शिक्षेर्जिज्ञासायाम्’ इति वार्तिकेन आत्मनेपदे भवति । ‘घनुषि शिक्षते’ इत्यस्य घनुर्विषये शाने शक्तो भवितुमिच्छतीत्यर्थः ।

सुस्मूर्षते—स्मृवातोः सनि द्वित्वादिकार्ये ‘अस्मृक्ने’ति दीर्घे उदोष्ठ्य-पूर्वस्य’ इत्युत्त्वे रपरत्वे ‘हलि च’ इति दीर्घे ‘सुस्मूर्ष’ इति सन्नन्तात् ‘श्वा-श्रु-स्मृ-दृशां सनः’ इत्यनेन आत्मनेपदे लटि तत्प्रत्यये शपि पररूपे षत्वे ‘सुस्मूर्षते’ इति सिद्धम् ।

प्रावयति—‘प्रुगतौ’ अस्माग्णिचि बुद्धौ आवि प्रावोत्यस्य धातुसंज्ञायां लटि ‘बुध युध-नश-जन-इच्-प्रु-दु-क्ष्म्यो योः’ इत्यनेन परस्मैपदसंज्ञायां तिपि शपि गुणे अयादेशे पररूपे च कृते ‘प्रावयति’ इति । ‘प्रावयति’ इत्यस्य प्रापयतीत्यर्थः ।

अगीर्ष्वम्—अस्योत्तरं ‘अगारीष्वम्’ इत्यस्य साधुत्वावसरे ४१ वर्षे ब्रह्म्यम् ।

दासीष्ट—दाधातोर्लिङि सीयुडादिकार्ये सति ‘स्य-सिच्-सीयुट्-तासिषु भावकर्मणोः देशेऽस्मृन्महदृशां वा चिण्वदिट् च’ इति सूत्रेण चिण्वदिट्प्रक्षे ‘आतो युक् चिण्वक्तोः’ इत्यनेन युकि षत्वादिकार्ये ‘दायिषीष्ट’ इति । चिण्वदिट्भावपक्षे युकोऽभावे ‘दासीष्ट’ इति भवति ।

अवाकीर्ष—भूषणक्रियावाविनां किरादीनां सन्नन्तानां च यक्चिणौ चिण्वदिट् च नेति वाच्यमित्यर्थक—‘भूषाकर्मकिरादिसनां चान्यत्रात्मनेपदात्’ इति वार्तिकेन निषेधादत्र चिण्व न भवति, किन्तु ‘लिङ्चिचोरात्मनेपदेषु’ इति वेट् ।

उदपुपुच्छ—प्यन्तस्य अन्येः प्रन्तेः ब्रूजः आत्मनेपदविधायकर्मकस्य च यक्चिणोः प्रतिषेधो भारद्वाजीयाऽभिमत इत्यर्थक—‘णिश्रन्थिप्रन्थि ब्रूजात्मनेपदाऽकर्मकाणामुपसंख्यानम्’ इति वार्तिकेनाऽत्र चिण्व निषेधो भवति ।

भवान् यजताम्—‘त्रैपातिसर्गप्रातःकालेषु कृत्याश्च’ इति सूत्रे पूर्वसूत्रोपात्तो लोट् चकारात्समुच्चयिते, ततश्च-कृत्यसंज्ञकः प्रत्यया वक्ष्यमाणाः, लोट् च त्रैपातिषु भवन्तीत्यर्थो भवति । तत्र लोट्दाहरणं—‘भवान् यजताम्’ इति ।

३—णेरणाविति—अस्योत्तरं ४१ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

६—वाच्यम्—वर्षातोः ‘आमु-यु-वपि-रपि-त्रपि-चमश्च’ इति सूत्रेण व्यत् प्रत्यये ‘अत उपधायाः’ इत्यनेन वृद्धौ कृदन्तत्वात् सौ तस्य अमादेशे ‘वाच्यम्’ इति जातम् ।

पाठपटः—अस्योत्तरं ४३ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

विहङ्गः—विहायसा गच्छतीति विग्रहे ‘गमेः सुपि वाच्यः’ इति वार्तिकेन खचि प्रत्यये कृते ‘विहायसो विह इति वाच्यम्’ इति वार्तिकेन विह आदेशे ‘अरुद्विषदजन्तस्य मुम्’ इत्यनेन मुमि तस्यानुस्वारे परसवर्णे ‘खचव डिद्वा वाच्यः’ इत्यनेन डित्संज्ञायां डित्वाङ्लोपे कृदन्तत्वात् सौ तस्य रत्वे विसर्गे ‘विहङ्गः’ इति । डित्वाभावे तु—‘विहङ्गमः’ इति भवति ।

जित्वरः—जिधातोः ‘इण्-नश-जि-सर्तिभ्यः करप्’ इति सूत्रेण करप्प्रत्यये कित्वात् गुणाभावे ‘ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्’ इत्यनेन तुकि कृतन्तत्वात् सौ तस्य रत्वे विसर्गे च ‘जित्वरः’ इति ।

सूक्तम्—‘सु’ उपसर्गात् दाधातोः कप्रत्यये ‘सु दा त’ इति स्थिते ‘अच उपसर्गात्’ इति सूत्रेण दकारादाकारस्य तकारे दकारस्य ‘खरि च’ इति चत्वे ‘दस्ति’ इति सूत्रेण सूपसर्गस्य दीर्घे ‘अतो लोपः’ इत्यलोपे ‘क्षरो भक्षि सवर्णे’ इति तलोपे कृदन्तत्वात् सौ तस्य अमादेशे ‘सूक्तम्’ इति ।

नच उपसर्गस्य दीर्घे कर्त्तव्ये चत्वेस्यासिद्धत्वेन दादेशे तकाराद्युत्तरपदत्वाभावात् दीर्घो न स्यादिति वाच्यम् ? ‘अतो रोः’ इति उत्वं प्रति सत्ववत् चत्वंस्य असिद्धत्वाभावात् । वस्तुतस्तु-गातिस्थेति सूत्रे भाष्ये सोस्तत्वे उपसर्गात्प्रतिषेधात् ‘सूक्तम्’ इति पदं चिन्त्यम् मूले “नीत्तम्” इत्युत्तरं “वीत्तम्” इत्येव पाठः समीचीनः इति तत्त्वविदः ।

शुश्रुवान्—श्रुधातोः “भाषायां सदवसश्रुवः” इत्यनेन विभाषया लिटि तस्य कसुप्रत्यये द्वित्वादिकार्ये नुमि दीर्घे सलोपे कृदन्तत्वात् सौ तस्य हल्परत्वात् लोपे “शुश्रुवान्” इति ।

घतिष्णुः—वृत्धातो “अलङ्कृञ्-निराकृञ्-प्रजन-उत्पच-उत्पत-उन्मद-

रवि-अप-अप-वृधु-वृधु-सह-चर इणुच्” इति सूत्रेण इणुच् प्रत्यये गुणे कृन्-
न्तत्वात् सौ तस्य क्त्वे विसर्गे च कृते “वर्तिष्णुः इति सिद्धम् ।

दन्दशुकः—ताच्छीलाद्यर्थे दंशेर्यङि द्वित्वादिकार्ये कृते “यज-जप-दशां
पङ्कः” इति सूत्रेण ऊकि “यस्य हलः” इति यलोपे “अतो लोपः” इत्यङ्गोरे च
कृते “अनिदिताम्” इति नलोपे “जप-जभ-दह-दश-भञ्ज-पशाम्” इत्यनेन
अभ्यासस्य तुकि कृदन्तत्वात् सौ कःवे दितर्थे “दन्दशुकः” इति ।

अस्योत्तरं—अस्योत्तरं ३१ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

७—वष्टि भोक्तुम्—इच्छार्थेषु एककर्तृकेषु उपपदेषु भुजधातोः “समानक-
र्तृकेषु तुमुन्” इति सूत्रेण तुमुन्प्रत्यये क्त्वे गुणे कृदन्तत्वात् सौ तस्य लोपे “वष्टि
भोक्तुम्” इति ।

‘वश कान्तौ’ तत्र कान्तिरिच्छेति वशधातुरपीच्छार्थको बोध्यः ।

नीकाशः—अत्र “इकः काशो” इति सूत्रेण उपसर्गस्य दीर्घः ।

अभिनिसिद्धानः—अत्र “अभिनिसः स्तनः शब्दसंशयात्” इति सूत्रेण स्तनेः
सत्य मूर्धन्यादेशो भवति ।

निकणः—अत्र “कणो वीणायाञ्च” इति सूत्रेण अप्प्रत्ययो भवति ।

दुघनः—अत्र “करणेऽयोविद्वषु” इति सूत्रेण अप् हनादेशश्च भवति ।

गीर्णिः—अस्योत्तरं ३७ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

अद्धा—अदित्यव्ययपूर्वत्वेन उपसर्गपूर्वत्वाभावात् धाजः “आतश्चोपसर्गे”
इति सूत्रेण अलोऽप्राप्त्या “अदन्तरोपसर्गवद् वृत्तिः” इत्यनेन अच्छब्दस्य अक्-
विधौ उपसर्गत्वं भवति ।

आढ्येन सुभूयते—“कर्तृकर्मणोश्चव्यर्थयोरिति वाच्यम्” इति वार्तिकस्य
प्रत्युदाहरणमेतत् । तत्र च्यर्थयोः (अभूततद्भावे) इति किम् “आढ्येन सुभूयते”
इत्यत्रापि खल् स्यात् ।

पाणिनोपकर्षम्—अत्र “सप्तम्यां चोपपीडरुक्कर्षः” इति सूत्रेण णमुल्
भवति ।

तिर्यङ्कारं गतः—अत्र “तिर्यच्यपवर्गे” इति सूत्रेण णमुल् भवति । क्त्वा-
पक्षे तु—“तिर्यक्कृत्य गतः” इति भवति ।

८—‘नोदत्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचामेः—“मृजेवृद्धिः” इत्यतो वृद्धि-
रिति, “अत उपधायाः” इत्यतः उपधायाः इति, “अचो ङिति” इत्यतः ङिण-

तीति, “आतो कुक्” इत्यतः चिष्णकृतीरिति चानुवर्तते । ततश्च — “उदात्तोपदेश-
स्य अनाचमेः मान्तस्य उपधाया वृद्धिर्न स्याद्विणि ञिति णिति कृति च” इत्यर्थो
भवति ; तेन — “अशमि”-“अदमि” इत्यत्र शमूधातोर्दमूधातोश्च लुङि चिणि
“अत उपधायाः” इति वृद्धिर्न भवति ।

अनुदात्तोपदेशाः सङ्गृहीताः ततोऽन्यः सर्वोऽपि धातुरुदात्तोपदेशः । ‘उदा-
त्तोपदेशस्य प्रत्युदाहरणम् — “अगामी” इति गमेरनुदात्तोपदेशत्वात् वृद्धिनिषेधो न ।
आक्पूर्वश्चमिराचमिः तद्वर्जस्य-अनाचमेः । “अनाचमेः” इत्यस्य प्रत्युदाहरणम्-
“आचामी” इति । अनाचमेरित्युक्तेरिह नोपधावृद्धिनिषेधः । ‘मान्तस्य’ प्रत्युदाह-
रणम् — “अयादी” इति । वदधातोर्मान्तत्वाभावाच्चोपधावृद्धिः ।

“क्रियासमभिहारे लोट् लोटो हिस्वौ, वा च तध्वमोः—” अस्थो-
त्तरं ३६ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोः—आलस्यसुखाहरणयोः तुन्दशोकयोः
कर्मणोरुपपदयोरभ्यासः कः स्यादित्यर्थः । “तुन्दम्” (उदरम्) परिमार्ष्टीति तुन्द-
परिमृजोऽलसः” । शोकापनोदः (सुखस्याहर्ता) इत्याद्युदाहरणानि ।

परिक्लिश्यमाने च—सर्वतो विवाध्यमाने स्वाङ्गे द्वितीयान्तैर्णमुल् स्यादि-
त्यर्थः । उरः प्रतिपेधं युध्यन्ते । उरोविदारं प्रतिचस्करे न खैः । इत्याद्युदाहरणानि ।

६—सन्नन्तात् गमूधातोः कर्मणि प्रत्यये—प्रथमपुरुषैकवचने “जिगंस्यते”
इति रूपं भवति । ‘अज्भक्ते’ति दीर्घस्तु न गमेरञादेशत्वाभावात् ।

णिजन्तादि-उत्तरकृदन्तान्तभागे प्रश्नाः ।

१६४५

१—ओजिजत् । प्रतीषिषति । उचिच्छिषति । जेघीयते । भवर्वाः ।
ओजायते । ओजिदत् । पषु पञ्च प्रयोगान् सप्रक्रियं साधु संसा-
ध्य ‘उर्णुनविषति’ इत्यत्र कथमभ्यास उकारः श्रूयत इति सप्रमाणं
प्रतिपादयत ।

२—णिच्यच्च आदेशो न स्याद् द्वित्वे कर्त्तव्ये” इत्यादि, ‘नन्वत्राङ्संज्ञा
धातुसंज्ञा च कंसविशिष्टस्य प्राप्त्येत्यादि ‘यकारवकारान्तानां
तूढभाविना यङ्लुक् नास्तीति चङ्वोरिति सूत्रे भाष्ये ध्वनितम्”
एतासु तिसृषु फक्किकासु कामप्येकां विशदमुपपादयत ।

३—अर्धितुमिच्छति । पुनः पुनरतिशयेन वा वर्तते (यङ्लुकि) ।
शपत्नीवाचरति । अमुयञ्जमावष्टे । इति विग्रहेषु सिद्धानि रूपाणि
सम्प्रदर्श्य—

“शौषिकान्मतुवर्योयाच्छैषिको मतुवर्यिकः ।

स्वरूपः प्रत्ययो नेष्टः सञ्ज्ञान्न सनिश्यते” ॥

इति कर्त्तरि सौदाहरणं व्याख्यायत ।

७—असूयते । वारयिष्यति । आहृत । शिशसति । आयासयते ।
अस्तोषाताम् । अघानिषाताम् । अभञ्जि । कोषिषोष्ट । तत्तद्विशे-
षकार्यविधायकसूत्रनिर्देशपुरस्सरमेते प्रयोगाः साधनीयाः ।

५—“अनुपराभ्यां वृजः” इति सूत्रसार्थक्यं विशदं समर्थ्यताम् ।

अथवा

“इ चेति ह्रस्वः सुपठः” फक्किकेयं स्वरचितगद्येन व्याख्येयः ।

६—नाडहं कलिङ्गान् जगाम । नाकार्षम् । आशंसे क्षिप्रमधीयीय ।
आश्रयमन्धो नाम कृष्णं द्रव्यसि । अपि गिरि शिरसा भिन्धात् ।
एषु यथाहञ्चि त्रिष्वेव लकारविधायकसूत्राणि प्रदर्शयत ।

७—प्रेङ्खणीयम् । चर्त्यम् । उदेजयः । वटिन्धमः । भाष्यकृत् । द्यूनः ।
प्रस्तीमः । फणितम् । नदीष्णः । ददिवान् । जिष्णुः । विदुरः ।
उपरि निर्दिष्टेषु केचन दश एव प्रयोगाः सविग्रहं साधु साधनीयाः ।

८—विसारः । अभिनिष्ठानः । संशयः । उपजापः । जलधिः । निगमः ।
दुःप्रमयः । अर्तित्वा । यष्टिग्राहं युध्यन्ते । एषु ससूत्रनिर्देशं विंशे-
षकार्यं प्रदर्शनीयम् ।

८—“व्यक्तवाचां समुच्चारणे”, “चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम्”, “स-
मुच्चये सामान्यवचनस्य”, “कर्मणि भृतौ”, “हलसूकरयोः पुवः”,
“करणेऽयोविद्रषु” सौदाहरणनिर्देशमेषु केषाञ्चिच्चतुर्णामेवा-
र्थो लेख्यः ।

प्रश्नोत्तराणि ।

१—ग्रौञ्जिजत्—‘उञ्ज आर्जवे’ । अयं घातुः उपदेशे दकारोपधः । तस्य
“भुजन्मुञ्जौ पाण्युपतापयोः” इति सूत्रेण निपातनात् वकारे कृते निष्पन्नात्
‘उञ्ज’ घातोपिचि ण्यन्तस्य “सनाद्यन्ताः” इत्यनेन घातुसंज्ञायां लुङि तिपि

अजादिनादादाणमे “आटश्चे”ति वृद्धौ औब्ज् इ त् इति स्थिते मध्ये च्लौ तस्य “जि-धि-हु-जुभ्यः कर्तरि चङ्” इत्यनेन चङि “नद्राः संयोगादयः” इत्यनेन निषेधात् “चङि” इत्यनेन जिशाब्दस्य द्वित्वे, नच साम्प्रतं संयोगादौ दकाराभावात् कथं “नद्राः” इत्यस्य प्रवृत्तिरिति वाच्यम् ? द्वित्वे कर्त्तव्ये अन्तरज्जोऽपि नकारादेशः “नन्द्राः” इति निषेधे कृते प्रवर्त्तते दकारोच्चारणसामर्थ्यात् । एवञ्च “औब्जि जि अ त्” इति स्थिते “योरनिटि” इति णिलोपे “औब्जिजत्” इति सिद्धम् ।

प्रतोषिषति—बोधयितुमिच्छति इति विग्रहे प्रतिपूर्वात् इणधातोः सनि सजन्तस्य “सनाद्यन्ताः” इत्यनेन धातुसंज्ञायां लटि तिपि शपि ‘प्रति इ स अ ति’ इति स्थिते ‘अजादेर्द्वितीयस्य’ इत्यनेन सनो द्वित्वे अभ्यासस्य इत्वे प्रतिना सवर्णदीर्घे सकारद्वयस्य प्रत्ययावयवत्वात् षत्वे “अतो गुणे” इति पररूपे “प्रतोषिषति” इति सिद्धम् ।

“सनि च” इत्यनेन गम्यादेशस्तु न, तत्र सूत्रे “गौ गमिरबोधने” इत्यतः ‘गमिरबोधने’ इत्यनुवर्त्तनात् । एवञ्च गन्तुमिच्छति इति विग्रहे एव गम्यादेशे “जिगमिषति” इति भवति ।

उच्चिच्छिषति—“उच्छी विवासे” अत्र “छे च” इति तुकि कृते श्चुत्वेन “उच्छ्” इति निष्पन्नं भवति । तस्मात् सनि सजन्तस्य “सनाद्यन्ताः” इत्यनेन धातुसंज्ञायां लटि तिपि शपि सनः इटि ‘उच्छ् इ स अ ति’ इति स्थिते ‘पूर्वप्रासिद्धीयमद्वित्वे’ इति निषेधात् द्वित्वे कर्त्तव्ये श्चुत्वस्य निषेधाभावेन ‘च्छिस्’ इत्यस्य द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां हलादिशेषेण लुकारसकारयोर्निवृत्तौ ‘उच्चिच्छिष अ ति’ इति स्थिते सकारस्य प्रत्ययावयवत्वात् षत्वे पररूपे “उच्चिच्छिषति” इति सिद्धम् ।

नच “निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः” इति न्यायात् निमित्तकस्य लुस्य हलादिशेषेणाऽपाये सति नैमित्तिकस्य तुकोऽपि निवृत्तेस्ततश्च तदादेशचकारस्य कथमभ्यासे श्रवणमिति वाच्यम् ? ‘च्छ्वो’रिति सूत्रस्थ सतुगृहणेन तस्याऽनित्यत्वात् । अन्यथा ‘पृष्ठः’ ‘पृष्ठवान्’ इत्यत्र “च्छ्वो’रिति सूत्रेण लुकारस्य शकारे सति निमित्ताऽभावादेव तुकोऽपि निवृत्तिरिदौ सतुगृहणं व्यर्थं स्यात् । किञ्च—पुण्ययोगं जानाति—‘पुण्येण योजयति’ इत्येतत्साधके ‘पुण्ययोगे शी’ इति वचने भाष्यकृतकृतप्रत्ययापस्यनुवृत्तिर्वा लक्षपरिभाषायाः आनत्यत्वे ज्ञापकं

बोध्यम् । अन्यथा कृत्लुकि निनिष्ठायापरिभाषयैव कुत्वनिवृत्तौ सिद्धायां णि तदनुवृत्त्येति दिक् ।

जैचनीयते—अस्योत्तरं ४० वर्षे द्रष्टव्यम् ।

अवर्वाः—इत्धातोः यङ्लुकि धातुसंज्ञायां लङि सिपि द्विवादिफार्ये कृते ‘अवर्वत् स्’ इति स्थिते जङ्त्वे ‘दश्च’ इत्यनेन दकारस्य क्त्वे ‘रो रि’ इत्यनेन पूर्वरेफस्य लोपे ‘ढ्रलोपे पूर्वस्थ दीर्घोऽणः’ इत्यनेन दीर्घे हल्ङ्घादिना सिपः सस्य लोपे पदान्तरेफस्य विसर्गे ‘अवर्वाः’ इति जातम् ।

ओजायते—अस्योत्तरं ३९ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

औजिढत्—,, ४२ ,, ,,

ऊर्णुनविषति—,, ४७ ,, ,,

२—णिच्यच आदेशो नेति—‘ओः पुयण्यपरे’ इति सूत्रस्य-णिज-विषति, विभावविषति, यियाविषति, रिराविषति, लिलाविषति, जिजाविषति, इत्युदाहरणेषु द्वित्वप्रत्ययनिमित्ते णिचि ‘द्विर्वचनेचि’ इति निषेधाप्रवृत्त्या द्वित्वात् प्रागेव परत्वात् वृद्ध्यावादेशयोः कृतयोरभ्यासेष्वाकारस्य ह्रस्वे सति ‘सन्यतः’ इत्येवेत्वसिद्धेः पवर्गयणप्रत्याहारजकारग्रहणं व्यर्थम् । ओः पययोरप-रयोरित्येव सूत्रमस्तु । पिपाविषति, यियाविषति, इत्यत्रोक्तरीत्या ‘सन्यतः’ इतीवसिद्धावपि पिपविषति, यियविषति, इत्यत्र पूङ्धातोर्गुधातोश्चाप्यन्तत्वात्, सनि अभ्यासे इत्वार्थं तदावश्यकत्वात् । वर्गप्रत्याहारजप्रहस्यन्तु व्यर्थमेव । एवञ्च तदुक्तार्थे ज्ञापकम्—‘णिच्यच आदेशो न स्यात् द्वित्वे कर्तव्ये’ इति, ज्ञापितेऽस्मि-न्नर्थे विभावविषतीत्यादिषु णिचि छिप्ते सति ‘चङि’ इति द्वित्वे ‘प्रत्ययलक्षणमा-भित्य णिच गुणावादेशयोः प्रतिषेधे सति उवर्णान्तानां द्वित्वेऽभ्यासेऽकाराभावेन ‘सन्यतः’ इत्यस्याप्रवृत्त्या वर्गप्रत्याहारजकारग्रहणं स्वांशे चरितार्थम् । ज्ञापनफ-लान्त-तुताविषति, अतूतवत्, ऊर्णुनाविषति, और्णूनवत्, पुस्फारविषति, अपुस्फरदिति ।

नन्वत्र अङ्गसंज्ञेति—अयम्भावः, कंसवधशब्दात् णिचि कृते कंसवधश-ब्दस्य अङ्गसंज्ञा धातुसंज्ञा च भवति, ततः कंसवधशब्दात्पूर्वमङ्गायमः, कंसश-ब्दस्य द्वित्वञ्च भवितुमर्हति । किञ्च ‘धातोः स्वरूपग्रहणे तत्प्रत्यये कार्यविज्ञानम्’ इति परिभाषया कुत्वतस्त्वे न भवतस्तत्र, प्रकृतिवच्चेति चकारो भिन्नकमः कारकं चात्कार्यम्, हेतुमणिचः प्रकृतेर्हन्त्यादेर्हेतुमणौ यादृशं कारकं धातावनन्तर्भूतं

द्वितीयान्तं आह्वय्य कार्यं कुर्वतत्वादि तदिहापीत्यर्थात् । अत्र 'हनश्च ववः' इति अष्टमप्रयोगो बद्धदेशश्चेति दिक् ।

प्रत्ययकारान्तानामिति—'च्छ्वोः शृङ्' इति सूत्रे भाष्ये किद्ग्रहण-
मनुवर्तते न वेति विचारे कश्चिद्दोषानुद्भाव्य परिहृत्य चोक्तम् । एतावानेव
विशेषः । अनुवर्तमाने किद्ग्रहणे छः षत्वं वक्तव्यम् । अननुवर्तमाने त्वनेन छः
शस्त्वे कृते शान्तत्वादेव षो भविष्यतीति प्रष्टा प्रष्टुमित्यादि सिद्धये 'वश्चादि' सूत्रे
छग्रहणं न कर्तव्यम् । एवं हि वदता भाष्यकृता ऊठ्भाविभ्यो यङ्लुक् नास्ती-
त्युक्तप्रायम् । अन्यथा दिवेर्यङ्लुकि ईडभावपक्षे देदेति, देदिप्रि इत्यादौ ऊठो
भावामावाभ्यां महान् विशेषः स्यात् । तत्र किद्ग्रहणाननुवृत्तावृत्तः प्रष्टुस्या देशोति
देशोषीत्यादिरूपविशेषलाभात्, परन्त्वदं 'च्छ्वोः शृङ्' इत्यनेन यत्रोठ् प्रवर्तते
तत्रैव प्रवर्तते । तज्ज्ञापनस्योक्तसूत्रस्य भाष्यमूलकत्वात् 'उवरत्वर' इत्यादिसूत्रेण
यत्रोठ् भवति, तत्र यङ्लुग् भवत्येवेति युक्तं माधवादीनां मतश्चेति ।

३—अर्धितुमिच्छति—इति विग्रहे ऋषेः सनि ईडभावे ऋकारस्य ईत्वे
रपरत्वे ईधुं स इति स्थिते घस्य चत्वे 'नन्त्राः' इति रेफं वर्जयित्वा 'अजादेर्दि-
तीधस्व' इत्यनेन 'त्स' इत्यस्य द्वित्वे अभ्यासस्य कोपे 'ईर्सति' इति । ईट्पक्षे
तु—सनः सादित्वाभावादीत्वाभावे गुणे रपरत्वे 'अधू' इ स' इति स्थिते चिञ्
इत्यस्य द्वित्वादिकार्ये कृते 'अर्दिषिषति' इत्यपि भवति ।

पुनः पुनरतिशयेन वा वर्तते—इति विग्रहे 'वृत्तु वर्तने' अस्मात् यङ्लु-
गन्तात् ववृत् इत्यस्मात् कटि तिपि ईट्पक्षे अभ्यासस्य क्रमेण—रक्, रिक्,
रीक् च भवति । ततश्च ईट्पक्षे—वर्धतीति, वरिवृतीति, वरीवृतीति, च भवति ।
एवमीडभावे—वर्वति, वरिवति, वरीवति इत्यपि भवति ।

सप्तमीवाचरति इति विग्रहे—साधनप्रकारस्तु ४१ वर्षे द्रष्टव्यः ।

अमुमाचष्टे—इति विग्रहे 'अदस् अच् इ' इति स्थिते टेद्व्यादेशे अच्
इत्यस्य टेलोपे 'अदद्भि इ' इति स्थिते 'अदसोऽद्रेः पृथङ् सुत्वम्' इति मते
दकाराकारयोर्दकाररेफयोश्च मत्वोत्त्वयोः कृतयोः 'अमुमुइ इ' इति स्थिते प्रथमतः
इकारस्य णिचि परे वृद्धौ आयादेशे अमुमुआयीति ण्यन्ताल्लटि तिपि शपि पररूपे
गुणोऽयादेशे—'अमुमुआययति' इति मुत्वस्याऽसिद्धत्वान्न यण् ।

शौषिकान्मतुबर्थायेति—शेषाधिकारे विहितः शौषिकः । भवार्थे अस्या-
स्मादित्वात् ठञ् । शौषिकात्=शेषाधिकारमवप्रत्ययान्तात्, शौषिकः सरूपः प्रत्ययो

न भवति । तेन शालायां भवः शालीयः 'वृद्धाच्छः' । तदन्तात् शालीये भवः इति वाक्यार्थे स छ एव न भवति किन्तु वाक्यमेव । विरूपस्तु भवत्येव । अहिच्छत्रे भवः आहिच्छत्रः । भवार्थेऽण् । तदन्तादाहिच्छत्रे भवः इति वाक्यार्थे वृद्धाच्छो भवति । आहिच्छत्रीयः । एवं मतुबर्थायात् सकृपो मतुबर्थकः प्रत्ययो न । धनवानस्यास्तीति मतुबन्तान्मतुबन् । विरूपस्तु स्यादेव, दण्डमती शाला । इह मतुबन्तात् इनि प्रत्ययो भवत्येव । सन्नन्तात्सन्नेष्यते । अर्थद्वारा च साह-
श्यम् । तेनेच्छासन्नन्तात्सन्न । स्वार्थसन्तन्तात्तु स्यादेव । जुगुप्सिषते । मीमा-
सिषते । इति ।

४—असूयते—'असु उपतापे' इति कण्वादौ वर्तते । तत्र 'अस् असूज्' इत्येके पठन्ति, तन्मते असूज्धातोः 'कण्वादिभ्यो यक्' इत्यनेन यकि 'असूयते' इति भवति ।

चारयियिषति—अस्योत्तरं ४१ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

आहृत—अस्योत्तरं ४१ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

शिशस्सति—ननु 'शदेः शितः' इत्यनेन 'शिशस्सति' इत्यत्र आत्मनेपदं कुतो नेति चेन्न, 'शदेः शितः' इत्यत्र 'पूर्ववत्सनाः' इति, 'नानोर्जाः' इत्यत्र नेति चानुवर्त्य—सञ्जन्तात् शदेः नात्मनेपदमिति व्याख्यानेनाऽदोषात् ।

नच शिद्भाविनः शदेरात्मनेपदं स्यादित्यर्थे 'शीयते' इत्यत्र आत्मनेपदं भवति, प्रस्तुतव्याख्याने तु प्रकृतवत् तत्राप्यात्मनेपदं न स्यादिति वाच्यम् ? 'शदेः शितः'—'सनो न' इति वाक्यभेदेनाऽदोषात् । एवञ्च—शिद्भाविनो शदे-
रात्मनेपदं स्यादिति पूर्ववाक्यस्यार्थस्वीकारे 'शीयते' इत्यत्र नाव्याप्तिः । तथा च—शदेः सञ्जन्तान्नात्मनेपदमित्यपरवाक्यस्यार्थस्वीकारे 'शिशस्सति' इत्यत्रा-
तिव्याप्तिश्च न ।

'शदेरित्यादिसूत्रद्वये' इति मूलोक्ते तु आदिपदेन 'म्रियतेल्लुल्लिङ्गोश्च' इत्यस्य ग्रहणं बोध्यम् ।

आयासयते—अत्र 'न पादभ्याङ्ग्यमाङ्ग्यसपरिमुहुरचित्वितिवदवसः' इति सूत्रेण परस्मैपदनिषेधो भवति ।

अस्तोषाताम्—इदञ्च "त्यसिचूसीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्जनप्र-
हृदशां वा चिष्वदिट् च" इति सूत्रेण चिष्वद्भावसन्निभोगशिष्टविहित इडभाव-
पक्षे रूपम् ।

अघानिषाताम्—इदन्तु चिष्वदिष्टि पक्षे “हो हन्तेः” इति कुत्वेन ज्ञेयम् । चिष्वदिष्टिभाष्ये तु—“हन्तः सिच्” इत्यनेन क्तिवात् “अनुदात्तोपदेश” इत्यनेनानुदात्तल्लोपे “अहसाताम्” इति । वधादेशपक्षे तु—“अवधिषाताम्” इति बोध्यम् ।

अभजि—“भज्जे चिणिः” इत्यनेन नलोपे उपधावृद्धौ “अभाजि” इति । नलोपाभावे “अभजि” इति ।

कोषिषीष्ट—अत्र आर्धधातुकत्वेन यगविषयत्वात् “कुषि रज्जोः प्राचां श्यन् परस्मैपदं च” इत्यनेन श्यञ भवति । परस्मैपदं कुतो न भवतीति न शङ्क्यम् ? परस्मैपदस्य श्यन्सन्धियोगशिष्टत्वेन विहितत्वात् ।

५—“अनुपराभ्याम्” इति—“अनुपराभ्यां कृञः” इत्यत्र भावे कर्मणि लकारस्य कर्तृणे फले परस्मैपदनिवृत्त्यर्थं कर्तुरीत्यस्यानुवृत्तिरिति तत्त्वम् । ननु कर्तुरीत्यस्यानुवृत्तावपि अनुक्रियते शब्दः स्वयमेवेत्यत्र कर्मकर्तरि परस्मैपदं दुर्वारमिति चेन्न, कर्मकर्तरि “कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः” इत्यात्मनेपदेन परेणास्य वाधात् । ननु कर्मणि यच्छास्त्रं तत् ‘कर्मवत्’ इत्यनेन कर्मकर्तर्यतिदिश्यते । तथा चात्र कर्मकर्तरि भावकर्मणोरित्यात्मनेपदशास्त्रमिहाप्यतिदिश्यते तस्य च परत्वाभावात् कथमस्य वाधः स्यादिति चेन्न, शास्त्रातिदेशस्य कार्यसम्पत्तिरूपफलकत्वात् कार्यातिदेशस्य मुख्यतया तस्यैवेहाश्रयणात् । एवञ्च प्रकृते आत्मनेपदविधायकं “कर्मवत्कर्मणा” इत्येव । तच्च “अनुपराभ्याम्” इत्यतः परमिति कर्मकर्तरि नास्य प्रवृत्तिः । यदा शास्त्रातिदेशपत्न एवाश्रीयते, तदा “अनुपराभ्यां कृञः” इत्यत्र “कर्तरि कर्मव्यतिहारे” इत्यस्मादेकं कर्तृग्रहणमनुवर्तते, तथा “शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्” इत्यतो द्वितीयं कर्तृग्रहणमनुवर्तते । तथा च—स्वभावत एव यः कर्ता ननु विवक्षाधीनः कर्मकर्ता तथाविधकर्तर्येव “अनुपराभ्यां कृञः” परस्मैपदमिति लभ्यते । एवञ्च कर्मकर्तरि नास्य प्रवृत्तिरिति दिक् ।

“इ चेति ह्रस्वः सुपठः”—अयम्भावः खनधातोः क्यपि नकारस्य ह्रस्वेकारे आहुणे च “खेयम्” इति रूपसिद्धिर्निर्वाधा । दीर्घस्य ह्रस्वस्य वा आद्गुणे विशेषाभावात्, अतस्तत्सूत्रे ह्रस्व एवेकारो विधेयो न तु दीर्घः, ह्रस्वविधाने मात्रात्वात्वात् इति । ननु इचेति ह्रस्वादेशाभ्युपगमे तस्यादेशस्य पूर्वैर्न सह आद्गुणे तस्यासिद्धतया ‘ह्रस्वस्य पिति’ इति तुक् स्यात् । ‘षत्वतुकोरसिद्धः’ इति षत्वे तुक् च कर्तव्ये एकादेशशास्त्रस्यासिद्धत्वस्वीकारात् इति चेद् ? न, तुर्विधौ पदा-

न्तपदाद्योरादेशोऽसिद्धो न त्वयोऽपीति सिद्धान्तात् ।

६—नाहं कलिङ्गान् जगाम—अस्योत्तरं ४१ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

नाकार्षम्—अकार्षीः किम् ? इति प्रश्ने—‘न करोमि’ ‘नाऽकार्षम्’ । अहं नु करोमि, ‘अहं न्वकार्षम्’ इत्युत्तरम् ‘अत्र ‘नन्वोर्विभाषा’ इति सूत्रेण विभाषया लिङ् भवति ।

आशंसे क्षिप्रमधीयीय—अत्र ‘आशंसावचने लिङ्’ इत्यनेन लिङ् भवति ।

आश्चर्यमन्धो नाम कृष्णं द्रुदयति—अत्र ‘शेषे लृडयदौ’ इत्यनेन लृङ् भवति ।

अपि गिरिं शिरसा भिन्द्यात्—अत्र ‘सम्भावनेऽलमिति चेत्सिद्धाऽप्रयोगे’ इति सूत्रेण लिङ् भवति ।

७—प्रेङ्खणीयम्—अस्योत्तरं ४२ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

चर्त्यम्—चर्तुं योग्यमिति विग्रहे ‘ऋइलोर्ण्यत्’ इत्यनेन ण्यप्रत्यये गुणे कृदन्तत्वात् सौ तस्या मादेशे ‘चर्त्यम्’ इति । क्यप् तु न, ‘ऋदुरधाच्चाऽकल्पि-चृतेः’ इत्यत्र ‘अकल्पिचृतेः’ इत्युक्तत्वात् ।

उदेजयः—उदेजयतीति ‘उदेजयः’ । उत्पूर्वादेजधातोर्ण्यन्तात् ‘अनुपसर्गा-ल्लिम्पविन्दवारिपारिवेद्युदेजिचेतिसात्तिसाहिभ्यश्च’ इति सूत्रेण शप्रत्यये शपि गुणे-ऽयादेशे च कृते कृदन्तत्वात् सौ क्त्वे विसर्गे ‘उदेजयः’ इति ।

घटिन्धमः—अस्योत्तरं ३७ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

शास्त्रकृत्—अस्योत्तरं ४१ वर्षे ‘मन्त्रकृत्’ इत्यस्य साधुत्वे प्रदर्शितम् ।

द्यूनः—दीव्यतीति ‘द्यूनः’ । अत्र दिव्धातोः निष्ठायां क्तप्रत्यये ‘दिबोऽविजिगी-षायाम्’ इत्यनेन निष्ठातस्य नत्वे ‘ब्लब्बोः शृङ्बि’ति वस्य ऊठि यणि कृदन्तत्वात् सौ क्त्वे विसर्गे ‘द्यूनः’ इति ।

प्रस्तीमः—प्रपूर्वात् कृतात्वात् स्त्याधातोः निष्ठायां क्तप्रत्यये ‘स्त्यः प्रपूर्वस्य’ इत्यनेन सम्प्रसारणे पूर्वरूपे च कृते ‘इलः’ इत्यनेन दीर्घे ‘प्रस्तीत’ इति स्थिते ‘प्रस्तोऽन्यतरस्याम्’ इत्यनेन निष्ठातकारस्य मकारे कृदन्तत्वात् सौ तस्य क्त्वे विसर्गे ‘प्रस्तीमः’ इति मत्वाभावे ‘प्रस्तीतः’ इति ।

फणितम्—‘छुब्ध-स्वान्त-ष्वान्त-लम्-मिलष्ट-विरब्ध-फाण्ट-बाढानि मन्ध-मनस्-तमः-सक्ता-ऽविस्पष्ट-स्वरा-ऽनायास-भृशेषु’ इति सूत्रेण अनायासे अर्थे निपातनात् फणेः कः, इडभावः, निष्ठातस्य टर्त्वं च भवति । ततश्च तस्याऽ-

सिद्धत्वात् 'अलुनादिकस्य' इति दीर्घे सति 'फाण्टम्' इति निष्पद्यते । अत्राकारः भिन्नोऽर्थे तु—निष्ठायां कप्रत्यये इटि सति 'फणितम्' इति बोध्यम् ।

नदीभ्याः—नद्यां कुशलं स्नातीति 'नदीभ्याः' । अत्र 'निनदीभ्यां स्नातेः कौशले' इति सूत्रेण 'स्नातेः' तस्य ब्रत्वमिति विशेषः ।

ददिवान्—'डु दाम् दाने' अस्माल्लिटि तत्स्थाने कसुप्रत्यये कृते द्वित्वादि-कार्ये 'धस्वेकाजाद्वसाम्' इत्यनेन इटि 'आतो लोप इटि च' इत्यालोपे नुमि 'अत्व-सन्तस्य' इति दीर्घे संयोगान्तलोपे कृदन्तत्वात् सो तस्य हल्ङ्घादिलोपे 'ददिवान्' इति सिद्धम् ।

जिह्वः—'ग्लानिस्थश्च गन्तुः' इति सूत्रेण गन्तुः प्रत्यये सति 'जिह्वः' इति भवति ।

विदुरः—'विदिमिदिच्छिदेः कुरच्' इति सूत्रेण कुरच्प्रत्यये सति 'विदुरः' इति भवति ।

५—विसारः—अस्योत्तरं ४१ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

अभिनिष्ठानः—अत्र 'अभिनिः स्तनः शब्दसंज्ञायाम्' इति सूत्रेण स्तनेः सस्य मूर्धन्यादेशो भवति ।

संशयः—'व्युपयोः शेते पर्याये' इति सूत्रस्थ—'पर्याये' इत्यस्य प्रत्युदाहरणमेतत् ।

उपजापः—'व्यधजपोरनुपसर्गे' इति सूत्रस्य 'अनुपसर्गे' इत्यस्य प्रत्युदाहरणमेतत् ।

जलधिः—अत्र 'कर्मण्यधिकरणे च' इति सूत्रेण अधिकरणेऽर्थे किप्रत्ययो भवति ।

निगमः—निर्गच्छन्त्यनेनेति निगमः—लुन्दः । अत्र 'गोचर-संचर-वह-व्रज-व्यजाऽऽपण-निगमाश्च' इति सूत्रेण निपातनात् 'निगमः' इति सिद्धं भवति ।

दुःप्रमयः—अत्र 'ईषदुःसुषु कृच्छ्राऽकृच्छ्र्येषु खल्' इति सूत्रेण खलि कृते 'निमिमीलीयां खलचोरात्वं नेति वाच्यम्' इति वार्तिकेन आत्वाभावो भवति ।

अर्चित्वा—'वञ्चिजुन्त्यृतश्च' इत्यनेन किद्विकल्पपक्षे रूपमिदम् ।

यधिप्राहं युध्यन्ते—अत्र 'द्वितीयायाश्च' इति वार्तिकेन णमुल्प्रत्ययो भवति ।

६—व्यक्तावाचामिति—मनुष्यादीनां सम्भूयोच्चारणे वदेरात्मनेपदं स्यादिति-त्यर्थः । तेन 'सम्प्रवदन्ते, ब्राह्मणा' इत्याद्याऽऽत्मनेपदं सिद्धं भवति ।

चिण्णमुलोरिति—चिण्णपरे णमुलपरे च णौ मितामुपधाया दीर्घो वा स्यादित्यर्थः । ‘शमिता-शमिता’ इत्युदाहरणम् ।

‘प्रकृतो मितां ह्रस्व एव तु न विकल्पः’ इति पङ्केर्व्याख्यानमपि यत्र प्रष्टराशयः तत्र इत्थं समाधानं वेद्यम्—

ननु ‘चिण्णमुलोः’ इति सूत्रे दीर्घग्रहणं व्यर्थम् । चिण्णमुलोरन्यतरस्याम् इत्येतावतैव ‘मितां ह्रस्वः’ इति पूर्वसूत्रादनुवृत्तस्य ह्रस्वस्यैव विकल्पे दीर्घविकल्पासिद्धेरिति चेन्न, शमधातोर्ण्यन्ताण्यौ पूर्वं गेल्लो छुटि तासि ण्यन्तस्याजादि-त्वाच्चिण्वदिटं तस्याभीयत्वेनासिद्धतया अनिटोति निषेधाभावाण्णलोपे दीर्घविकल्पे सति ‘शमिता-शमिता’ इति रूपद्वयमिष्यते । ह्रस्वविकल्पविधाने तु ह्रस्वविकल्पो न स्यात् प्रथमणिलोपस्य ‘अचः परस्मिन्’ इति स्थानिवत्त्वेन व्यवहिततया चिण्णपरकत्वाभावात् । दीर्घविकल्पविधौ तु प्रथमस्य णिलोपो न स्थानिवत् दीर्घविधौ स्थानिवत्त्वनिषेधात् । भाष्यकारस्तु—‘न पदान्त’ इति सूत्रे ‘पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवत्’ इत्येव सिद्धत्वात् तत्र द्विर्वचनसवर्णानुस्वारदीर्घजश्वरविधौ प्रत्याख्यातवान् । नच ण्यन्ताण्यौ ‘चिण्णमुलोः’ इति दीर्घे कर्तव्ये प्रथमणिलोपस्य स्थानिवत्त्वं दुर्वारम्, ‘चिण्णमुलोः’ इति दीर्घस्य पूर्वत्रासिद्धीयत्वाभावात् । ततश्च प्रथमणिचा व्यवहितत्वात् दीर्घानापत्तिः । एवञ्च तत्र दीर्घे कर्तव्ये स्थानिवत्त्वनिवारणाय दीर्घग्रहणस्यावश्यकत्वात् कथं दीर्घग्रहणस्य प्रत्याख्यानमिति चेन्न, ‘चिण्णमुलोः’ इति दीर्घविधौ णाविति णिवजातिप्रधानो निर्देशः । चिण्णमुलपरकणित्वजातौ परत इति यावत् । णिवजातिश्च णिद्वयेऽस्तीति प्रथमणेः स्थानिवत्त्वेऽपि दीर्घस्य निर्वाहत्वात् । एवञ्च ह्रस्वदीर्घयोर्विशेषाभावात् ह्रस्वविकल्प एव क्रियतां मास्तु दीर्घग्रहणमिति भाष्याशयः ।

समुच्चये सामान्यवचनस्येति—अस्योत्तरं १८ वधे द्रष्टव्यम् ।

णिजन्तादि-उत्तरकृदन्तान्तभागे प्रक्षणाः ।

१४४६

१—प्राणिणत् । एषिविषति । ज्ञोसति । यंयस्यते । भजङ्गमीत् । भज-
र्थाः । भौडिहत् । एषु पञ्च प्रयोगान् सम्यक् साधयत ।

२—‘भुसुवोः’ इति गुणनिषेधो भाषायां न’ इत्यादि । ‘इह रिस्’ शब्दस्य
द्वित्वम्’ इत्यादि । एवञ्च अवागल्भत, अवागल्भिष्टेयादावप्यवे-

त्यस्य पूरकं करणं बोध्यम्, इत्यादि-एताषु कमप्येकां फलिकां
लभितव्यमुपवर्णयत ।

३—अनुमिच्छति । पुनः पुनरतिशयेन वा कृतमिति (यङ्लुकि),
विद्वांसमाचष्टे । सेनयाभियाति । इति विग्रहेषु सिद्धान् प्रयोगान्
सन्दर्श्य 'ईष्यतेस्तृतीयस्येति वक्तव्यम्' इति वार्तिकार्थं विवदमान-
मतं सोदहरणं प्रतिपादयत ।

४—मेधायति । अशिश्नीयिषति । निविशते । प्रकुरुते । वाष्पमुच्चरति ।
देवदत्तं प्रति शुश्रूषते । जनयति सुखम् । अविकीर्षिष्ट । अश-
रोधि । व्यकारिष्ट । तद्विशेषकार्योपपादकसूत्रनिर्देशपुरस्सरमेषां
साधनप्रणाली प्रदर्शनीया ।

५—सुप्तोऽहं किल विललाप । स्म पिता ब्रवीति । शीघ्रं वक्ष्यामः ।
अलं कृष्णो हस्तिनं हनिष्यति । भुञ्जीयेतोच्छति । वसन् ददर्श ।
एषु लकारसम्पादकानि शास्त्राणि निर्देष्टव्यानि ।

६—चिणमुलोर्दीर्घोऽभ्यतरस्यामिति सूत्रे ह्रस्वानुवृत्त्यैव विकल्प-
सिद्धौ दीर्घग्रहणमावश्यकमनावश्यकं वेति विचार्यताम् ।

अथवा

धातोरित्यस्यातृतीयाध्यायसमाप्तेरधिहाराभावे किं दूषणमिति समा-
धायताम् ।

७—प्रयाणीयम् । प्रेन्वनम् । भृत्याः । प्रणय्यः । अरविन्दम् । इरम्मदः ।
दार्वाघाटः । सोमसुत् । विरेमितम् । धीतम् । उपेयिवान् । अहन् ।
अक्षरः । तृष्णक् । एषु केचन दश प्रयोगाः साधनीयाः ।

८—काण्डलावः । निगारः । पुण्यप्रचयः । उन्मादः । जागर्या । धृत्वा ।
वितत्य । आखनिकवकः । कथङ्कारम् । गोपोषम् । एषु विशेष-
सूत्राणि प्रदर्शयत ।

९—उणादीनामपाणिनीयत्वेऽपि तत्साम्येत्वापादकं प्रमाणं स्वाधीत-
ग्रन्थे किं भवतोपलब्धमिति निर्णय भावार्थकलकारे द्वित्वाद्य-
प्रतीतौ हेतुर्वाच्यः ।

प्रश्नोत्तराणि ।

१—प्राणिणत्—अस्योत्तरं ४२ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

एषिषिषति—‘रलोव्युपधादलादेः संश्व’ इति सूत्रस्य प्रत्युदाहरणमेतत् । तत्र हि हलादेरित्यस्याभावे इष्धातोः सनि इटि ‘इष् इ स’ इति स्थिते ‘रलोव्युपधादि’ति किःत्वेन गुणनिषेधात् ‘एषिषिषति’ इति रूपं न स्यात् । तद्वहणे कृते तु इष्धातोः सनि इटि हलादित्वाऽभावेन कित्वाऽभात् गुणे ‘अजादेद्वितीयस्ये’ ति ‘षि’ इत्यस्य द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे सनः सकारस्य षत्वे लटि तिपि शपि पररूपे ‘एषिषिषति’ इति सिद्धम् । नचाऽत्र नित्यत्वात् पूर्वं द्वित्वं कृतो नेति वाच्यम्, ओण्धातौ ऋकारोच्चारणेन ‘उपवाक्यं हि द्वित्वात् प्रबलम्’ इति सामान्यतो बाधितत्वात् ।

ज्ञीप्सति—‘सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भुभ्रिस्वृष्णभ्ररश्पिसनाम्’ इति सूत्रे ज्ञपिः पुगन्तो मित्संज्ञकः, पकारान्तश्चौरादिकश्च । तत्र घटादिस्थात् मारणतोषणनिशामनार्थात् ज्ञाधातोः हेतुमण्यिचि पुकि घटादिस्त्वेन मित्वादुपधाह्रस्वे ‘ज्ञपि’ इति, तस्मादथवा ‘ज्ञप मिच्चे’ ति युः स्वतः पठितश्चुराचौ, तस्माण्यिचि उभयविधः इति श्यन्ताऽज्ञपिषातोः सनि ‘सनीवन्तर्धे’ति इडभावपक्षे णोः परस्य सनः ‘इको झल्’ इति कित्वात्स्मिन्परे योर्लुगभावे ‘ज्ञप् इ स’ इति स्थिते ‘अजज्ञनगमां सनि’ इत्यनेन प्राप्तदीर्घं परत्वाद्वाधित्वा ‘णेरनिटि’ इत्यनेन णिलोपे ‘आपज्ञपृथामीत्’ इत्यनेन ईत्वे ‘ज्ञीप्’ इत्यस्य द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे ‘अत्र लोपोऽभ्यासस्य’ इत्यनेन अभ्यासलोपे लटि तिपि शपि पररूपे ‘ज्ञीप्सति’ इति । इट्पक्षे तु—‘जिज्ञप्षति’ इति बोध्यम् ।

यंयम्यते—यम्धातोर्यञि द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे ‘नुगतोऽनुनासिकान्तस्य’ इति नुकि तस्यानुस्वारे यञन्तस्य चातुत्वाल्लटि कित्वादात्मनेपदे सप्रत्यये एत्वे शपि पररूपे ‘यंयम्यते’ इति । ननु नुकोऽनुस्वारस्य अपदान्तत्वादञ्जलूपरकावाच्चेति कथं तस्य ‘नश्च’ इत्यनुस्वार इति चेन्न, नुकानुस्वारो लक्ष्यते इत्युक्तत्वात् ।

अजङ्गमीत्—गम्धातोर्यञि तस्य लुकि लृङि तिपि ईटि द्वित्वादिकार्ये ‘नुगतोऽनुनासिकान्तस्य’ इति नुकि ‘नश्च’ इत्यनुस्वारे तस्य परसवर्णे च कृते मध्ये च्लौ तस्य सिचि ‘पुषाद्युताद्यल्लतः परस्मैपदेषु’ इत्यनेन च्लेरकादेशस्तु न, अनुबन्धनिर्देशात् । ततः ‘आर्धधातुस्य वलादेः’ इत्यनेन सस्य इटि तस्मात्परस्य सिचो लोपे सवर्णदीर्घे ‘अजङ्गमीत्’ इति । वृद्धिस्तु न, ‘हयन्ते’ति निषेधात् ।

अजर्धाः—अस्योत्तरं ४१ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

श्रौडिहत्—अस्योत्तरं ४२ वर्षे 'श्रौजिहत्' इत्यस्य साधुत्वावसरे द्रष्टव्यम् ।

२—'भूसुवोः' इति गुणनिषेध इति—अयम्भावः—'भूसुवोस्तिङि' इति लुपनिषेधे तिङे 'बोभुत्' इति गुणाभावनिपातनं छन्दस्येव गुणनिषेधो भवतीति नियमं कोति । एवञ्च यदि भाषायां यङ् लुक् न स्यात्तदा नियमस्य किमपि फलमेव नास्तीति यङ्लुक् भाषायामपि सिद्धो भवति । नच द्वित्वे कृते 'बोभु' इति समुदाये भूधातोरभावेन 'भूसुवोस्तिङि' इति सूत्राऽप्राप्तौ गुणाऽभावो निपातनीय एवेति वाच्यम्, षष्ठाध्यायोऽस्य सूत्रेण यद् द्वित्वं भवति तत्पुनरपि तस्यैवोच्चारणं भवति, नतु नवीनस्य द्वितीयस्य भूशब्दस्य 'द्वि प्रयोगो द्विवचनं षष्ठम्' इति सिद्धान्तात् ।

इहरिस्शब्दस्य द्वित्वमित्यादि—अयमाशयः—'अरिषति' इत्यत्र ऋ-घातोः सनि तस्य इटि घातोर्गुणे च कृते 'अरिस्' इति स्थिते 'अजादेद्वितीयस्ये'ति 'रिस्' शब्दस्य द्वित्वे सलोपादिकार्ये कृते रूपं सिद्धं भवति । नचात्र 'द्विवचनेऽचि' इति निषेधाद्द्वित्वे कर्तव्ये गुणादेशो न स्यादिति वाच्यम्, इटो द्वित्वेन 'कार्यमनुभवन्' इति परिभाषया तस्य निमित्तत्वाऽयोगात् । अत्रेष्ट एव द्वित्वं भवतीति कार्यित्वं वर्तते इति तस्य इटो निमित्तत्वेनायश्रयणं भवतीति 'द्विवचनेची'ति सूत्रज्ञ प्रवर्तत इति दिक् ।

एवञ्च अवगल्भत, इति—अयम्भावः—युद्धे योऽयं ग्रामशब्द इति व्याख्यानेन केवलग्रामशब्दस्य युद्धे शक्यभावात् संग्रामशब्दे आभे 'तत्करोति' इत्यादिना णिच् संग्रामयते इत्यादि सिद्धौ चुरादौ 'संग्रामयुद्धे' इति सविशिष्टग्रामशब्दो व्यर्थीभूय 'उपसर्गसमानाकारं पूर्वपदं धातुसंज्ञाप्रयोजके प्रत्यये चिकीर्षिते पृथक् क्रियते' इति वचनं ज्ञापयति । तेन स्वमनायत उन्मनायते, उदमनायत इत्यादौ, तथा अवागल्भत, अवागल्भिभष्ट, इत्यादावपि उपसर्गस्य पृथक्करणं फलं भवतीति बोध्यम् । अथ च ज्ञापकस्य सजातीयोपेक्षत्वेन यत्रोपसर्गस्य सम्पूर्णरूपेण स्थितिस्तत्रैव पृथक्करणं भवति, यत्र तु गुणादेशेनोपसर्गस्यापहरणं भवति तत्र पृथक्करणं न भवति । ततश्च—ओढ इव आचर्येति विग्रहे आळः पृथक्करणाऽभावेन अव्ययपूर्वपदत्वाऽभावात् 'त्यप्' न भवतीति फलम् । ज्ञापकस्य विशेषोपेक्षत्वे 'उस्योमाङ्क्ष्वाटः प्रतिषेधो वक्तव्यः' इति वार्तिकं तत्प्रत्याख्यानपरकम् 'अटश्च' इति सूत्रे चकारग्रहणं च प्रमाणम्, अन्यथा 'ओढीयति' इत्यादौ धातुसंज्ञायां कर्तव्यायामङ्क्ष्वाटः पृथक्करणेन 'ओमाङ्क्ष्वाट' इति सूत्राप्रवृत्तौ वार्तिकं व्यर्थमेव । एवंच पररूपादिका-

यांप्रवृत्तौ पुनर्द्विविधानार्थं चकारग्रहणमपि व्यर्थम् । 'आटश्च' इति सूत्रे चकार-
ग्रहणम् 'अटश्च' इति वृद्धिविषये दद्यत् कार्यं प्राप्नोति तत्तत्सर्वं निवारयतीति चका-
रग्रहणेनैव पररूपञ्च स्यादिति वार्तिकं निष्प्रयोजनमिति प्रत्याख्यातं भगवता ।

३—भ्रष्टेमिच्छति—इति विग्रहे विभ्रजिषति, विभ्रजिषति, विभ्रक्षति, विभ्र-
क्षति, इति चत्वारि रूपाणि भवन्ति ।

पुनः पुनः तिश्च येन नः कृन्तति—इति विग्रहे—चर्करीति, चर्कति, चरि-
कर्ति, चरीकर्ति, इति रूपचतुष्टयं भवति ।

विद्वांसमाचष्टे—इति विग्रहे 'विद्वयति' इत्येके । 'विदावयति' इत्यन्ये ।

ईर्ष्यतेस्तृतीयस्येति—अयमाशयः—'ईर्ष्यतेस्तृतीयस्येति वक्तव्यम्' इति
वार्तिके तृतीयव्यञ्जनस्य तृतीयैकाचश्च द्वित्वं भवति । ततश्च तृतीयव्यञ्जनस्य
द्वित्वपक्षे व्यञ्जनापेक्षया तृतीयव्यञ्जनं अकारस्तत्सहितस्य 'यि' इत्येकाचो द्वित्वे
णिलोपे च कृते 'ऐर्ष्ययत्' इति रूपं सिद्धयति । तृतीयैकाचो द्वित्वपक्षेऽथ तृतीयै-
काचोऽथान्वेन वार्तिकाप्रवृत्तौ 'अजादेद्वितीयस्य' इति 'व्य' शब्दस्य द्वित्वे यलोपा-
दिकार्ये च कृते 'ऐर्ष्ययत्' इति रूपम् । एतच्च 'ऐर्ष्ययत्' इति रूपसिद्धयर्थं वार्ति-
कम् । 'ऐर्ष्ययत्' इति तु—'अजादेद्वितीयस्य' इत्यनेनैव सिद्धमिति दिक् ।

सेनया अभियाति—इति विग्रहे—'अभिषेणयति' 'उपसर्गात्सुनोति' ति षः ।

४—मेधायति—'मेधा आशुग्रहणे' अस्मात् 'कण्ठ्वादिभ्यो यक्' इति
यकि 'सनाद्यन्ता' इति धातुस्वात्लटि तिपि शपि पररूपे 'मेधापति' इति ।

अशिर्वीयिषति—अत्र 'यथेष्टं नामधातुषु' इति वार्तिकेन द्वित्वमिति विशेषः ।

निविशते—निपूर्वकविशधातोर्लटि 'नेविशः' इति सूत्रेण आत्मनेपदे तत्प्र-
त्यये शपि पररूपे एत्वे 'निवशते' इति ।

प्रकुरुते—अत्र 'गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियज्ञप्रकथनोपयोगेषु कृञः'
इति सूत्रेण आत्मनेपदं भवति ।

वाष्पमुच्चरति—उपरिष्ठाद्द्रच्छतीत्यर्थः । 'उदश्चरः सकर्मकात्' इति सूत्रे
'सकर्मकात्किम्' इत्यस्य प्रत्युदाहरणमेतत् ।

देवदत्तं प्रति शुश्रूषते—'प्रत्याङ्भ्यां भ्रुवः' इति सूत्रे 'प्रत्याङ्गौ' सोपसर्गौ
एव गृह्येते तेन प्रस्तुतप्रयोगे 'लक्षणेत्वं भूते'ति प्रतेः कर्मप्रवचनीयसंज्ञात्वेन
आत्मनेपदनिषेधो न भवतीति विशेषः ।

जनयति सुखम्—अत्र 'बुधयुधनशजनेष्प्रुहुल्लभ्यो णेः' इति सूत्रेण पर-

स्मैपदमिति विशेषः ।

लृट्प्रतिषेधः—अत्र 'भूषाकर्नकिरादिसनां चान्यत्रात्मनेपदात्' इति वार्तिकेन निषेधो लृट्प्रतिषेधः न भवतीति विशेषः ।

अवारोधि—गौर्नोपेनेति शेषः । अत्र गोः कर्मणः कर्तृत्वविवक्षाया अभावात् 'न रुधः' इत्यनेन चिण् निषेधो नेति विशेषः ।

व्यङ्गारिष्ट—अत्र 'शिथ्रन्थिग्रन्थिब्रूवात्मनेपदाऽकर्मकाणामुपसङ्ख्यानम्' इति वार्तिकेन चिणि निषेधे ण्यन्तत्वाभावाच्चङभावे सिचि चिण्वदिदि वृद्धिः । चिण्व-दिङभावपक्षे—'व्यकृत' इति भवति ।

५—सुप्तोऽहं किल विललाप—'विललाप' इत्यत्र परोक्षे लिट् इत्यनेन लिट् । पारोक्ष्यमत्र चित्तविचेपादिना बोध्यम् ।

स्म पिता ब्रवीति—अत्र वाक्ये 'ब्रवीति' इत्यत्र 'अपरोक्ष्ये च' इति सूत्रेण लट् भवति ।

शीघ्रं वत्स्यामः—अत्र 'क्षिप्रवचने लृट्' इति सूत्रेण लृट् भवति ।

अलं कृष्णो हस्तिनं हनिष्यति—'सम्भावनेऽलमिति चेत्सिद्धाऽप्रयोगे' इति सूत्रस्य प्रत्युदाहरणमेतत् । तत्र हि 'सिद्धाप्रयोगे' इत्यस्याऽभावे अत्राऽपि लिङि 'हनिष्यति' इत्याह 'हन्त्यात्' इत्यङिष्ठापत्तिः स्यात् ।

भुञ्जीयेतोऽच्छति—अत्र 'लिङ् च' इति सूत्रेण लिङ् भवति ।

वसन् ददर्श—अत्र 'धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः' इत्यनेन भूते लट् ।

६—चिरणमुलोरिति—अस्योत्तरं ३६ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

अथवा प्रश्नोत्तरम् ।

धातोरित्यस्येति—'लुनाति' इत्यादौ लादेशव्यावृत्त्यर्थं 'धातोरि' त्यस्य आनुतीयाध्यायसमाप्तेरधिकारः ।

७—प्रयाणीयम्—प्रोपसर्गात् याधातोः 'तव्यत्तव्यानीयरः' इत्यनेन अनी-यरप्रत्यये 'कृत्यचः' इत्यनेन नश्य शत्वे कृदन्तत्वात् सौ तस्य अमादेशे पूर्वरूपे 'प्रयाणीयम्' इति जातम् ।

प्रेन्वनम्—'इवि प्रीणने' प्रोपसर्गादस्मात्पुटि तस्य अनादेशे गुणे कृदन्त-त्वात् सौ तस्य अयादेशे पूर्वरूपे 'प्रेन्वनम्' इति । अत्र 'इजादेः स नुमः' इत्यनेन णत्वस्वन्तु न, नुम् प्रहणमनुस्वारोपलक्षणार्थमिति 'अट्कुप्वाङ्' इति सूत्रेण्युक्तत्वात् ।

भृत्याः—अस्योत्तरं ४० वर्षे द्रष्टव्यम् ।

प्रणाट्यः—अत्र प्रोपसर्गात् णीघातोः 'प्रणोऽय्योऽसम्मत्तौ' इति सूत्रेण ययति वृद्धौ आयादेशश्च निपास्यते । (अन्यत् सुगमम्) ।

अरविन्दः—अस्योत्तरं ३८ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

हरस्मदः—अस्योत्तरं ४२ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

दार्वाघाटः—दार्वा हन्तीति 'दार्वाघाटः' । दारुशब्दे उपपदे आङ्पूर्वाङ्-न्धातोः 'दारावाहनोऽणान्तस्य च टः संज्ञायाम्' इति वार्तिकेन अण्प्रत्यये सन्नि-योगक्षिप्तेन टकारश्चान्तादेशे वृद्धौ यणि हस्य कृत्वे कृदन्तात्वात् सौ तस्य कत्वे विसर्गे 'दार्वाघाटः' इति ।

सोमसुतः—सोमे कर्मण्युपपदे 'सोमे सुजः' इति सूत्रेण भूते सुनोतेः क्तिपि तस्य सर्वापहारे 'ह्रस्वस्ये'ति तुक्कि प्रातिपदिककार्ये सुलोपे 'सोमसुतः' इति ।

विरेभितम्—'ध्रुब्धस्वान्तश्चान्तलग्नम्लिष्टविरिब्ध' इत्यादिसूत्रेण निपा-तानात्सिद्धं भवति ।

धीतम्—'घेट् पाने' अस्मात् कप्रत्यये 'धुमास्ये' तीत्वे 'दस्ति' इति सूत्रेण दीर्घे स्वादिकार्ये 'धीतम्' इति ।

उपेयिवान्—'उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च' इति सूत्रेण निपातनात्सिद्धं भवति ।

अर्हन्—अस्योत्तरं ३८ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

अधरः—अर्द्धघातोः 'सघस्यदः कमरच्' इत्यनेन कमरच्प्रत्यये स्वादि-कार्ये 'अधरः' इति ।

तृष्णक्—'तृष्णातोः 'स्वपितृषोर्नजिङि' त्यनेन नजिङ्प्रत्यये षत्वे कृत्वे स्वादिकार्ये 'तृष्णक्' इति ।

१०—काण्डलावः—काण्डं छुनाति इति विग्रहे छुधातोः 'अण् कर्मणि च' इति सूत्रेण अण्प्रत्यये यित्वाद् वृद्धौ आवादेशे स्वादिकार्ये 'काण्डलावः' इति ।

निगारः—नि-उपपदकृष्णातोः 'उन्न्योर्प्रः' इति सूत्रेण घञि वृद्धौ स्वादि-कार्ये 'निगारः' इति ।

पुष्पप्रचयः—चौर्येणेति शेषः । 'हस्तादाने चेरस्तेये' इति सूत्रस्य प्रत्युदा-हरणमेतत् । तत्र हि 'अस्तेये' इत्यस्याऽभावे अत्रापि घञि वृद्धौ 'पुष्पप्रचायः' इति स्यात् । ('पुष्पप्रचयम्' इत्येवोदाहरणमिति केचित्) ।

उन्मादः—'मदोऽनुपसर्गे' इति सूत्रस्य प्रत्युदाहरणमेतत् । तत्र हि 'अनु-पसर्गे' इत्यस्याभावे 'धनमदः' इतिषत् 'उन्मदः' इति स्यात् ।

जागर्या—जागृधातोः 'जागर्तृकारो वा' इति वार्तिकेन पाल्लिके अप्रत्यये कृते शित्वेन सार्वधातुकत्वात् यकि 'जाग्रोऽविचिण्णलुक्त्सु' इति गुणे स्वादिकार्ये 'जागर्या' इति ।

धूत्वा—धूष्धातोः 'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले' इत्यनेन क्त्वाप्रत्यये 'स्वरति-सूतिसूयति' इत्यादिना इङ्विकल्पे प्राप्ते 'स्वरत्यादेः श्रयुकः किती'ति नित्यमिङ-भावः पूर्वविप्रतिषेधेन' इत्यनेन निषेधे विभक्त्यादिकार्ये 'धूत्वा' इति ।

वितत्य—वि-उपसर्गात् तन्धातोः क्त्वाप्रत्यये लस्य व्यपि कृते 'वा व्यपि' इति सूत्रेण व्यवस्थितविभाषयाऽनुनासिकलोपविधानाद्वा नित्यतया नलोपे 'ह्रस्व-स्ये'ति तुकि प्रातिपदिकार्ये 'वितत्य' इति ।

आखनिकवकः—आङुपसर्गात् खन्धातोः 'खनेर्ङङरेकेकवका वाच्यः' इति वार्तिकेन इकवकप्रत्यये स्वादिकार्ये 'आखनिकवकः' इति ।

कथङ्कारम्—कथमुपपदात् कृधातोः 'अन्यथैवङ्कथमित्थं'सु सिद्धाऽप्रयोग-श्वेत' इति सूत्रेण णमुल्प्रत्यये वृद्धौ कथमो मकारस्यानुस्वारे परसवर्णे स्वादिकार्ये 'कथङ्कारम्' इति ।

स्वपोषम्—घनेन पुष्पातीत्यर्थः । स्वशब्दोपपदात् पुष्धातोः 'स्वे पुषः' इति सूत्रेण णमुल्प्रत्यये गुणे स्वादिकार्ये 'स्वपोषम्' इति ।

गिजन्तादे-उत्तरकृदन्तान्तभागे प्रश्नाः

११४७

१—पाणिणत् । ऊर्णुनुविषति । उचिच्छिषति । चञ्चूर्यते । अवर्वाः ।

जागृढः । एते प्रयोगाः समाधेयाः ।

२—"यकारयकारान्तानां तूट्भाविनां यङ्गुङ् नास्ति" "उपसर्गस-मानाकारं पूर्वपदं धातुसंज्ञाप्रयोजके प्रत्यये चिकीर्षिते पृथक् क्रियते" अनयोः काण्येका फक्किा सविस्तरं व्याख्यायताम् ।

३—पुनः पुनरतिशयेन वा वर्तते । दम्भितुमिच्छति । विद्वांसमाचष्टे । ददमाचष्टे । पशु विग्रहेषु सिद्धान् प्रयोगान् सन्दर्श्य "शौ च संश्वङोः" इति सूत्रं कुत्र कुत्र पठितम्, तदर्थश्च कीदृशोऽङ्गी-कृत इति सोदाहरणं प्रदर्शनीयम् ।

४—ईयते । विचन्द्रीयिषति । व्यतिराते । समगत । अद्युतत् । दम्भ-

यन्ति भव्य भक्ताः । अभाक्षयिपाताम् । शम्भ्यते मोहः । अश्वत्थ
वापिनः । अद्योन्यं स्पृशतः । विशेषसूत्रोत्तेजपूर्वकमेतेष्वप्यौ प्रयोगाः
साध्यन्ताम् ।

३—कर्मवद्भावप्रयोजकं कर्मस्थक्रियाकर्तृत्वं सप्रयोजनं प्रतिपाद्यताम् ।

अथवा

अकर्तृकप्रयोजकानि सौदाहरणं संगृह्यन्ताम् ।

१—कुरु करोमि मोः । पुरा यास्यति । वान्यमवाप्सम् । हुन्तीति पलायते ।
त्वं स्माध्यापय । एषु लकारविशेषान् संसाध्य 'पुरीमवस्कन्द लुनाहि
लन्दन'मित्यस्य माध्रपद्यस्य वाक्यार्थो निरूप्यताम् ।

७—आज्यम् । ओकः । अवहारः । अज्ञाधरः । अश्वत्थीयम् । अतुल्यम् ।
आत्मभरिः । पाणिन्धमः । उखासत् । अभिशीनम् । आजितः ।
एषु पदप्रयोगान् साध्यत ।

८—नीवाराः । उपिकल्म् । कृत्वा । विप्रार्णः । विगणय । उदित्वा ।
अलकनाशम् । गेहानुस्कन्दम् । विशेषसूत्रोत्तेजपुरस्सरमेतेषु
चत्वारः प्रयोगाः साध्यन्ताम् ।

९—वासरूपविधेस्तदनित्यत्वस्य च प्रमाणोदाहरणे निर्वर्णयत ।

प्रहनोत्तराणि ।

१—प्राणिण्यत्—अख्योत्तरं ४२ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

ऊर्णुविषति—ऊर्णुधातोः सनि 'सनीवन्तर्धमस्जदम्भुश्रित्वयुर्णभरज्ञपि-
सनाम्' इत्यनेन विकल्पेन इटि 'विभाषोर्णोः' इत्यनेन क्तिवपक्षे गुणाभावात् 'नु'
शब्दस्य द्वित्वे उत्तरखण्डे उवङि च कृते सन्नन्तस्य धातुत्वात्लङ्गे 'तिपि' शपि
पररूपे पक्षे 'ऊर्णुविषति' इति । क्तिवाभावपक्षे गुणाऽवादेशयोः ऊर्णुवि-
षति' इति । इडभावपक्षे 'न न्द्रा' इति निषेधात् 'नुस्' शब्दस्य द्वित्वे 'इको सत्' इत्यनेन
सनः क्तिवात् गुणाभावे 'अजम्नगमां सनि' इति दीर्घे 'ऊर्णुविषति' इति ।

नन्वत्र परत्वात् गुणाऽवादेशयोः कृतयोः अभ्यासे उकारस्य श्रवणं न स्या-
दिति चेन्न, 'द्विवचनेची'ति गुणनिषेधात् । नवात्र 'सन्न्यङोः' इति सन्नन्तस्य
द्वित्वं प्रति कार्यत्वादितो निमित्तरर्थं न स्यादिति वाच्यम्, इटो द्वित्वरूपकार्य-

त्वाऽभावेन निमित्तत्वात् । अत्र 'सन्न्यङोः' इति सूत्रेण प्रथमतः सन्नन्तसमुदायस्य द्वित्वरूपकार्यं प्राप्तं भवति परन्तु "अजादेर्द्वितीयस्ये"ति बलेन नुष्पन्दस्यैव द्वित्व-
रूपकार्यं भवति नन्विटः । इत्थं च 'कार्यमनुभवन्ति'ति परिभाषाया अवसर एव
नास्तीति भावः ।

‘यत्र कार्यमनुभवन् कार्या प्रवर्तते तत्रैव कार्या निमित्तत्वेन न स्वीक्रियते’
इति परिभाषार्थः । अत्र ‘यदागमाः’ इति परिभाषया इडरूपः सन् द्वित्वज्ञानुभवति ।

उचिच्छिषति—उच्छ्वातोः सनि सन्नन्तस्य धातुत्वाल्लटि तिपि शपि
सनः इटि ‘पूर्वत्रासिद्धीयमद्वित्वे’ इति निषेधात् द्वित्वे कर्तव्ये श्रुत्वस्य निषेधा-
ऽभावेन ‘च्छिप्’ इत्यस्य द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे ‘उचिच्छिष अ ति’
इति स्थिते सकारस्य षत्वे पररूपे ‘उचिच्छिषति’ इति ।

नचात्र ‘निमित्तापाये’ति परिभाषया कुलोपे सति तुकोऽपि निवृत्तिः स्यादिति
वाच्यम्, ‘आख्यानात’ इत्यादिवार्तिके प्रकृतिप्रत्ययापत्तिवचनेन ‘च्छ्वोः सुड-
नुनासिके च’ इति सूत्रे तुग्विशिष्टकृकारपाठेन च परिभाषया अनित्यत्वज्ञापनात् ।
यदि परिभाषायाः प्रवृत्तिः सर्वत्र स्यात्तदा कृकारस्य शकारे कृते तुको निवृत्तिः
परिभाषयैव स्यादिति सूत्रे तुगग्रहणं व्यर्थमेव । तदेव व्यर्थं सङ्कतपरिभाषाया
अनित्यत्वे प्रमाणं भवतीति दिक् ।

चञ्चूर्यते—गर्हितं चरतीति विग्रहे ‘तुपसदचरजपजभदहदशगुभ्यो भावग-
र्हायाम्’ इत्यनेन यङि ‘सन्न्यङोः’ इत्यनेन द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे
‘चरफलोश्च’ इत्यनेन रुकि ततः परसवर्णे कृते ‘उत्परस्यातः’ इत्यनेन अभ्या-
सोत्तरखण्डस्याकारस्योत्त्वे ‘हलि चे’ति दीर्घे धातुत्वाल्लटि तङि शपि एत्वे पररूपे
‘चञ्चूर्यते’ इति ।

नचात्र रुकि कृते झलपरत्वाऽभावेन अनुस्वाराऽभावात् परसवर्णः कथमिति
वाच्यम्, ‘नुगतोऽनुनासिकान्तस्ये’ति पूर्वसूत्रे ‘थंभ्यते’ ‘रंरभ्यते’ इत्यादाव-
नुस्वारश्रवणार्थं ‘नुगित्यनुस्वारोपलक्षणमाश्रयणीयम्’ इत्युक्तं भाष्ये, तस्यैवाऽत्र
सूत्रेऽनुवर्तनादत्रापि तत्सिद्धेः । ‘स च पदान्तवद्वाच्यः’ इति पूर्वसूत्रस्यवार्तिक-
मध्यत्राऽनुवर्तत इति न विस्मर्तव्यम् ।

अवर्वाः—अस्योत्तरं ४५ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

जागृढः—‘ग्रह उपादाने’ अस्माद्यल्लुकि धातुसंज्ञायां लुकि तसि ‘ग्रहज्ये’-

ति सम्प्रसारणे प्रत्ययलक्षणेन द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां हकादिशेषे चुत्वे 'दीर्घे-
ऽकृतिः' इत्यनेन अभ्यासस्य दीर्घे 'रुप्रिकौ च छुकि' इति रुगादयस्तु न, सम्प्र-
सारणस्य बहिरङ्गत्वेन असिद्धत्वात् । ततो हस्य ढत्वे तस्य घत्वे ध्रुत्वे ढलोपे
अकारस्य ऋत्वे विसर्गे 'जागृढः' इति ।

२—यकारवकारान्तानामिति—अयम्भावः—'छ्वोः' इति सूत्रे किद्ग्रह-
णमनुवर्तते न वेति विचारे भाष्यकृता—“यदि किद्ग्रहणमनुवर्तते तदा प्रष्टा,
प्रष्टुमित्वादौ 'छ्वोरिति' सूत्राप्रवृत्तौ षत्वार्थं 'व्रश्चे'ति सूत्रे छुकारप्रहणं कर्त्त-
व्यम् । अथ च यदि नानुवर्तते तदा पूर्वोक्तसूत्रेण शस्य छुत्वे शान्तत्वादेव षत्व-
सिद्धौ 'व्रश्चे'ति सूत्रे छुकारप्रहणं न कर्त्तव्यं भवतीत्येतावानेव विशेषः” इत्यभि-
हितम् । इत्यथ यदि वान्तधातुभ्यो यङ्लुक् भवति तदा दिवुधातोर्यङ्लुकि इङ-
भावपक्षे किद्ग्रहणानुवृत्तौ ऊङोऽभावे देदेति, देदेशीति रूपम् । अथ च यदि
किद्ग्रहणस्य नानुवृत्तिस्तदा ऊङि 'देश्योति' 'देश्योषीति' रूपम् । एवं यान्तानामपि
प्रयोगे भेदो बोध्यः । ततश्च प्रयोगेऽपि भेदो वर्तत इति 'एतावानेव विशेषः' इति
भाष्योक्तं निष्फलं स्यात्तस्मात् 'यकारवकारान्तानाम्' इत्यादिवचनं निस्तृतम् ।
परश्चैतद्यङ्लुक्निवर्तनं वान्तांशे यत्र 'छ्वोः' इत्यूट् भवति तद्विषयकम् । 'उज-
रत्वर' इत्यादिसूत्रेण यत्रोट् भवति तत्र यङ्लुग् भवत्येवेति युक्तम् माधवादीनां
मतं च । 'छ्वोः' इति सूत्रे भाष्यकारेण विचारः कृतः तत्रैव च ऊङि कृतेऽकृते
वा फलभेदो भवतीति तत्सूत्रविषयके ऊङ्येव यङ्लुक्नेति भावः ।

उपसर्गसमानाकारमिति—अयम्भावः—युद्धे शौर्यं ग्रामशब्द इति व्या-
ख्यानानेन केवलग्रामशब्दस्य युद्धे शक्त्यभावेन संग्रामशब्दस्य लाभात् 'तत्करोति'
इत्यादिना णिच् 'सङ्ग्रामयते' इत्यादिसिद्धौ चुरादौ सङ्ग्रामयुद्धे इति 'विशिष्ट-
ग्रामशब्दो व्यर्थोभूय 'उपसर्गसमानाकारम्' इत्यादि वचनं ज्ञापयति । तेन 'स्व-
मनायत' इत्यादौ उपसर्गस्य पृथक्करणं फलं भवति । अथ च ज्ञापकस्य सजा-
त्तीयापेक्षत्वेन यत्रोपसर्गस्य सम्पूर्णरूपेण स्थितिस्तत्रैव पृथक्करणं भवति, यत्र तु
गुणादेशेनोपसर्गस्यापहरणं भवति तत्र पृथक्करणं भवति । ततश्च ओढ इवाच-
र्येति विग्रहे आढः पृथक्करणाभावेन अव्ययपूर्वपदत्वाभावात्त्वय् न भवतीति
फलम् । ज्ञापकस्य विशेषापेक्षत्वे—'उस्योमाङ्क्षाटः प्रतिषेधो वक्तव्यः' इति वार्तिकं
सप्तप्रत्याख्यानप्रकारकम्, 'आटश्च' इति सूत्रे चकारप्रहणं च प्रमाणम्, अन्यथा
'श्रीढीयत्' इत्यादौ धातुसंज्ञायां कर्तव्यायामाढः पृथक्करणेन 'श्रीमाङ्कोऽय' इति

सूत्राप्रवृत्तौ वार्तिकं व्यर्थमेव । एवञ्च पररूपादिकार्याप्रवृत्तौ पुनर्बुद्धिविधानार्थं चकारअत्रापि व्यर्थम् । ‘आटश्च’ इति सूत्रे चकारग्रहणम् ‘अटश्च’ इति बुद्धि-
विरुद्धं यद्यत् कार्यं प्राप्नोति तत्तत् सर्वं निवारयतीति चकारग्रहणेनैव पररूपक-
स्यादिति वार्तिकं निष्प्रयोजनमिति वार्तिकं प्रत्याख्यातं भगवता ।

३—पुनः पुनरतिशयेन वा वर्तत इति—अस्योत्तरं ४५ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

दग्भिभतुमिच्छति—इति विग्रहे-दिदग्भिषति, विप्सति, धीप्सति, इति
त्रीणि रूपाणि भवन्ति ।

विद्वांसमाचष्टे—अस्योत्तरं ४६ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

दरदमाचष्टे—‘दारदयति’ इति भवति । दरदिति कश्चिद्वाजा, तस्यापरस्य दारदः ।

शौ च संश्रद्धोरिति—इदं सूत्रं णिजन्तप्रक्रियायामेवोभयत्र पठितम् ।
तच्च षष्ठाध्यायप्रथमपादस्य प्रथमम् । सन्परे चक्षुरे च शौ श्वयतेः सम्प्रसारणं
वा स्यादित्यर्थः । अशूशवत्-अशिश्वत्’ इत्युदाहरणे । अपरं द्वितीयाध्यायचतु-
र्थपादस्यम् । सन्परे चक्षुरे च शौ इहो गच्छ वा स्यादित्यर्थः । अभ्यजीगपत्-
अभ्यापिपत्’ इत्युदाहरणे ।

४—ईर्यते—अस्योत्तरं ४२ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

चिचन्द्रीयिषति—अस्योत्तरं ४२ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

व्यतिरारते—लटि प्रथमपुरुषैकद्विबहुवचनेषु रूपमिदम् । अत्र ‘कर्तरि कर्म-
व्यतिहारे’ इत्यनेन आत्मनेपदं भवतीति विशेषः ।

समगत—‘समो गम्यच्छिभ्याम्’ इति सूत्रेण आत्मनेपदे कृते ‘वा गमः’
इत्यनेन कित्वं भवतीति विशेषः ।

अद्युतत्—अत्र ‘द्युद्भ्यो लुङि’ इत्यनेन परस्मैपदमिति विशेषः ।

दर्शयन्ति भवं भक्ताः—अत्र ‘अणवकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्’ इति सूत्रेण
परस्मैपदमिति विशेषः ।

अभावविषाताम्—प्यन्ताद् भूधातोर्भावकर्मणि लुङि प्रथमपुरुषद्विवचने
चिष्णदिडभावपक्षे वलादिलक्षणे इटि तरय अनाभीयत्वेन असिद्धत्वाभावाद्निटीलि
निषेधाणि लोपाभावे णेर्गुणाऽयादेशयोः कृतयोः ‘अभावविषाताम्’ इति ।

शम्यते मोहः—शमधातोर्होतृसंज्ञौ उपधाबद्धौ अमन्तरत्वेन मिस्वाद् ह्रस्वे
शमीत्यस्मात् कर्मणि लटि आत्मनेपदे तत्प्रत्यये यकि णिलोपे शपि पररूपे शम्यते
इति । अत्र भावे लङ् लु क, हेतुमण्यन्तरस्य सकर्मकत्वात् ।

अन्यतस्त पापेन—अस्योत्तरं ४१ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

अस्योत्थं स्पुशतः—अत्र 'सकर्मकाणां प्रतिषेधो वक्तव्यः' इति वार्तिकेन कर्मवद्भावप्रतिषेधो भवति ।

६—ननु करोमि भोः—अस्योत्तरं ३७ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

पुरा यास्यति—'यावत्पुरा निपातयोर्लट्' इति सूत्रस्य प्रत्युदाहरणान्तरमेतत् । अत्र पुश्चब्दस्य तृतीयैकवचनान्तं 'पुरा' इति तेन, अत्र याधातोर्लट् नेति ।

धान्यमवाप्सम—देवः=मेघः, अवर्षाच्चैद्धान्यमवाप्सम । अत्र 'आर्शसादां भूतवच्च' इत्यनेन भूतवद्भावात् वप्धातोर्भविष्यति लुङि उत्तमपुरुषबहुवचने अवाप्समेति सिद्धं भवति ।

हन्तीति पलायते—'हेतुहेतुमतोर्लिङ्' इति सूत्रे लिङ्प्रहणसामर्थ्यात् "भविष्यत्येवेत्येते" इत्युक्तत्वात् लिङ् न ।

त्वं स्माध्यापय—अस्योत्तरं ३७ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

पुरीमवस्कन्देति—बली=रखणः, नमुचिद्विषा=इन्द्रेण सह, विगृह्य=विरोधं प्राप्य, पुर्याः=अमरावत्याः, अवस्कन्दनं=पीडनं, नन्दनवनस्य लवनं, रत्नानां मोषणम्, अमराङ्गनां हरणमित्येवं प्रकारेण अहर्दिवम्=अह्न्यहनि, अस्वास्थ्यं चक्रे=कृतवानित्यन्वयः । इत्थं शब्द इति पर्यायोऽवस्कन्दनादिक्रियाविशेषाणामस्वास्थ्यक्रियासामान्येऽभेदं प्राहयति ।

७—आडयम्—अस्योत्तरं ४० वर्षे द्रष्टव्यम् ।

ओकः—उच्चातोः 'हगुपवशाप्रीकिरः कः' इति सूत्रेण कप्रत्यये 'ओक उच्चः के' इत्यनेन के परे निपातनात् उच्चेर्गुणकुत्वे स्वादिकार्ये 'ओकः शकुन्तवृषली' इति ।

अवहारः—अवोपसर्गात् हधातोः 'श्यादयधासुसंस्वतीणवसावहलिहदिलषश्वसश्च' इति सूत्रेण णप्रत्यये वृद्धौ कृदन्तत्वात् सौ तस्य स्तवे विसर्गे 'अवहारः' इति ।

गङ्गाधरः—नन्वत्र 'कर्मण्यण्' इति सूत्रेण अण् कृतो नेति चेन्न, कर्मणः शेषत्वविवक्षायां कर्मोपपदाभावात् । अण् कृते तु 'गङ्गाधरः' इति स्यात् ।

प्रख्यानीयम्—प्रोषसर्गात् ख्याधातोः अनीयस्प्रत्यये विभक्त्यादिकार्ये 'प्रख्यानीयम्' इति । 'कृत्यचः' इति णत्वं तु न, 'चक्षिषः ख्याज्' इति सूत्रे भाष्ये 'ख्याजः खय ओ वा' इत्युक्तत्वात् यत्स्वस्याऽसिद्धत्वेन शकारव्यवधानात् ।

अनुद्यम्—नन्वि उपपदे सति वदधातो 'वदः सुपि क्यप् च' इत्यनेन क्यपि 'वचिस्वपी'ति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे विभक्त्यादिकार्ये 'अनुद्यम् वचनाऽनर्ह' 'गुह-
साध' इति शेषः । 'अवयवव्यवर्था गर्ह्यपणितव्याऽनिरोधेषु' इति सूत्रस्थ गर्ह्येत्यस्य
प्रत्युद्धारणमेतत् ।

आत्मम्भरिः—आत्मानं विभर्तीति विग्रहे 'फलेप्रद्विहात्मम्भरिश्च' इति
सूत्रेण भृष् धातोरिन् प्रत्ययः, न लोपे सति मुमागमश्च निपात्यते । तत ऋकारस्य
गुणे रपरत्वे विभक्त्यादिकार्ये 'आत्मम्भरिः' इति ।

पाणिन्धमः—पाणयो ध्मायन्तेऽस्मिन्निति विग्रहे 'उम्रम्पश्येरम्भदपाणिन्ध-
माश्च' इति सूत्रेण निपातनात् सिद्धं भवति । तत्र हि यपि 'पात्राध्मे'ति धमादेश
इति विशेषः ।

उखासत्—उखायाः खंसते इति विग्रहे खंसधातोः 'किप् च' इति
सूत्रेण किपि 'अनिदिता'मिति नलोपे 'वसुखंसुश्च'मिति दत्त्वे चत्वे विभक्त्यादि-
कार्ये 'उखासत्' इति ।

अभिशीनम्—अस्योत्तरं ३९ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

आसितः—आसितवानित्यर्थः । 'लोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसाना-
धेभ्यः' इति सूत्रेण चकारात् कर्तरि क्तप्रत्यये इटि स्वादिकार्ये 'आसितः' इति ।

नीवाराः—नीत्युपपदे वृधातोः 'नी वृ धान्ये' इति सूत्रेण घञ्-
प्रत्यये भित्वाद्वृद्धौ 'उपसर्गस्य घञमनुष्ये' इति दीर्घे विभक्त्यादिकार्ये
'नीवाराः' इति ।

उग्निरमम्—अस्योत्तरं ४१ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

भृत्या—अस्योत्तरं ४० वर्षे द्रष्टव्यम् ।

विमार्गः—अस्योत्तरं ३७ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

विगणय्यः—'वि' उपसर्गात् 'गण संख्याने अस्मात् णिचि अतो लोपे 'वि-
गणि' इति, तस्मात् क्त्वाप्रत्यये तस्य 'समासेऽनन्तरपूर्वे क्त्वोत्त्यप्' इत्यनेन त्यपि
णेरयादेशे विभक्त्यादिकार्ये 'विगणय्य' इति ।

उदित्वा—वदधातोः क्त्वाप्रत्यये 'वचिस्वपी'ति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे इटि
'मृदमृदगुधकुषविलशवदवस्रः क्त्वा' इति सूत्रेण किद्ध्रभावात् गुणाऽभावे स्वादि-
कार्ये 'उदित्वा' इति ।

अजकनाशम्—'उपमाने कर्मणि च' इति सूत्रेण नष्टधातोर्णमुल् प्रत्यये

शित्वाद् वृद्धौ विभक्त्यादिकार्ये 'अजकनाशम्' इति । अजक इव नष्ट इत्यर्थः ।

गेहानुस्कन्दम्—'विशिषतिपदिस्कन्दां व्याप्प्रमानाऽऽसेव्यमानयोः' इति सूत्रेण स्कन्दधातोर्यमुलप्रत्यये विभक्त्यादिकार्ये 'गेहानुस्कन्दम्' इति ।

६—वासरूपविधेरिति—'वऽसरूपोऽस्त्रियाम्' इति परिभाषया लोट्कृत्य-संज्ञकप्रत्ययश्च पर्यायेण भविष्यतीति 'प्रैषादि' सूत्रे कृत्यग्रहणं स्त्र्यधिकाराद्ध्वं 'वास-रूपोऽस्त्रियाम्' इति सूत्रं क्वचिन्न प्रवर्तते इति ज्ञापयति । एवञ्च 'कल्युट्त्तुमुन्ब-लर्थेषु मिथो बाध्यबाधकभावो न भवती'ति वचनं सिद्धम् । तेन 'हसितं हस-नम्' इति भावे विहितयोः कल्युट्प्रत्ययोर्विषये 'भावे' इति सूत्रेण घञ् प्रत्ययो न भवति । अथ च 'ईषत्पानः' इति खलर्थे खलप्रत्ययश्च न भवतीति फलम् । अत्र लाघवात् 'शक्ति लिङ् च' इति सूत्रे चकारप्रश्नो नैव पूर्वोक्तज्ञापनसम्भवे प्रैषादि' सूत्रे कृत्यग्रहणं न कार्यमिति दिक् ।

णिजन्तप्राक्रियाद्युणादिप्रकरणान्तभागे प्रश्नाः

१६४८ प्रथमं पत्रम्

१—मा भवानिदधत् । अध्वजोगपत् । दुद्यूषति । उचिच्छिषति । शश-थ्यते । अबोभूवुः । तोतोति । एषु पञ्च प्रयोगाः साधनीयाः । ...१०

२—अन्तरायते । औजिदत् । स्थापयति । एतान् प्रयोगान् संसाध्य अपस्किरते वृषो हृष्टः । शास्त्रे नयते । पदं मिथ्या कारयते बोधयति पद्मम् । पाययते । एषां मध्ये त्रिषु प्रयोगेषु सूत्रनिर्देशपूर्वकं पद-व्यवस्था प्रदर्शनीया । ...१०

३—आरिता । ग्राहिता । गौः पयो दुग्धे । कृष्णश्चेद् भुङ्क्ते त्वं गाश्चा-रय । अपगिरिं शिरसा भिन्द्यात् । याहि याहीति याति । एषु चतुरः प्रयोगान् संसाध्य, 'धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः' इति सूत्रं व्याख्यायताम् । ...१०

४—आचर्यो देशः । चेक्रियः । दिवाकरः । आढयङ्करणम् । सोमवि-क्रयी । क्षुब्धो मन्थश्चेत् । एषु चतुरः प्रयोगान् संसाध्य—फलुः । अजिरम् । स्थालम् । करभः । मञ्जूषा । पुरोधाः । एषां मध्ये चतुर्षु प्रयोगेषु प्रकृति-प्रत्ययनिर्देशः कर्तव्यः । ...१२

५—शैषिकान्मनुबर्थायाच्छैषिको मनुबर्धिकः ।

सरूपः प्रत्ययो नेष्टः सभ्रन्तान्न सनिष्यते ॥

अथवा

गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नी-ह-कृष्वह्याम् ।

बुद्धिमक्षार्थयोः शब्दकर्मकाणां निजेच्छया ॥

प्रथेज्यकर्मण्यन्येषां एयन्तानां लादथो मताः ।

इति कारिका सोदाहरणं व्याख्येया ।

प्रश्नोत्तराणि ।

१—माभवानिदिधत्—एधधातोर्णिचि ण्यन्तस्य धातुरवारुल्लुकि तिपि क्ले-
श्च 'एध् इ अ त्' इति स्थिते पूर्वम् उपधाह्रस्वे ततो 'घो'त्यस्य द्वित्वे अभ्या-
ससंज्ञायां हलादिशेषे माङ्योपादाडभावे 'मा भवानिदिधत्' इति । नचाऽत्र अशिङं
बहिरङ्गमन्तरङ्गे' इति परिभाषया अन्तरङ्गत्वात् द्वित्वमेव पूर्वं स्यादिति वाच्यम्,
अणोर्ऋदिकरणेन बहिरङ्गस्याप्युपधाह्रस्वस्य प्राबल्यबोधनात् ।

यदि तु उपधाह्रस्वात् प्रागेव अन्तरङ्गत्वात् द्वित्वं स्यात्तदा 'ओण् इ अत्'
इति स्थिते णिश्चब्दस्य द्वित्वे 'णौ चळ्युपधाया' इति ह्रस्वे कर्तव्ये चङ्प्रक-
र्यो-प्सितद्वयवहितमङ्गम् 'ओणिण्' इति तस्योपधाया दीर्घाभावेन ह्रस्वान्नाप्त्या
ह्रस्वनिषेधार्थम् ओण् धातोर्ऋकारोपादानं व्यर्थं स्यात् तदेव व्यर्थंभूय 'उपधा-
कार्यं द्वित्वात् प्रबलम् इति ज्ञापयति ।

अभ्यजीगपत्—अधिपूर्वादिङ्धातोर्णिचि तदन्ताल्लुकि तिपि अडागमे
क्लेश्चक्षदेशे "णौच संक्षलोः" इति इङो गाडादेशे पुकि उपधाह्रस्वत्वे 'अधि अ-
गप् इ अ त्' इति स्थिते 'गप्' इत्यस्य द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे 'कुहो-
इत्तुः' इत्यनेन अभ्यासरस्य जुत्वे सन्वद्भावे 'सन्वतः' इतीत्वे 'दीर्घो छघोः' इति
दीर्घे यणि 'अभ्यजीगपत्' इति । नचात्र णिजिनमित्तस्य गाङो द्वित्वे कर्तव्ये
स्थानिवद्भावो निषेधो वा शङ्क्यः, यत्र अभ्यासोत्तरखण्डे आद्योऽङ्गवर्कोऽस्ति
तत्रैव स्थानिवद्भावो निषेधो वेत्युक्तत्वात् । इह तु गाङः पूर्वं सति हि द्वित्वे 'अ-
जादेद्वितीयस्य' इति णिश्च एव द्वित्वं भवेत्ततः चङ्प्रणिजिनमित्तो गाङ् ततश्च
प्रक्रियायां परिनिष्ठितरूपे वा अवर्णव्युत्तरखण्डं दुर्लभं कीर्तयतिसाम्भवात् ।

कुद्यपति—अस्योत्तरं ४२ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

डचिच्छिषति—,, ४६ ,, ,,

शाश्वत्यते—अस्योत्तरं ४२ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

अबोधुः—भूधातोर्यङ्लुकि द्वित्वादिकार्ये अभ्यासस्य गुणे च कृते धातुत्वात्
लुकि 'सिञ्भ्यस्ते'ति द्वैर्जुसि 'अबोभू उस्' इति स्थिते 'जुसि च' ति गुणं बाधि-
त्वा नित्यत्वाद् लुकि सकारस्य रुवे विसर्गे 'अबोधुः' इति । नचात्र अभ्यस्ताश्र-
यजुसं बाधित्वा परत्वात् 'अदभ्यस्तात्' इत्यनेन अदादेशः कुतो नेति वाच्यम् ,
अभ्यस्ताश्रयजुसोऽदादेशापवादत्वात् ।

तोतोति—'तुर्वीं हिसायाम्' इति धातोः यङ्लुकि धातुत्वाल्लटि तिपि इङ-
भावपक्षे द्वित्वादिकार्ये अभ्यासस्य गुणे च कृते 'तोतुर्वति' इति स्थिते 'राल्लोपः'
इत्यनेन वलोपे 'तोतु ति' इति स्थिते उकारस्य लघूपधगुणे 'तोतोति' इति ।
'न धातुलोप आर्धधातुके' इति गुणनिषेधस्तु न, तिबादीनामनार्धधातुकत्वात् ।

२—अस्सरायते—अस्योत्तरं ४३ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

औजिहत्— ०,, ४२,, ,,

स्थाययति—स्थिरमाचष्टे इति विग्रहे 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिच्
'प्रियस्थिरे'ति सूत्रेण स्थिरशब्दस्य स्थादेशे वृद्धौ पुकि लटि तिपि ऋपि गुणे अ-
यादेशे पूर्वकूपे 'स्थापयति' इति ।

अपस्क्रियते वृषो हृष्टः—अत्र 'किरतेर्हर्षजीविकाकुलायकरणेभिति वा-
च्यम्' इति वार्तिकेन आत्मनेपदे सति 'अपाचचतुष्पाच्छकुनिष्वालेखने' इति सूत्रे-
ण सुङ् भवतीति विशेषः ।

शास्त्रे नयते—शास्त्रार्थं सिद्धान्तं शिष्येभ्यः प्रापयतीत्यर्थः । अत्र 'गीञ्
प्रापणे' अस्माद्धातोः 'समाननोत्सजनाचार्यकरणज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु नियः' इति
सूत्रेण आत्मनेपदं भवति ।

पदं मिथ्या कारयते—स्वरादिदुष्टमसकृदुच्चारयतीत्यर्थः । अत्र 'मिथ्यो-
पपादत्कजोऽभ्यासे' इति सूत्रेण आत्मनेपदं भवति ।

बोधयति पशाम्—अत्र 'बुधयुधनशजनेङ्मुहुन्मुभो योः' इति सूत्रेण
परस्मैपदं भवति ।

पाययते—अत्र न 'पादभ्याकथमाकथसपरिसुहृचिचृतिवदवसः' इति सूत्रेण
'निगरणचलनार्थेभ्यः' इति प्राप्तपरस्मैपदस्य निषेधो भवति ।

३—आरिता—श्रुतात्तेर्लुटि तिपि तासिप्रत्यये सलोपे तिपो ङादेशे गुणे
रपरत्वे कृते अजन्तत्वाऽभावेऽपि 'स्यसिच्छीयुटतासिषु भावकर्मणोरपदेशेऽजन्त-

नप्रहृदशां वा चिण्वदिट् च' इति सूत्रेण चिण्वद्भावे इटि च कृते चिण्वद्भावाद्बुद्धौ 'आरिता' इति । पक्षे 'अर्ता' इति भवति ।

आहिता—अत्र चिण्वदिटि कृते चिण्वद्भावाद् बुद्धौ 'प्राहिता' इति । अत्र 'ग्रहोऽलिटि दीर्घः' इत्यनेन दीर्घस्तु न, वलादिलक्षणस्यैव इटः तेन दीर्घविधानात् । चिण्वदिडभावपक्षे तु 'ग्रहीता' इति ।

गौः पयो दुग्धे—स्वयमेव गौः पयो दुग्धे उत्सृजतीत्यर्थः । इति कर्मक-
र्तृविवक्षायां दुग्धघातोर्लटि स्वरितरवेऽपि 'भावकर्मणोः' इत्यात्मनेपदे तादेशे
एत्वे हस्य घत्वे तस्य घत्वे शपो लुकि 'दुग्धे' इति । यक् तु न, 'न दुहन्तुनमां
बक्चिणौ' इत्यनेन निषेधात्

कृष्णश्चेद् भुङ्क्ते त्वं गाश्चारय—कृष्णभोजनकाले त्वं गाश्चारय
इत्यर्थः । अत्र 'कोडर्थलक्षणे च' इति सूत्रेण भुङ्क्ते इत्यत्र विभाषया लङ् भव-
ति । पक्षे छट् लुटावपि । कृष्णश्चेद् भोक्ता, भोक्ष्यते वा, त्वं गाश्चारय इत्यप्यु-
दाहार्यम् ।

अपर्गिरि शिरसा भिन्ध्यात्—अस्योत्तरं ४५ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

याहि याहीति याति—अत्र 'क्रियासमभिहारे लोट्, लोटो हिस्वी, वा च
त्तन्वमोः' इत्यनेन लोट्, तस्य सर्वपुरुषवचनविषये परस्मैपदिभ्यः कर्तरि हिः,
एवञ्च 'याही'ति । अत्र 'यथाविध्यनुप्रयोगः पूर्वस्मिन्' इति लोट्प्रकृतिभूत एव
धातुरनुप्रयोज्यः, तत अनुप्रयोगात् यथा यथं लडादयास्तिबादयश्च भवन्ति । ततः
संख्याकालयोः पुरुषविशेषार्थस्य चाऽभिव्यक्तिः । अत्र 'क्रियासमभिध्याहारे द्वे
वाच्ये' इति द्वित्वे याहि याहीति याति, यातः, यान्ति, इत्यनुप्रयोगात् सर्वलकाराः
सर्वपुरुषवचनानि च भवन्ति । पुनः पुनरतिशयेन वा एककर्तृकं वर्तमानकालिकं
यानं यातीत्यर्थः । अत्र इति शब्दस्तु अमेदान्वये तादर्थ्यं प्राहयतीति दिक् ।

धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः—धातोः सम्बन्धः धातुसम्बन्धः तस्मिन् धातुस-
म्बन्धे । धातुशब्देन वाच्यो लक्ष्यते । ततश्च धात्वर्थयोः सम्बन्धे सति प्रत्ययाः
स्थिरिति लब्धम् । कस्मिन्नर्थे इत्याकाङ्क्षायां 'काल' इति गम्यते, तत्र 'वर्तमाने
लट्' इत्यादिभिः तत्तत्कालविशेषे प्रत्ययसिद्धेस्ततोऽन्यस्मिन्काले इति गम्यते ।
तदाह मूले—धात्वर्थानां सम्बन्धे यत्र काले प्रत्यया उक्तास्ततोऽन्यत्रापि स्थिरिति ।
धात्वर्थानामित्यत्र उदाहरणबहुत्वाभिप्रायेण बहुवचनमुक्तं वृत्तिकृता ।

४—आचर्या देशः—आहुरगर्गात् चरघातोः 'चरेराकि आऽपुरी' इति

वार्तिकेन यत्प्रत्यये 'अचो रहाभ्यां द्वे' इति द्वित्वे कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ सकारस्य सत्वे विसर्गे 'आचर्ध्यः' इति ।

चेक्रियः—क्रीञ्धातोर्बल्लुकि द्वित्वादिकार्ये 'चेक्री' इति, तस्मात् 'नन्दिप्र-
दि' इति पचादित्वाद् प्रत्यये 'चेक्री अ' इति स्थिते 'न धातुलोप' इति गुणनिषेधे
संयोगपूर्वकत्वाद् गुणनिषेधे इयकि विभक्त्यादिकार्ये 'चेक्रियः' इति ।

दिवाकरः—दिवा करोतीति विग्रहे 'दिवाविभा' इत्यादिसूत्रेण कृञ्धातोश्च
प्रत्यये गुणे विभक्तिकार्ये 'दिवाकरः' इति ।

आख्यङ्करणम्—अस्योत्तरं ४१ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

सोमविक्रयी—सोमं विक्रीते इति विग्रहे 'कुत्सितग्रहणं कर्तव्यम्' इति
वार्तिकेन 'वि' उपसर्गात् क्रीधातोः इति प्रत्यये गुणे अयादेशे विभक्तिकार्ये सुलोपे
नलोपे 'सोमविक्रयी' इति ।

लुब्धे मन्थश्चेत्-**लुभं** संवलने' अस्मात् 'लुब्धत्वात्तन्ध्वान्त' इत्यादिसूत्रेण
कप्रत्यये निपातनादिङभावे 'क्षपस्तधोः' इति घट्त्वे जश्त्वे स्वादिकार्ये 'लुब्धः' इति ।

फलगु—'फग निष्पत्तौ' अस्मात् 'फलपाटिनमिमनिजनां गुकपटिनाकिध-
तश्च' इत्युणादिसूत्रेण गुकप्रत्ययो भवति ।

अजिरम्—'अज गतिचेपणयोः' अस्मात् 'अजिरशशिरशिथिलस्थिरस्फिर-
स्थविरब्धिराः' इत्युणादिसूत्रेण किरचि प्रकृतेर्वाभावाभावो निपात्यते ।

स्थालम्—स्थाधातोः 'स्थाचतिमृजेरालज्वालजालीयचः' इत्युणादिसूत्रेण
आलच् प्रत्ययो भवति ।

करभः—'कृ विक्षेपे' अस्मात् 'कशूशालिकल्लिगर्दिभ्योऽभच्' इत्युणादिसूत्रेण
अभच्प्रत्ययो भवति ।

मञ्जूषा—'ड मस्जो शुद्धौ' अस्मात् 'मस्जेर्नुम् च' इत्युणादिसूत्रेण कष-
च्प्रत्ययो नुम् च भवति ।

पुरोधाः—पुरःशब्दे उपपदे धाञ्धातोः 'पुरधि च' इत्युणादिसूत्रेण असि-
प्रत्ययो भवति ।

५—**शैबिकान्मनुबर्थायादिति**—अस्योत्तरं ४५ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

गौणे कर्मणीति—अस्योत्तरं ४३ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

उत्तरकुन्तादि-लिङ्गानुशासनान्तभागे प्रश्नाः

१६४८ द्वितीयं पत्रम्

१—शक्नोति भोक्तुम् । उपाध्यायः । काशीनिकायः । कीर्तिः । सुप्र-
लम्भः । विगणय । सूषिकाविलप्रम् । मूलकेनोपदंशम् । गेहमनु-
प्रवेशमनुप्रवेशम् । एषामष्टौ रूपाणि ससूत्रविशेषकार्यनिर्देशं साध-
नीयानि । ...१२

२—परावनुपात्यय इणः, कर्मणि च येन संस्पर्शात्कर्तुः शरीरसुखम्,
न क्तिचि दीर्घश्च, वा ल्यपि, कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः, एषां
सूत्राणां सोदाहरणमर्थाः लेख्याः । ...८

३—अक्रन् । तारिषत् । गुग्गुलूः । मावतः । त्री रुद्रेभ्यो अवपथाः । उह
णस्कृधि । एमसि । तरुतारम् । उपरि स्विदासी ३ त् । एषु पञ्चानां
सप्रमाणं सिद्धिं प्रदर्श्य-नोनयति० । वेशोयश० । मन्त्रे सोमाश्वे-
न्द्रिय०, । सुपां सुलुक०, । तयोर्ध्यावचि०—एषु चतुर्णां सूत्राणां
सोदाहरणमर्थाः प्रदर्श्यन्ताम् । ...१२

४—नोदात्तस्वरितोदाद्य० । त्यागराग० । तास्यनुदात्तेत्० । न भूता-
धिक० । नाचार्यराजत्वि० । निपातैर्यद्यदिक० । एषु पञ्चानामर्थ-
मुदाहरणानि च विलिख्य—तेऽवदन् । कर्णाभ्यां ह्रुबुकादधि । चोद-
यित्री सुनुतानाम् । शस्त्रीश्यामा । सार्वणिमाएडुकेयौ । कुसूलवि-
० । इन्द्राबृहस्पती । पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति । एषां षट्सु
स्वरसिद्धिः प्रतिपाद्यताम् । ...१४

५—नाभि-रज्जु-अर्चिष्-ब्रह्मन्-कुशा-नेत्र-शब्दानां लिङ्गमभिधीयताम् । ४

प्रश्नोत्तराणि

१—शक्नोति भोक्तुम्—अस्योत्तरं ३९ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

उपाध्यायः—उप-अधिपूर्वकात् इङ्घातोः 'इङ्श्च' इति सूत्रेण षष्प्रत्यये
उपघाट्टौ आयादेशे यणि सवर्णदीर्घे कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां सौ तस्य
रुत्वे विसर्गे 'उपाध्यायः' इति ।

काशी निकायः—नि-उपसर्गात् चिघातोः 'निवासचितिशरीरोपसमाधाने-

आदेशः कः इति सूत्रेण बलि सन्नियोगशिष्टेन चकारस्य ककारे वृद्धौ आयादेशे स्तादिष्वर्थे 'निकायः' इति । काशी मोक्षार्जुनस्य निवास इत्यर्थः ।

कीर्तिः—'कृत संशब्दने' अस्मात् 'ऊतियुतिञ्जुतिवातिहेति कीर्तयश्च' इति सूत्रेण निपातनात् किन्प्रत्यये ईत्वे स्वादिकार्ये 'कीर्तिः' इति ।

सुप्रलम्भः—'न सुदुभ्यां केवलाभ्याम्' इति सूत्रस्थकेवलाभ्यामित्यस्य प्रत्युदाहरणमेतत् । सु-प्र-उपसर्गकलभवातोः 'ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राऽकृच्छ्रार्थेषु खल् इति सूत्रेण खलि 'उपसर्गात् खलखवोः' इत्यनेन तुमि विभक्त्यादिकार्ये 'सुप्रलम्भः' इति ।

विशेषणम्—अस्योत्तरं ४७ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

सूषिकाविलम्—'वर्षप्रमाणं क्लोपश्चास्यान्यतरस्याम्' इति सूत्रस्थ 'अस्यैति किम्' इत्यस्य प्रत्युदाहरणमेतत् । 'अस्ये'त्यनुक्तौ उपरदेऽपि ककारस्य लोपः स्यादिति भावः ।

मूलकैर्नोपदंशम्—मूलकेन उपदंशं भुङ्क्ते इति विग्रहे 'उपदंशस्तृतीयायाम्' इति लुक्प्रत्ययस्य विभक्तिकार्ये सिद्धं रूपं भवति । 'तृतीयाप्रमृतीन्यन्यतरस्याम्' इति समासाऽभावे ऊपरिदम् । ननु त्र्यम्बकस्य उर्मकदंशवातुयोगे मूलकस्य शब्दतः कर्मत्वाऽभावेन मूलकोपदंशयोः सम्बन्धाऽभावेन सामर्थ्याऽभावात् यामुलप्रत्ययः समासश्चात्र कथमिति चेन्न, किमुपदंश्य भुङ्क्ते इति कर्मणोऽपेक्षायां मूलकमुपदंश्य भुङ्क्ते इत्यर्थेन समायाति कर्मत्वं मूलकस्य दंशघातुना सहार्थसम्बन्धस्य सत्त्वात् । यदि तृतीयायाः शब्दतः एवान्वये प्रत्यय इष्यते तर्हि 'करणे हनः' इतिवत् 'उपदंशः करणे' इत्येव ब्रूयात् । इत्थं च तृतीयाग्रहणसामर्थ्येन आर्धसम्बन्ध एवाऽप्रेष्टः । शब्दतस्तु मूलकं भुज्जिक्रियाम्प्रति करणमेव ।

गेहमनुप्रवेशमनुप्रवेशम्—अत्र 'विशिपतिपदिस्कन्दां व्याप्यमानाऽऽसे-
व्यमानयोः' इति सूत्रेण णमुलि विभक्त्यादिकार्ये सिद्धं रूपं भवति ।

२—परावनुपात्यय इणः—परी उपपदे इण्वातोर्ध्वं, अनुपात्यये गन्धे इत्यर्थः । 'तव पर्यायः' इत्युदाहरणम् ।

कर्मणि चेति—येन स्पृश्यमानस्य कर्तुः शरीरसुखमुत्पद्यते तस्मिन् कर्म-
ण्युपपदे ल्युट् स्यादित्यर्थः । 'पयःपानं सुखम्' इत्युदाहरणम् ।

न किञ्चि दीर्घश्च—अनिटां वनतितनोत्यादीनां च दीर्घानुनासिकलोपो न
स्तः किञ्चि परे इत्यर्थः । यन्तिः, रन्तिः, वन्तिः, तन्तिः, इत्युदाहरणानि ।

वा ल्यपि—अनुदात्तोपदेशानां वनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो वा स्या-

कृत्यपि इत्यर्थः । आगत्य, आगम्य, प्रणत्य, प्रणम्य, प्रहृत्य, प्रमत्य, प्रवृत्य, वितत्य, इत्याद्युदाहरणानि ।

कृषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः—वस्मात् 'निमूलसमूलयोः कषः' इत्या-
रभ्य 'उपमाने कर्मणि च' इत्यन्तैः सूत्रैः णमुल्लुक्तः स एवानुप्रयोक्तव्य इत्यर्थः ।
'निमूलकाषं कषति' इत्युदाहृतम् ।

३—अकन्—कृषातोलुङि शौ तस्य अन्त्यादेशे 'इतश्च' ईतीकारलोपे अडा-
गमे मध्ये च्लौ 'मन्त्रे घसहरणशब्दद्वाद्वृत्कृगमिजनिभ्यो लेः' इति सूत्रेण च्ले-
'कि 'अङ् अन्त्' इति स्थिते क्षेडित्वाद् गुणाभावे यणि संयोगान्तलोपे
'अकन्' इति ।

५—नाभिः—क्षत्रियभिन्ने नाभिश्चब्दः स्त्रियाम्, अन्यत्र पुंसि प्रयुज्यते ।
अत एवाह मेदिनीकोशे—'नाभिर्मुख्यदृष्टे चक्रमध्यक्षत्रिययोः पुमान् । द्वयोः
प्राणिप्रतीके स्यात् स्त्रियां कस्तूरिकामदे' इति ।

रज्जुः—रज्जुश्चब्दः स्त्रियां वर्तते, समासे तु पुंसि च ।

अर्चिष्—अर्चिष्श्चब्दः स्त्रियां नपुंसके च वर्तते ।

ब्रह्मन्—ब्रह्मन्श्चब्दः पुंसि नपुंसके च वर्तते ।

कुशा—'दायणि' अर्थे टावन्तः क्लीलिङ्गः कुशाश्चब्दः ।

नेत्र—नेत्रश्चब्दः पुल्लिङ्गे नपुंसके च वर्तते ।

इति दशमस्कान्धलान्तर्गत 'तरौनी' ग्रामवासिपण्डितश्रीमदनन्तलालश्चा-

शर्मात्मजश्रीरामचन्द्रश्चाव्याकरणाचार्यविरचिता व्याकरण-

मध्यमाचतुर्थखण्डप्रश्नोत्तरावली समाप्ता ।



स्वरवैदिकका प्रश्नोत्तर 'स्वरवैदिकप्रश्नोत्तरी' नाम की पुस्तक में देखिये ।

सिद्धान्तकौमुदी-जैनी-गुटका

वर्तमान लिखित परिस्थिति में पाठ्य भाग आठवाँ होने से सिद्धान्तकौमुदी-वालमसौहृदा का लेख भी लघुशब्द संस्करण प्राप्त नहीं हो सका था जिससे विद्यार्थी व अध्यापक दोनों की कठिनाई दिन दिन बढ़ती चली जा रही थी। परन्तु आठवीं अधीन रूप से हमारा भारी प्रयत्न अकल हो रहा है। कारकान्त प्रथम भाग ५)

समासादि द्विकालत द्वितीय भाग ५) स्यादादि चुराचन्त तृतीय भाग ३)

सिद्धान्तकौमुदी जैनी-गुटका

सूत्रसूची-वातुसूची-सूत्रांक-वार्तिकांक सहित

सिद्धान्तकौमुदीका ऐसा सुन्दर जैनी गुटका का मनोहर संस्करण यह प्रथम बार ही छपा है। प्रति दिन सिद्धान्त कौमुदी की आशुति करना विद्यार्थियोंके लिये आवश्यक है। सुबह-शाम घूमते-फिरते समय तथा परदेश-यात्रा करते समय विद्यार्थियोंका बहुत ही समय व्यर्थमें जातीत होजाता है। अब जहाँ कहीं जाना हो इस संस्करण को जेब में रख लीजिये और जब चाहें सिद्धान्तकौमुदी की आशुति किजिये। ३)

लघुशब्देन्दुकला

[लघुशब्देन्दुशेखर-प्रश्नोत्तरी]

इसमें परीक्षामें आने योग्य सभी प्रश्नोंके उत्तर ऐसे सरल तथा निर्दुष्ट परिष्कारों से युक्त लिखे गये हैं कि अभ्यास करलेने पर विद्यार्थी परीक्षामें पूरी सफलता प्राप्त कर लेंगे तथा ग्रन्थ लगाने में भी विद्यार्थीकी अत्यधिक सहायता मिलेगी ऐसा प्रशंसनीय संस्करण यह प्रथम बार ही प्रकाशित हुआ है। १।)

परमलघुकला

(परमलघुमञ्जूषाप्रश्नोत्तरी)

प्रस्तुत संस्करण में परीक्षा में आने योग्य सभी प्रश्नों के उत्तर ऐसे सरल तथा निर्दुष्ट परिष्कारों से युक्त लिख दिये गये हैं कि—“एक ग्रन्थ दो काज” याने ग्रन्थ लगाने में भी इस से आपको अत्यधिक सहायता पहुँचेगी और कण्ठस्थ कर लेनेपर परीक्षा में अधिक से अधिक नम्बर भी पास करेंगे। १)

मनोरमाशब्दरत्नप्रश्नोत्तरी

इसमें हर एक प्रश्नका उत्तर इस तरह लिखा गया है कि अभ्यास करलेने पर विद्यार्थी परीक्षा में पूरी सफलता प्राप्त कर लेंगे तथा ग्रन्थाक्षय का भी पूरा क्षान हो जायगा। प्रथम खण्ड ॥२॥ द्वि० तृ० खण्ड ॥३॥

प्रतिस्थानम्-चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, बनारस। २.....

